महाकवि श्रीहर्ष की लोकजीवन-विषयक दृष्टि

डॉ. विपुल कुमार शुकल

ग्रन्थ के विषय में

काव्यशास्त्र, व्याकरण एवं दर्शन जैसे विविध क्षेत्रों में पूर्ण अधिकार प्राप्त बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न महाकवि श्रीहर्ष का नैषधीयचरित महाकाव्य विद्वानों के लिए भी औषध माना गया है-

नैषधं विद्वदौषधम्।

महाभारतीय नलोपाख्यान पर आध[illegible] श्रृङ्गाररस परिपूर्ण, बृहत्त्रयी में अन्यतम तथा द[illegible] सर्गों में निबद्ध यह महाकाव्य महाकवि श्रीहर्ष [illegible] अद्वितीय पाण्डित्यपूर्णकलाकृति है। जिसमें निषध देश के युवा राजा नल एवं विदर्भ-नरेश भीमसेन की रूपवती पुत्री दमयन्ती के प्रणय-प्रसंग को महाकवि ने अपने काव्य-कौशल के द्वारा अत्यन्त सरस एवं मनोरम शैली में प्रस्तुत किया है। इसमें एक ओर जहाँ दार्शनिक सिद्धान्तों का पर्याप्त विवेचन मिलता है, वहीं मानव-जीवन के विविध पक्षों का भी यथार्थ चित्रण चित्रित है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में श्रीहर्ष की लोक-जीवन विषयक अवधारणाओं का विवेचन एवं विश्लेषण किया गया है।

ISBN - 978-93-85309-99-1

ISBN - 978-93-85309-99-1

मूल्य : 600.00 रुपये

पूज्यपाद आत्मानन्दगिरि 'प्रभुजी' को
सादर समर्पित

विपिन कुमार
07/03/17

महाकवि श्रीहर्ष की लोकजीवन-विषयक दृष्टि

लेखक
डॉ. विपुल कुमार शुक्ल

2016
कला प्रकाशन
बी. 33/33 ए - 1, न्यू साकेत कालोनी,
बी० एच० यू०, वाराणसी-5

प्रकाशक :

कला प्रकाशन

बी. 33/33 ए - 1, न्यू साकेत कालोनी,

बी० एच० यू०, वाराणसी-5

दूरभाष : 0542-2310682

Email : kalaprakashanvns@yahoo.in

डॉ. विपुल कुमार शुक्ल

प्रथम संस्करण : 2016

ISBN : 978-93-85309-99-1

मूल्य : 600/- रुपये

कम्प्यूटर अक्षर संरचना :

कला कम्प्यूटर मीडिया

बी. 33/33 ए - 1, न्यू साकेत कालोनी,

बी० एच० यू०, वाराणसी-5

दूरभाष : 0542-2310682

मुद्रक :

महावीर प्रेस

भेलूपुरा, वाराणसी

समर्पण

आदरणीय गुरुवर

स्व० पं० वासुदेव द्विवेदी शास्त्री

एवं

स्व० पितामह पं० चन्द्रिका प्रसाद शुक्ल

(साहित्य रत्न)

को सादर समर्पित
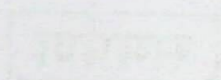
DEPARTMENT OF SANSKRIT
FACULTY OF ARTS
BANARAS HINDU UNIVERSITY
VARANASI-221005

Dr. Manu Lata Sharma
Prof. & Ex. Head
email : ajasramanu@yahoo.co.in

Address
K. 61/51, Bulanala,
Varanasi
Ph : 2335938 (R)
Mob : 9450710319

शुभाशंसनम्

महाकवि श्रीहर्ष संस्कृत वाङ्मय के प्रभाभास्वर ऐसे विद्वद्रत्न हैं; जिनके शास्त्रावगाही पाण्डित्य, बुद्धि को आश्चर्यविजडित करने वाले वैदुष्य एवं हृदय को रसमग्न करने वाले कवित्व से आप्यायित सहृदय हठात् चमत्कृत हो उठते हैं। शृङ्गार की गम्भीर स्रोतस्विनी में आकण्ठ निमज्जित करने वाला उनका **'नैषधीयचरितम्'** महाकाव्य रसमग्न तो करता ही है परन्तु कथा संगुम्फन के क्रम में पाण्डित्य के अनेक मौक्तिक-माणिक्यों को भी निस्सृत करता चलता है, जो कवि के सन्दर्भ में यह कहने के लिए अनायास प्रेरित करते हैं—

स्वप्रज्ञया कुञ्चिकयेव कञ्चित् सारस्वतं वक्रिमभङ्गिभाजम्।
कवीश्वरः कोऽपि पदार्थकोशमुद्घाट्य विश्वाभरणं करोति।।

सुभाषितरत्नभण्डागार पृ०सं० 33

विचार किया जाये तो यह सहज ज्ञात होता है कि एवं प्रकारक रससिद्ध कविगण अपनी वाणी से केवल सरस्वती का शृङ्गार ही नहीं करते अपितु इस शृङ्गार की साधिका अपनी भारती के माध्यम से सहृदयों के अन्तगर्मन में हमेशा के लिए अपना स्थान सुनिश्चित कर लेते हैं। यद्यपि उनका नश्वर शरीर देशकाल के बन्धनों के अधीन होकर जरामरण को प्राप्त हो जाता है, परन्तु उनकी सारस्वत साधना समस्त बन्धनों से परे होकर 'यावत् चन्द्रदिवाकरौ' पर्यन्त पीढ़ियों का अनुरञ्जन करती रहती है—

दिवमप्युपयातानामपकल्पमनल्पगुणगुणा येषाम्।
रमयन्ति जगन्ति गिरः कथमिव कवयो न ते वन्द्याः।।

सुभाषितरत्नभण्डागार पृ०सं० 33

श्रीहर्ष ऐसे हो रससिद्ध कवियों की कोटि में परिगण्य हैं। उनकी कविता में पदों की मधुरता, भावों की गम्भीरता, कल्पना की विचित्रता, श्लेष की आश्लेषकला, रस की रमणीयता, भाषा-शैली की सुन्दरता, अलङ्कृति की छटा एवं रीति की

प्रीतिकारिता अत्यन्त सुन्दर रूप में शोभायमान है। अनेक प्रसङ्गों में उनकी कविता कालिदास की कविता वनिता के समान सहज अलङ्करणयुता, स्वभावसरसा, धीरललित-पदन्यासयुता दिखाई देती है तो अनेकत्र नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा-प्रसूनों की शोभा से विच्छित्तियुता, वैदुष्य की गरिमा से मण्डित, सप्रयास परिधत्त अलङ्करणों से समन्वित, सुचिन्तित पदविन्यासों एवं हावभावों से समन्वित होकर कविभारती के मण्डन का एक अन्य मोहक चित्र प्रस्तुत करती है; जिसे समालोचकों ने अलङ्कृत शैली की संज्ञा दी है। उनके कवित्व के सन्दर्भ में एक श्लोक उद्धृत करना समीचीन होगा—

अर्थान् केचिदुपासते कृपणवत् केचित्त्वलङ्कुर्वते
वेश्यावत् खलु धातुवादिन इवोद्बध्नन्ति केचिद्रसान्।
अर्थालङ्कृतिसद्रसद्रवमुचा वाचा प्रशस्तिस्पृशा
कर्तारः कवयो भवन्ति कतिचित् पुण्यैरगण्यैरिह।।

सुभाषितरत्नभण्डागार पृ0सं0 33

श्रीहर्ष ने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया। इनमें निषधाधिपति नल एवं विदर्भ-सुता दमयन्ती की प्रणय-कथा पर आधारित नैषध महाकाव्य कवि के विलक्षण कवित्व का दिग्दर्शक है। एतदतिरिक्त अद्वैतमत के प्रतिपादक ग्रन्थ खण्डनखण्डखाद्य से उनकी गहन दार्शनिक क्षमता व तर्कप्रतिपादन सामर्थ्य का पता चलता है। स्थैर्यविचारप्रकरण, श्रीविजयप्रशस्ति, गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति, अर्णववर्णन इत्यादि ग्रन्थों के भी उनके द्वारा विरचित होने के उल्लेख प्राप्त होते हैं। इनमें नैषध महाकाव्य के काव्यसौन्दर्य एवं शास्त्रगाम्भीर्य के विवेचन का जहाँ तक प्रसङ्ग है तो यह निश्चित कहा जा सकता है कि इस महाकाव्य में सम्प्राप्त संयोग एवं विप्रलम्भ शृङ्गार के इन उभयविध रूपों के मोहक एवं उन्मादक प्रभाव, सौन्दर्य के अभिराम चित्र, वैभवविलास के सुन्दर चित्रण प्रसङ्गों ने उनके काव्य को रससागर के रूप में परिणत कर दिया है। कथाक्रम का गुम्फन करते समय कवि की अभिव्यक्ति केवल सौन्दर्य एवं प्रणयाधारित कल्पनाओं के आकर्षक चित्र निर्माण तक सीमित नहीं रही है अपितु उपमा, रूपक एवं उत्प्रेक्षाओं के निबन्धन में, दृष्टान्त व प्रतिवस्तूपमा के चित्रण में, अप्रस्तुतप्रशंसा एवं समासोक्ति विधानों में तथा सूक्तियों के ग्रथन में उनके द्वारा व्युत्पत्ति के अनेक विशद चित्र निर्मित हुए हैं। वेद-वेदाङ्गों, न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योग, पूर्व मीमांसा, वेदान्त, चार्वाक, बौद्ध, जैन आदि नास्तिक व आस्तिक दार्शनिक विचार धाराओं के चित्रण से कवि के अपार वैदुष्य का दिग्दर्शन होता है। तभी तो यह आभाणक प्रसिद्ध है—**'नैषधं विद्वदौषधम्'**। विविध पुराणों एवं प्राचीन ऐतिहासिक इतिवृत्तों के उल्लेख कवि के तज्जन्य ज्ञान के सूचक हैं। स्थान-स्थान पर स्मृतियों के सन्दर्भ, नाट्यकला, प्रसाधन कला, पाककला,

चित्रकला, सङ्गीतकला, शकुनशास्त्र सामुद्रिकशास्त्र, जलचरविज्ञान, पक्षिविज्ञान, मन्त्र-तन्त्रविद्या, शिल्पविज्ञान के उद्धरण कवि के अद्‌भुत पाण्डित्य के परिचायक हैं।

एतद् अतिरिक्त अनेक ऐसे प्रसङ्ग हैं, जो कवि के लोकरीति में प्रावीण्य के प्रतिपादक हैं। देखा जाए तो कोई भी कवि साहित्य सर्जना करते समय कई बिन्दुओं को आत्मसात् करके ही रचना-प्रवण होता है। इसमें लोक अर्थात् व्यापक जनवर्ग को प्रभावित करने वाले, उनसे जुड़े हुए जो कथ्य एवं तथ्य होते हैं; उनका निरूपण उनका सुन्दर ढंग से प्रतिपादन कवि को पाठक के समीप ले आता है; कल्पना व यथार्थ के समन्वय की आधारभित्ति प्रस्तुत कर देता है। श्रीहर्ष इस कला के भी पारङ्गत आचार्य हैं। उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति हेतु नल दमयनती की प्रणय-कथा रूप जो कथानक चुना वह पुराण एवं रामायण महाभारत काल से भी पूर्व से जनमानस को आकृष्ट किए हुए है। इस सरस प्रणयकथा को अपनी कल्पनात्मक तूलिका से सरसतम बनाकर प्रस्तुत करने वाले श्रीहर्ष ने **नैषधीयचरितम्** के रूप में संस्कृत वाङ्मय को अप्रतिम काव्यरत्न प्रदान किया है। इस महाकाव्य की सरसता एवं गाम्भीर्य से प्रभावित होकर अनेक विद्वानों एवं शोध-परायण अनुसन्धित्सुओं ने इसके अनेक पक्षों को अपनी लेखनी का विषय बनाया है। नैषधीयचरितम् का काव्यशास्त्रीय समीक्षण, नैषध का समग्र परिशीलन, नैषधीयचरित में वक्रोक्ति एवं औचित्य सिद्धान्त का विश्लेषण, नैषधीयचरित पर छान्दस प्रभाव, नैषधीयचरित में शब्दार्थसम्पद्-विमर्श इत्यादि अध्ययन इसी शृङ्खला की कड़ियाँ है। इसी क्रम में डॉ॰ विपुल कुमार शुक्ल ने महाकवि श्रीहर्ष के नैषधीयचरित में प्रतिबिम्बत लोकजीवन विषयक विवेचन कौशल को **'महाकवि श्रीहर्ष की लोकजीवन विषयक दृष्टि'** इस कृति के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इसमें उन्होंने जनजीवन से जुड़े विविध पक्षों को बड़ी सूक्ष्मता से समेटा है। महाकाव्य में लोकरीतियों, लोकव्यवहारों, लोकविश्वासों, लोकरूढ़ियों, एवं लोकप्रथाओं को यहाँ सुन्दर ढ़ंग से उपस्थापित किया गया है। मैं इस अध्ययन एवं इसे पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित करने हेतु उन्हें हार्दिक साधुवाद प्रदान करती हूँ एवं उनके समुज्वल भविष्य हेतु भगवान् विश्वनाथ एवं भगवती अन्नपूर्णा से प्रार्थना करती हूँ।

मनुलता शर्मा

वाराणसी

मनुलता शर्मा
प्रोफेसर
संस्कृत विभाग
कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

Shyamanand Mishra
Professor & Head Department of Sahity
Faculty of Sanskrit-Vidya
Dharm-Vigyan,
Banaras Hindu University,
Varanasi-221005, U.P.

Home : B 31/40 B-1-L
Bhogabir, Sankatmochan
Varanasi-221005
Email -snmishra71@gmail.com
☎ + 919492561250

शुभाशंसा

महाकवि श्रीहर्षप्रणीत महाकाव्य 'नैषधीयचरितम्' न केवल संस्कृत, प्रत्युत विश्वसाहित्य की श्रेष्ठतम कृतियों में अन्यतम है। 'नैषधे पदलालित्यम्', 'नैषधं विद्वदौषधम्', तथा 'उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः' सदृशी उक्तियाँ महाकाव्य के अत्युत्कर्षपूर्वक श्रीहर्ष के महाकवित्व एवं दुर्धर्ष पाण्डित्य में प्रमाण तो हैं ही, साथ ही तात्कालिक समाज (लोक) के तात्विक स्वरूप के प्रकाशन में महाकवि की पूर्ण सफलता में भी प्रमाण हैं। क्योंकि लौकिक रहस्योद्‌घाटन के अभाव में न तो कवित्व की सिद्धि है और न ही पाण्डित्य की। वस्तुतः किसी कवि अथवा काव्य की सफलता और प्रकर्ष इसी तथ्य पर निर्भर है कि वह तात्कालिक सामाजिक अथवा लोकजीवन को यथारूप में सरसता एवं सरलता से चित्रित करते हुए भविष्यदर्थक मार्गदर्शन में किस मात्रा में सक्षम है। कोमल, कान्त, प्रासादिक अथ च प्रवाहपूर्ण पदावली के प्रयोगपूर्वक सरस काव्य की रचना का परमोपनिषत् ही यह है कि वह कवि की नवनवोन्मेषशालिनी अलोकसामान्य प्रतिभा से स्नुत रस से सिक्त लोकवृत्त का किं वा लोक के तात्विक स्वरूप का उपस्थापन करता हुआ कान्तासम्मिततया कृत्याकृत्योपदेश का विलक्षण कारक होता है। अतत्त्व के प्रकाशन में तो अत्यन्त श्रमपूर्वक भी प्रयुक्त पदों की बाह्यरूप में दृष्टिगत होने वाली मञ्जुलता भी औपचारिक यद्वा निःसार ही होगी। नैषधमहाकाव्य में भी लोकजीवन के विविध पक्षों के उद्‌घाटनक्रम में ऐसे यथार्थ एवं शाश्वत नियमों का अनेकत्र प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष निर्देश है; जिनका राष्ट्रभाषा में अत्यन्त सरलरीत्या उपस्थापन सुबुद्ध लेखक ने प्रकृत ग्रन्थ में किया है। ये ऐसे शाश्वत नियम है; जो युग-युगों से मानवजीवन के प्रगतिपथ को आलोकित करते हुए त्रिवर्गसिद्धिपूर्वक परमपुरुषार्थ की प्राप्ति में नित्य कारण हैं। अतश्च ऐसे लोकोपयोगी सिद्धान्तों, जिनसे मनुष्यमात्र में दया-दाक्षिण्यादि उदात्त भावों के जागरणपूर्वक समाज में समरसता स्थापित हो सके, के प्रकाशन के कारण इस ग्रन्थ की रचना में लेखक का उद्योग प्रशंसनीय है।

वर्त्तमान में संस्कृत शास्त्रों की प्रासङ्गिकता अथवा उपादेयता पर आक्षेप करने वाले असंस्कृतज्ञों, संस्कृतिपराङ्मुखों अतश्च दुर्विदग्धों के मुखमुद्रणार्थ यह कृति अत्युपादेय होगी ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। एतदर्थ मैं संस्कृतविद्या के उदीयमान प्रतिभाशाली साधक डॉ० विपुल कुमार शुक्ल को नित्य उत्कर्ष हेतु हार्दिक शुभकामना देता हूँ।

प्रो० श्यामानन्द मिश्र

कृतज्ञता-ज्ञापन

किसी भी कार्य की पूर्णता में अपने परिश्रम एवं उत्साह के अतिरिक्त श्रेष्ठजनों का आशीर्वाद एवं उनकी प्रेरणा का भी विशिष्ट महत्त्व होता है। मैंने अपनी इस सारस्वत साधना में जिन महानुभावों का आशीर्वाद, सहयोग एवं निर्देश प्राप्त किया है; उनके प्रति कृतज्ञताज्ञापन अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ। इस क्रम में मैं सबसे पहले "सार्वभौम संस्कृत प्रचार संस्थानम्" के संस्थापक एवं आजीवन संचालक पूज्य गुरुवर स्वर्गीय **पं.वासुदेव द्विवेदी शास्त्री** के चरणकमलों में श्रद्धाभाव-भरित अपना हार्दिक प्रणाम समर्पित करता हूँ, जिनकी छत्रछाया में रहकर मुझे संस्कृत का कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ। आज मेरे पास जो कुछ है, वह सब उनकी कृपा का प्रसाद है।

मैं सं.सं.वि.वि में साहित्य विभाग के पूर्व विभागाध्यक्ष, सकलशास्त्र मर्मज्ञ स्वर्गीय मनीषी पंडित वायुनन्दन पाण्डेय गुरुजी के चरणों में अपनी प्रणामाञ्जलि समर्पित करता हूँ, जिनसे मैंने व्याकरण, साहित्यादि विषयों का भोजपुरी भाषा के लौकिक उदाहरणों के माध्यम से कुछ ज्ञान प्राप्त किया। जयपुर विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग की भूतपूर्व विभागाध्यक्षा व्याकरण-दर्शन आदि विषयों में अप्रतिहत गति रखने वाली, प्रो.लक्ष्मी शर्मा के चरणों में प्रमाण करता हूँ जिनके काशी आगमन पर महाकवि श्रीहर्ष के दार्शनिक पक्ष पर कुछ सीखने को मिला। मैं प्रो.कृष्णकान्त शर्मा भूतपूर्व संकाय प्रमुख सं.वि.ध.वि.संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के चरणों में प्रणाम करता हूँ; जिनसे साहित्यशास्त्र के अभिनय पक्ष पर कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ। ऐसे मनीषी विद्वान् जिनका मुझे बाल्यकाल से ही सानिध्य मिलता रहा है; मैं पुनः पुनः उनके चरणों में नतमस्तक हूँ।

इस क्रम में साहित्य विभाग, संस्कृत विद्या-धर्म-विज्ञान संकाय का.हि.वि.वि. के पूर्व अध्यक्षद्वय प्रो.चन्द्रमौलि द्विवेदी, प्रो.कौशलेन्द्र पाण्डेय तथा प्रो.उपेन्द्र पाण्डेय गुरुजनों को श्रद्धापूर्वक प्रणाम करता हूँ, जिन्होंने अपने आशीर्वाद से सदैव मुझे अभिसिञ्चित किया। प्रो0 श्यामानन्द मिश्र जी (साहित्य विभागाध्यक्ष सं0वि0 धर्म0वि0 संकाय) का विशेष रूप से आभारी हूँ, जिन्होंने अपने आशीर्वाद को शुभाशंसा के रूप में इस ग्रन्थ के लिए समर्पित किया। संस्कृत विभाग, कला संकाय, का.हि.वि.वि. के अध्यक्ष प्रो. गोपबन्धु मिश्र एवं पूर्व अध्यक्षा प्रो. मनुलता शर्मा के चरणों में प्रणाम अर्पित करता हूँ जिन्होंने सदैव मेरी प्रगति के प्रति जिज्ञासा व्यक्त की और मुझे समुचित मार्गनिर्दिष्ट किया।

मैं डॉ. गोपाल लाल मीणा (सम्प्रति एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, जे.एन.यू. के प्रति हृदय से कार्तज्ञ विज्ञापित करता हूँ, तदनु संगीत एवं मंचकला संकाय के संगीतशास्त्र के एसो. प्रोफेसर, साहित्य-शास्त्र के मूर्धन्य मनीषी प्रो. शिवराम शर्मा जी को हृदय से प्रणाम अर्पित करता हूँ जिनकी कृपा से संस्कृत में मेरा प्रवेश

हुआ, साहित्यशास्त्र का कुछ संस्कार प्राप्त हुआ, एवं जिन्होंने अपनी बाल्यकाल से छत्रछाया में मुझे आश्रय प्रदान किया।

इस अवसर पर मैं सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के व्याकरण विभाग में आचार्य एवं अपने आदरणीय श्वसुर प्रो. गिरिजेश कुमार दीक्षित के प्रति कृतज्ञतापूर्वक प्रणाम अर्पित करता हूँ।

इसी क्रम में मैं संस्कृत विभाग, कला संकाय में असि. प्रोफेसर डॉ. शरदिन्दु कुमार त्रिपाठी के प्रति अपनी हार्दिक प्रणामाञ्जलि अर्पित करता हूँ, श्रद्धेया भाभीजी डॉ. उमा तिवारी, (पोस्ट डॉक्टोरल फेलोशिप) के प्रति कार्तज्ञ ज्ञापन के निमित्त मेरे शब्दं पर्याप्त नहीं हैं, मैं उनके सहयोग के लिए नतेन शिरसा उनके प्रति प्रणाम अर्पित करता हूँ।

पारिवारिक सदस्यों में मैं पूज्य पितामह स्व. पं. चन्द्रिका प्रसाद शुक्ल (साहित्यरत्न), पिताश्री पं.बृजबिहारी शुक्ल, माता श्रीमती प्रेमशीला देवी के चरणों में इस पुनीत अवसर पर प्रणामाञ्जलि विनिवेदित करता हूँ। इन सबों का ऐसे ही आशीर्वाद प्राप्त होता रहे इसके लिए भगवान विश्वनाथ से प्रार्थना भी है।

सहधर्मचारिणी डॉ. प्रज्ञा दीक्षित एवं पुत्र आयुष्मान् शुभंकर शुक्ल के प्रति हार्दिक स्नेह व्यक्त करता हूँ जिनके अनन्य सहयोग से अनेक झंझावातों के बावजूद मुझे आत्मबल एवं आत्मविश्वास प्राप्त होता रहा। श्रीमती कीर्ति दीक्षित, अध्यापिका, राजकीय बालिका विद्यालय को उनके अतुलनीय सहयोग के लिए मैं पृथक् से साधुवाद देना चाहूँगा।

इस क्रम में मैं अपने अग्रज डॉ. अरविन्द कुमार तिवारी (आशुकवि) को कैसे भुला सकता हूँ जिन्होंने पग-पग पर मेरा मार्ग निर्देशन किया। मैं उनको पुनः-पुनः प्रणाम करता हूँ। इस अवसर पर श्री मणीन्द्र कुमार तिवारी, श्री मनोरंजन शुक्ल, श्री मनोज शुक्ल, श्री राकेश शुक्ल, डॉ. राहुल अमृतराज एवं श्री राजदेव वर्मा आदि अग्रज विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं जो अग्रज होते हुए भी मुझे मित्रवत् स्नेह प्रदान करते हैं, मैं इन सभी को श्रद्धापूर्वक प्रणाम करता हूँ।

इसके अतिरिक्त जिन लेखकों का, जिन विद्वानों का, जिन पुस्तकालयों का, जिन संस्थाओं का, जिन भाई-बहनों का और जिन कर्मचारियों का ज्ञाताज्ञात रूप में मैंने अपने इस ग्रन्थ की पूर्णता में सहयोग लिया है उन सभी के प्रति मैं हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ। कला प्रकाशन, वाराणसी के भी सभी सदस्यों को हृदय से साधुवाद देता हूँ; जिनके सौजन्य से मेरी यह सारस्वत साधना पुस्तकाकार को प्राप्त हुयी।

✍ डॉ. विपुल कुमार शुक्ल

✦

विषयानुक्रमणिका

भूमिका

संस्कृत वाङ्मय के आदि ग्रन्थ वेद ही समस्त काव्य-सौन्दर्याधायक तत्त्वों के उत्स हैं। कालान्तर में प्रतिपादित गुण, अलङ्कार, ध्वनि इत्यादि के बीज वेदों में ही निहित हैं। अथर्ववेद में वेदों को देवताओं का अमर-काव्य कहा गया है–**"देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति।"**[1]

काव्य कला का वह सर्वोत्कृष्ट रूप है, जो जीवन को सौन्दर्यात्मक एवं गत्यात्मक बनाता है। इसका व्युत्पत्तिजन्य अर्थ है– **कवेः कर्म भावो वा काव्यम्।** कवि शब्द भी **कुङ् शब्दे** धातु से **इ** प्रत्यय के योग से बना है।[2] अमरकोषकार **कव् शब्दायते** धातु से इसकी निष्पत्ति मानते हैं। जिससे इस (कवि शब्द) का अर्थ है– शब्दों के सहयोग से चमत्कारपूर्ण वर्णन करने वाला। **कवि**[3] शब्द से **ष्यञ्** प्रत्यय के योग से **काव्य** शब्द निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है **कवि कौशल** या **कविता** आदि।

काव्य को सौन्दर्यपूर्ण तथा हृदयाह्लादक बनाने में काव्यशास्त्र की महती भूमिका होती है। इसके अन्य अभिधान अलङ्कारशास्त्र, साहित्यशास्त्र तथा साहित्यविद्या आदि हैं। इसका अलङ्कारशास्त्र नाम उतना समीचीन न होने पर भी अत्यधिक प्राचीन तथा प्रसिद्ध है। आचार्य **भामह** के **काव्यालङ्कार** एवं आचार्य **वामन** की **काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति** आदि ग्रन्थों के अभिधान इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। वास्तव में यह उस युग का अभिधान है जब **काव्य** में अलङ्कार की सत्ता अनिवार्य मानी जाती थी। यहाँ **अलङ्कार** पद उपमा रूपकादि का वाचक न होकर **'सौन्दर्य'** का बोधक है। आचार्य वामन के शब्दों में – **"सौन्दर्यमलङ्कारः"**[4] यही अलङ्कार शब्द का व्यापक अर्थ है।

राजशेखर– प्रदत्त **साहित्यविद्या** नाम का आधार आचार्य भामह का काव्य लक्षण है– **"शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्।"**[5] यह नामकरण समीचीन होते हुए भी अधिक प्रसिद्ध न हो सका। सर्वाधिक प्रसिद्ध नाम हुआ काव्यशास्त्र ही, जिसमें काव्य को विभूषित करने वाले समस्त उपकरणों का सविस्तार सम्यक् विवेचन समुपलब्ध होता हैं। सहृदयहृदयाह्लादक, चित्तानुरञ्जक, रसाभिवर्षक, चित्ताकर्षक तथा चमत्कारोत्पादक इस काव्य को काव्यशास्त्रियों ने अनेक आधारों पर वर्गीकृत किया है। यथा–

1. भाषा के आधार पर काव्य के मुख्यतः तीन भेद किए गए हैं–**संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश।**

2. व्यङ्ग्य के तारतम्य के आधार पर काव्य के तीन प्रमुख भेद स्वीकृत हुए हैं–ध्वनि, गुणीभूत-व्यङ्ग्य एवं चित्र।

3. इन्द्रियजन्य रसास्वाद के आधार पर काव्य के दो भेद हैं–**दृश्य एवं श्रव्य।**

इन्द्रियजन्य रसास्वाद के आधार पर विभाजित काव्य भेदों का अवलोकन करने पर हम देखते हैं कि सर्वप्रथम भरत ने अपने **नाट्यशास्त्र** में दृश्य-काव्य रूपकों का वर्गीकरण किया। तत्पश्चात् भामह, दण्डी, वामन, रुद्रट आदि आचार्यों ने काव्य-भेदों का निरूपण किया। आचार्य विश्वनाथ ने **साहित्यदर्पण** में काव्य-भेदों का अत्यन्त स्पष्ट एवं व्यवस्थित विवेचन किया है। इन्होंने प्रथमतः काव्य के दो मुख्य भेद किये हैं[6]

(1) दृश्य काव्य, (2) श्रव्य काव्य।

(1) दृश्य काव्य

दृश्य काव्य अभिनय के योग्य होता है। इसे **'रूपक'** भी कहा जाता है। इसका कारण बताते हुए विश्वनाथ ने लिखा है कि रूप का आरोप होने के कारण दृश्य काव्य को **रूपक** कहते हैं।[7]

(2) श्रव्य काव्य

श्रवण योग्य काव्य श्रव्य काव्य कहलाता है–**श्रव्यं श्रोतव्यमात्रम्।**[8] श्रव्यकाव्य को गद्य, पद्य एवं चम्पू के भेद से तीन भागों में विभाजित किया गया है।[9]

छन्द के बन्धन से रहित रचना गद्य कहलाती है। दण्डी ने पाद रहित पदों के समूह को गद्य कहा है तथा इसके कथा एवं आख्यायिका दो भेद स्वीकार किये हैं–

अपादः पदसन्तानो गद्यमाख्यायिका कथा।[10]

इन्होंने अपने काव्यादर्श में कथा एवं आख्यायिका का स्पष्ट विवेचन किया है। विश्वनाथ ने इस गद्य काव्य के चार भेद किये हैं–मुक्तक, वृत्तगन्धि, उत्कलिकाप्रायः एवं चूर्णक।[11]

पद्यकाव्य को आचार्यों ने प्रथमतः दो वर्गों में विभाजित किया है–

1. अनिबन्धकाव्य, 2. प्रबन्धकाव्य

अनिबन्धकाव्य वह है जिसमें सुनियोजित कथाबन्ध की आवश्यकता नहीं होती है। इस प्रकार के काव्य में श्लोक आपस में परस्पर सम्बद्ध नहीं होते हैं। इसीलिये इन्हें **'मुक्तक'** भी कहा जाता है।

विश्वनाथ ने एक, दो, तीन, चार एवं पाँच श्लोकों की परस्पर सम्बद्धता के आधार पर इस प्रकार के काव्य के पाँच भेद किये हैं।[12] यथा–मुक्तक काव्य, युग्मक काव्य, सन्दानितक काव्य, कलापक काव्य तथा कुलक काव्य।

प्रबन्ध काव्य वह होता है जिसमें एक सुनियोजित लम्बी कथा का आयोजन किया जाता है। इसके मुख्यतः दो भेद हैं–

1. महाकाव्य
2. खण्डकाव्य

महाकाव्य को परिभाषित करते हुए आचार्य विश्वनाथ लिखते हैं–**सर्गबन्धो महाकाव्यम्**[13]

गद्य एवं पद्य से भिन्न काव्य का तीसरा भेद **चम्पूकाव्य** है। इसका लक्षण महाकवि दण्डी ने अपने काव्यादर्श में इस प्रकार किया है–

गद्यपद्यमयी काचिच्चम्पूरित्यभिधीयते।[14]

आचार्य विश्वनाथ ने चम्पूकाव्य के भी दो भेद किये हैं–

1. विरुद, 2. करभक

महाकाव्य को भी पुनः दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

1. विकसनशील महाकाव्य।
2. अलङ्कृत महाकाव्य।

विकसनशील महाकाव्य का प्रमुख उदाहरण महाभारत है तथा अलङ्कृत महाकाव्य की श्रेणी में रामायण का नाम उल्लेखनीय है। अलङ्कृत के भी चार अवान्तर भेद किये जा सकते हैं–

1. शास्त्रीय,
2. पौराणिक,
3. ऐतिहासिक,
4. रोमाञ्चक।

उपर्युक्त वर्गीकरण को अग्राङ्कित रेखाङ्कन के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है–
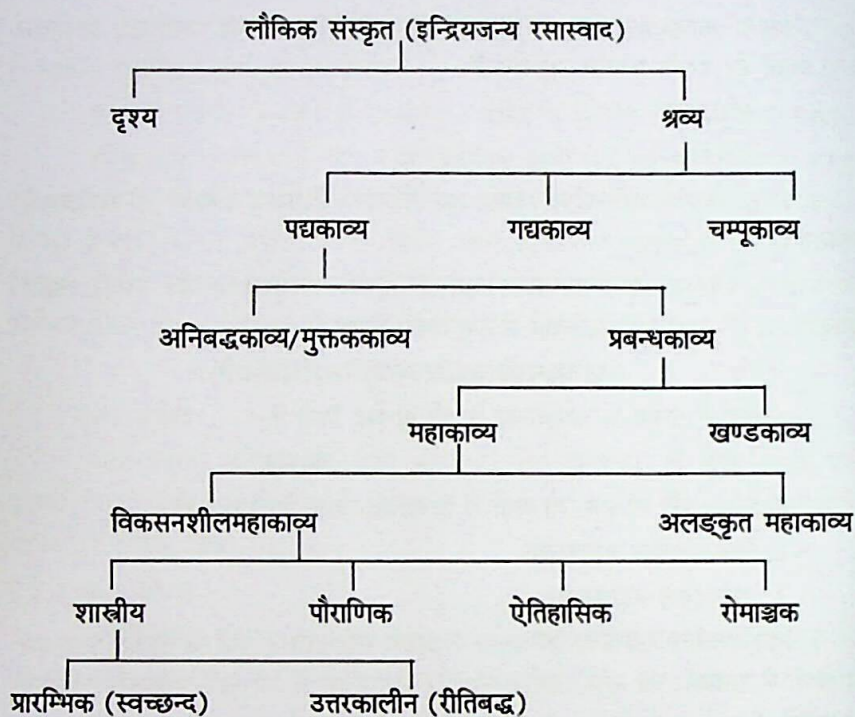
महाकवि श्रीहर्ष विरचित नैषधीयचरित महाकाव्य में लोकजीवन से सम्बद्ध सूत्रों का अन्वेषण करने से पूर्व इस पर महाकाव्यत्व की दृष्टि से एक विचार अनिवार्य एवं उपादेय है।

नैषधीयचरितमहाकाव्य का महाकाव्यत्व

"नैषधं विद्वदौषधम्" की उक्ति से प्रथित नैषधीयचरित महाकाव्य बृहत्त्रयी में अन्यतम है। काव्यशास्त्रीय दृष्टि से इसकी समीक्षा करने के लिये आचार्य विश्वनाथ प्रणीत "साहित्यदर्पण" से महाकाव्य का लक्षण प्रस्तुत है–

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः॥
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा।
शृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते॥
अङ्गानि सर्वेऽपि रसा सर्वे नाटकसन्धयः
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद् वा सज्जनाश्रयम्॥

चत्वारः तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ॥
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्त्तनम्।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः ॥
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह।
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते ॥
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्।
सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः ॥
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः ।
सम्भोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः॥
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः ।
वर्णनीया यथायोगं साङ्गोपांगा अमी इह ॥
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा।
नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु॥[15]

अर्थात् –महाकाव्य सर्गों में बँधा होता है। उसमें एक धीरोदात्त आदि नायक (प्रधानपात्र) होता है, जिसका देवता अथवा सद्वंशोत्पन्न क्षत्रिय होना आवश्यक है। अथवा एकवंश में ही उत्पन्न अनेक कुलीन राजा भी नायक हो सकते हैं। शृङ्गार, वीर और शान्त रसों में से कोई एक रस अङ्गी (प्रधान) रस होता है। अन्य रसों का प्रयोग गौण अथवा सहायक रसों के रूप में किया जा सकता है। सब नाटक-सन्धियाँ विद्यमान रहा करती हैं। कथावस्तु का ऐतिहासिक अथवा अनुकरणीय कार्य से सम्बन्धित होना आवश्यक है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों में से किसी एक की प्राप्ति महाकाव्य का उद्देश्य होना चाहिये। महाकाव्य का प्रारम्भ नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक अथवा वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण से होना चाहिये। कहीं पर दुष्टों की निंदा तो कहीं सज्जनों की कीर्ति अथवा उनका गुणगान भी हो। कम से कम आठ सर्गों का होना आवश्यक है, जो न अधिक छोटे तथा न अधिक लम्बे ही हों। प्रत्येकसर्ग में एक ही प्रकार के छन्द हों किन्तु सर्ग का अन्तिम छन्द भिन्न होना आवश्यक है। कभी-कभी किसी सर्ग में अनेक छन्दों का प्रयोग भी किया जा सकता है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में आगामी सर्ग-विषयक कथा का संकेत कर दिया जाना भी आवश्यक है। महाकाव्य में प्रकृति वर्णन- संध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, आखेट, पर्वत, ऋतु (छहों), वन, समुद्र, संयोग-वियोग (मिलन और विरह), मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्रा, आक्रमण, विवाह, मन्त्र, पुत्र और अभ्युदय आदि का

यथास्थान सांगोपांग वर्णन होना चाहिए। महाकाव्य का नाम कवि के नाम से अथवा कथानक के आधार पर अथवा प्रमुख चरित्र-नायक के नाम पर होना चाहिये तथा सर्ग का नाम सर्ग से सम्बन्धित कथा के आधार पर रखा जाना चाहिये।

उपर्युक्त शास्त्रीय निकष पर जब हम नैषध को रखते हैं तो देखते हैं कि यह महाकाव्य बाईस सर्गों में विभक्त है। जिसकी कथावस्तु का स्रोत **महाभारत** के अन्तर्गत वर्तमान **वनपर्व** का **नलोपाख्यान** (अध्याय 52-79) है। निषध-नरेश नल इसके नायक हैं, जो धीरोदात्त कोटि के अन्तर्गत आते हैं। इनमें आचार्यों द्वारा निरूपित नायक[16] के समस्त लक्षण वर्तमान हैं तथा धीरोदात्त[17] नायक के सभी सामान्य एवं विशेष गुणों से युक्त हैं। महाकवि श्रीहर्ष ने उन्हें एक पुण्यात्मा के रूप में प्रस्तुत किया है–

निपीय यस्य क्षितिरक्षिणः कथां
तथाद्रियन्ते न बुधास्सुधामपि।
नलस्सितच्छत्रितकीर्तिमण्डलः
स राशिरासीन्महसां महोज्ज्वलः॥[18]

महाराज नल की विद्वत्ता को ज्ञापित करते हुए श्रीहर्ष ने लिखा है–

अधीतिबोधाचरणप्रचारणैर्दशाश्चतस्त्रः प्रणयन्नुपाधिभिः।
चतुर्दशत्वं कृतवान् कुतः स्वयं न वेद्मि विद्यासु चतुर्दशस्वयम्॥[19]

श्रीहर्ष ने नल को शास्त्रचक्षु भी माना है–

दिगीशवृन्दांशविभूतिरीशिता दिशां स कामप्रसभावरोधिनीम्।
बभार शास्त्राणि दृशं द्वयाधिकां निजत्रिनेत्रावतरत्वबोधिकाम्॥[20]

इसके अतिरिक्त भी महाकवि ने राजा नल को शूरवीर[21] दानी[22] तथा गुणानुरागी[23] सद्वंशोत्पन्न क्षत्रिय के रूप में चित्रित किया है। अङ्गी रस के रूप में इसमें शृंगार-रस की अविरल निर्झरिणी प्रवाहित हुई है तथा वीर, करुण, हास्य आदि का सन्निवेश सहायक रस के रूप में किया गया है। रसराज शृंगार के संयोग एवं विप्रलम्भ दोनों पक्षों का परिपाक मिलता है। कतिपय रसाभिव्यञ्जक उदाहरण प्रस्तुत हैं। यथा–नल व दमयन्ती के प्रथम समागम का दृश्य अवलोकनीय है–

वल्लभस्य भुजयोः स्मरोत्सवे
दित्सतोः प्रसभमङ्कपालिकाम्।
एककश्चिरमरोधि बालया
तल्पयन्त्रणनिरन्तरालया॥[24]

संयोग श्रृंगार का एक अन्य मनोरम चित्र प्रस्तुत है–

चेष्टा व्यनेशन्निखिलास्तदास्याः स्मरेषु वातैरिव ता विधूताः।
अभ्यर्थ्य नीताः कलिना मुहूर्तं लाभाय तस्या बहु चेष्टितुं वा।।[25]

महाकवि ने वियोग पक्ष का भी हृदयहारी वर्णन किया है। राजा नल एवं दमयन्ती के पूर्वानुराग में इसकी झलक मिलती है। इन स्थलों में कवि की कल्पनाशक्ति का सौन्दर्य भी दर्शनीय है। कामाग्नि से संतप्त दमयन्ती की दशा विचारणीय है–

स्मरहुताशनदीपितया तया बहु मुहुः सरसं सरसीरुहम्।
श्रयितुमर्धपथे कृतमन्तरा श्वसितनिर्मितमर्मरमुज्झितम्।।[26]

विप्रलम्भ श्रृंगार का सौन्दर्य राजा नल द्वारा हंस से अपनी मनोव्यथा के निरूपण में भी अवलोकनीय है। जहाँ निरन्तर गुणों के श्रवण मात्र से राजा को दमयन्ती-नेत्रों के सम्मुख प्रतीत होने लगती हैं–

शतशः श्रुतिमागतैव सा त्रिजगन्मोहमहौषधिर्मम।
अमुना तव शंसितेन तु स्वदृशैवाधिगतामवैमि ताम्।।[27]

स्पष्टतः अङ्गी रस के रूप में रसराज का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन करने में महाकवि को पूर्ण सफलता मिली है। अङ्ग रूप में विन्यस्त करुण रस का मर्मविदारक प्रयोग भी प्रथम अङ्क में ही उपलब्ध होता है। राजा नल द्वारा पकड़ा गया हंस जो विलाप करता है उसकी भाव संप्रेषणीयता रसिकजनों के हृदय में करुणा का संचार करती है–

मदेकपुत्रा जननी जरातुरा नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी।
गतिस्तयोरेष जनस्तमर्दयन्नहो विधे! त्वां करुणा रुणद्धि नो।।[28]

हास्य रस के विन्यास में भी महाकवि को पूर्ण सफलता मिली है। राजा नल के विवाह का एक दृश्य प्रस्तुत है–

मुखे निधाय क्रमुकं नलानुगैरथौज्झि पर्णालिरवेक्ष्य वृश्चिकम्।
दमार्पितान्तर्मुखवासनिर्मितं भयाविलैः स्वभ्रमहासिताखिलैः।।[29]

अर्थात् तत्पश्चात् (हाथ धोने के उपरान्त) नल के अनुयायी बारातियों ने सुपारी मुख में रख दम (दमयन्ती के भ्राता) द्वारा मुख को सुगन्धित करने वाले मसालों से बनाये गये बिच्छू को देखकर भययुक्त हो अपने भ्रम के कारण सबको हँसाते हुए पान के बीड़े को छोड़ दिया।

नैषध में वीररस के चारों भेदों-युद्धवीर, दानवीर, धर्मवीर तथा दयावीर का चित्रण हुआ है। दमयन्ती के स्वयंवर-प्रसङ्ग में वीररस की सहज सरिता प्रवाहित हुई है। शिष्य राजकुमारों को अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा देने में भी नल के तेज एवं शौर्य निरूपण में

वीररस की छटा मिलती है–

अस्त्रशस्त्रखुरलीषु विनिन्ये शैष्यकोपनमितानमितौजाः।।[30]

श्रीहर्ष ने 22 सर्गों में नल-दमयन्ती की कथा को निबद्ध किया है। प्रत्येक सर्ग का विषयवस्तु संतुलित है। महाकवि ने शास्त्रीय मर्यादा का अनुपालन करते हुए प्रत्येक सर्ग में प्रायः एक छन्द का ही प्रयोग किया है तथा सर्गान्त में छन्द परिवर्तन किया है। यथा-प्रथम सर्ग के प्रारम्भिक सभी श्लोक वंशस्थ छन्द में हैं तथा अन्तिम दो श्लोक (143,144) क्रमशः दोधक एवं वसन्ततिलका में निबद्ध हैं। बारहवां सर्ग विविध छन्दों में रचित है। यथा स्थान महाकवि ने प्रातःकाल, सायंकाल, दिवस, रात्रि, चन्द्रमा, विवाह, समुद्र, संयोग-वियोग आदि का वर्णन किया है। चन्द्रमा विषयक एक सर्वथा नवीन कल्पना दर्शनीय है–

सकलया कलया किल दंष्ट्रया समवधाय यमाय विनिर्मितः।
विरहिणीगणचर्वणसाधनं विधुरतो द्विजराज इति श्रुतः।।[31]

अर्थात् यह चन्द्रमा यमराज के लिए सावधान होकर (ब्रह्मा द्वारा) सम्पूर्ण कलारूपी दाँतों से विरहिणी समूह को चबाने का साधन बनाया गया है। अतएव इसे द्विजराज (द्विजों अर्थात् दाँतो से सुशोभित होने वाला) कहा गया है।

महाकाव्य में मुख, प्रतिमुख आदि सन्धियों का भी सम्यक् परिपालन किया गया है। कथावस्तु की दृष्टि से महाकाव्य को ऐतिहासिक श्रेणी में रखा गया है। राजा नल को दमयन्ती की प्राप्ति ही इसका फल है तथा निषध देश के राजा नल का चरित वर्णित होने से चरित्रनायक की दृष्टि से **''नैषधीयचरितमहाकाव्यम्''** यह नाम भी समीचीन है।

स्पष्टतः महाकाव्य के प्रायः सभी लक्षणों का यथा स्थान महाकवि ने सन्निवेश किया है। अतः नैषधमहाकाव्य को महाकाव्य परम्परा का मुकुटमणि कहना अतिशयोक्ति न होगी।

इस प्रकार संस्कृत काव्यपरम्परा में बृहत्त्रयी की अन्यतम शृङ्खला के रूप में प्रतिष्ठित **नैषधीयचरितम्** के विभिन्न अंगों, उपांगों को केन्द्रित करके नानाविध शोधकार्य विभिन्न विश्वविद्यालयों में सम्पन्न हुए हैं। विविध समीक्षकों द्वारा नैषध के अनेक पहलुओं पर ग्रन्थ लिखे गये हैं। स्वतन्त्र रूप से भी लेखकों ने समीक्षाग्रन्थ लिखें हैं, परन्तु प्राप्त सूचना के आधार पर और मेरी दृष्टि से इस महाकाव्य में प्रतिपादित **'लोकजीवन'** को आधारित करके स्वतन्त्र रूप से कोई कार्य नहीं हुआ है।

अतः महाकवि श्रीहर्ष प्रतिपादित लोकजीवन तथ्यों का विश्लेषण प्रतिपाद्य ग्रन्थ का मुख्य केन्द्र बिन्दु है। जिसे पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है। जिसके अन्तर्गत

प्रथम अध्याय में कवि एवं काव्य परिचय, द्वितीय अध्याय में नैषध में वर्णित धार्मिक सन्दर्भ, तृतीय अध्याय में सांस्कृतिक सन्दर्भ, चतुर्थ में राजनैतिक सन्दर्भ एवं पंचम में सामाजिक सन्दर्भ आदि विषय समाहित हैं, साथ ही उपसंहार एवं सन्दर्भ ग्रन्थ सूची भी संपृक्त है। आशा है कि मेरा यह पुष्प सुधी पाठकों के प्रज्ञा को सुगन्धित करेगा।

संदर्भ सूची

1. अथर्ववेद, 10/8/32।
2. कुङ् शब्दे से 'अचः इः' उणा. 4/139।
3. "गुणवचनब्रह्मणादिभ्यः कर्मणि च" पा.सू. 5/1/124।
4. काव्यलङ्कारसूत्रवृत्ति, 1/2।
5. काव्यालङ्कार (भामह) 1/6।
6. दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्। साहित्यदर्पण, 6/1.1।
7. दृश्यं तत्राभिनयं तद्रूपारोपात्तु रूपकम्॥ साहित्यदर्पण, 6/1.2।
8. साहित्यदर्पण, 6/313.2।
9. गद्यं पद्यं च मिश्रं च तत् त्रिधैव व्यवस्थितम्। काव्यदर्श, 1/11.1।
10. काव्यादर्श, 1/23.1।
11. मुक्तकं वृत्तगन्धि च। भवेदुत्कलिकाप्रायं चूर्णकं च चतुर्विधम् ॥ साहित्यदर्पण, 6/330,2-331.1।
12. छन्दोबद्धपदं पद्यं तेन मुक्तेन मुक्तकम्।
    द्वाभ्यां तु युग्मकं संदानितकं त्रिभिरिष्यते॥
    कलापकं चतुर्भिश्च पञ्चभिः कुलकं मतम्॥ साहित्यदर्पण, 6/314-315।
13. साहित्यदर्पण, 6/316.1।
14. काव्यादर्श, 1/32.2।
15. साहित्यदर्पण, 6/316-325।
16. नेता विनीतोमधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः।
    रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रुढवंशः स्थिरो युवा॥
    बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकला मानसमन्वितः।
    शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः॥ दशरूपकम्, 2/1-2।
17. महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।
    स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढव्रतः॥ साहित्यदर्पण, 2/4।
18. नैषधीयचरित, 1/1।
19. नैषधीयचरित, 1/4।
20. नैषधीयचरित, 1/6।

21. अनल्पदग्धारिपुरानलोज्ज्वलैर्निजप्रतापैर्वलयं ज्वलद् भुवः।
प्रदक्षिणीकृत्य जयाय सृष्ट्या रराज नीराजनया स राजघः।। नैषधीयचरित, 1/10।
22. अयं दरिद्रो भवितेति वैधसीं लिपिं ललाटेऽर्थिजनस्य जाग्रतीम्।
मृषा न चक्रेऽल्पितकल्पपादयः प्रणीय दारिद्र्यदरिद्रतां नृपः।।
विभज्य मेरुर्न यदर्थिसात्कृतो न सिन्धुरुत्सर्गजलव्ययैर्मरुः।
अमानि तत्तेन निजायशोयुगं द्विफालबद्धाश्चिकुराः शिरस्थितम्।। नैषधीयचरित, 1/15-16।
23. अजस्त्रभ्यासमुपेयुषा समं मुदैव देवः कविना बुधेन च।
दधौ पटीयान् समयं नयन्नयं दिनेश्वरश्रीरुदयं दिने दिने।। नैषधीयचरित, 1/17।
24. नैषधीयचरित, 18/40।
25. नैषधीयचरित, 14/55।
26. नैषधीयचरित, 4/29।
27. नैषधीयचरित, 2/54।
28. नैषधीयचरित, 1/135।
29. नैषधीयचरित, 16/109।
30. नैषधीयचरित, 21/5, उत्तरार्ध।
31. नैषधीयचरित, 4/72।

✦

प्रथम अध्याय

कवि एवं काव्य-परिचय

निखिल वाङ्मय की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती कवियों की इष्ट देवी हैं सरस्वती रसवती हैं। रस की भूमिका मधुमती भूमिका है, जहाँ स्व-पर-संवेदन विनष्ट होकर विशुद्ध सात्त्विक अनुभूति शेष रह जाती है। इस पवित्र भूमिका में साहित्य का उद्भव होता है। अतः कवि बनने के लिए साधना करनी पड़ती है।

कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः।[1]

तथा - **अपारे काव्यसंसारे कविरेकः प्रजापतिः।**
यथास्मै रोचते विश्वं तथैव परिवर्तते।।[2]

इन वचनों द्वारा कवि को साक्षात् स्वयम्भूः अर्थात् प्रजापति के रूप में स्वीकार किया गया है।

काव्यसृष्टि को सम्पन्न करने वाला यह कवि जैसा चाहता है सृष्टि तदनुरूप उपस्थित हो जाती है। कवि ईश्वर का रूप होता है; जिसे स्वीकार करते हुये श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है–

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः।।[3]

कवि अपने श्रेष्ठ ज्ञान के कारण ऋषि पद को प्राप्त करता है तदनन्तर उसकी वाणी का अनुगमन अर्थ स्वयं करने लगते हैं।

"ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति।"[4] यह तथ्य सकल संस्कृत वाङ्मय एक स्वर से स्वीकार करता है कि कवि की वाणी के द्वारा निस्सृत काव्य-सृष्टि नियतिकृतनियमरहिता, नवरसरुचिरा, आनन्दैकमयी होती है।

कवि की महत्ता को दृष्टिगत करते हुये किसी सहृदय पारखी ने **"जहाँ न पहुँचे रवि तहाँ पहुँचे कवि"** कहकर कवि को सूर्य से भी श्रेष्ठ स्वीकार किया है। मनुष्य के हृदय में प्रतिक्षण उत्पद्यमान भावों के सूक्ष्म निरीक्षण तथा अनुपम अभिव्यंजन में जिस कवि की सद्यः निर्वृत्तिदायिनी वाणी विलास करती है वही वास्तविक कवि माना जाता है। कवि के कवित्व के दो पहलू हैं।

1. बाह्यसौन्दर्य 2. आभ्यन्तर सौन्दर्य।

बाह्यसौन्दर्य की अपेक्षा आभ्यन्तर सौन्दर्य के वर्णन से कवि के कवित्व का यथार्थ परिचय प्राप्त होता है। बाह्यसौन्दर्य आभ्यन्तर सौन्दर्य की तुलना में स्थिर, निष्प्राण और अपरिवर्तनीय है। जैसे आकाश का नीलापन एक स्वाभाविक रंग है, परन्तु मनुष्य का हृदय नितान्त परिवर्तनशील वस्तु है; जिसमें कभी घृणा भक्ति का रूप धारण कर लेती है, अनुकम्पा से भक्ति की उत्पत्ति हो जाती है और प्रतिहिंसा से कृतज्ञता का जन्म हो जाता है। जो कवि इस अन्तर्जगत् के रहस्य को खोलकर दिखाता है वही यथार्थ कवि के नाम से पुकारा जाता है।

देववाणी नाम से विख्यात संस्कृत भाषा की इस श्रेणी में आने वाले यथार्थ कवियों की संख्या अगणित है। हृदय पक्ष और कला पक्ष दोनों में ही अवसरानुकूल अपूर्व मिश्रण एकमात्र संस्कृत काव्यों में ही दृष्टिगोचर होता है। हृदय पक्ष के प्राधान्य से सुसज्जित प्राचीन काव्यों की अपेक्षा अर्वाचीन कवियों के काव्यों में केवल कला पक्ष का समाश्रयण ही कविता कामिनी को सुसज्जित और बृहदाकार बनाता है। यह स्पष्ट है कि अर्वाचीन कवियों में हृदय पक्ष की वाल्मीकि, व्यासादि कवियों की अपेक्षा सच्ची परख का सर्वथा अभाव पाया गया है। परन्तु विपुल संस्कृत वाङ्मय में उभय पक्षों का यदि मंजुल संयोग किसी महाकवि में उपलब्ध होता है तो वे एकमात्र कवि श्रीहर्ष हैं। जिन्होंने नैषधीयचरित महाकाव्य का प्रणयन कर संस्कृत वाङ्मय में श्रीवृद्धि की है।

संस्कृत साहित्याकाश में श्रीहर्ष नाम के तीन व्यक्ति पाये जाते हैं; जिनका उल्लेख निम्नवत् प्रस्तुत है–1 स्थाण्वीश्वर तथा कान्यकुब्ज के प्रसिद्ध सम्राट् हर्षवर्धन जो श्रीहर्ष, हर्षदेव और हर्ष नाम से प्रसिद्ध हुवे, जिन्होंने रत्नावली, नागानन्द, प्रियदर्शिका इन तीन नाटकों की रचना की। उनके दरबार की शोभा बाणभट्ट, मयूर, मातंग, दिवाकर, धावक, आदि कवि बढ़ाया करते थे। यद्यपि सम्राट् हर्षवर्धन का सम्पूर्ण जीवन युद्ध में ही व्यतीत हुआ। अतएव ये उपर्युक्त नाटकों के रचयिता नहीं माने जा सकते। परन्तु संस्कृत के प्रति अपार श्रद्धा रखने वाले हर्ष अपने आश्रयी कवियों को धनादिके द्वारा सम्मानित किया करते थे; जिससे प्रसन्न होकर संस्कृत कवियों ने अपनी कतिपय रचनायें श्रीहर्ष को समर्पित कर दी जिस कारण श्रीहर्ष उन रचनाओं के रचयिता कहलाये। इसका प्रबल प्रमाण आचार्य मम्मटसम्मत काव्यप्रयोजन है, जहाँ **"श्रीहर्षादेर्धावकादीनामिव धनम्।"**[5] इस बात को पुष्ट करता है। श्रीहर्ष का शासन काल 606ई. से 647ई. तक माना गया है।

श्रीहर्षनाम से विख्यात एक प्रतापी नरेश का वर्णन कल्हण की राजतरंगिणी में प्राप्त होता है। ये कश्मीर के उच्चकोटि के कवि एवं पण्डित भी थे; जिनकी ख्याति सर्वत्र प्रसृत थी। इनका काल 11वीं शताब्दी का अन्तिम दशक माना जाता है–

सोऽशेषदेशभाषाज्ञः सर्वभाषासु सत्कविः।
कीर्तिर्विद्यानिधिः प्राप ख्यातिं देशान्तरेष्वपि।।[6]

ये दोनों हर्ष नामक कवि नैषधीयचरितमहाकाव्य के रचनाकार नहीं हैं, क्योंकि ये दोनों ही प्रतापी नरेश और वीर योद्धा हैं। राजतरंगिणी में द्वितीय श्रीहर्ष के विषय में लिखी गयी प्रशस्ति अतिशयोक्ति सी जान पड़ती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि एक व्यक्ति समस्तदेशों में प्रचलित भाषाओं का ज्ञाता नहीं हो सकता और नहीं सभी भाषाओं का कवि ही। ये कश्मीर नरेश तो सभी भाषाओं के सत्कवि माने गये हैं। अतः यह वाक्य अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं तो और क्या हो सकता है?

प्रथम श्रीहर्ष के नैषधीयचरित के रचनाकार होने की आंशिक सम्भावना जान पड़ती है। जो अपनी बहन राज्यश्री के राज्यसंचालनार्थ स्थाण्वीश्वर से कन्नौज चला गया था। सम्भव यह है कि कन्नौज के ही किसी कवि द्वारा नैषधीयचरित की रचना की गयी हो, जिसे धन देकर श्रीहर्ष ने अपने आपको नैषधीयचरित का कर्त्ता घोषित कर दिया हो। इस प्रकार नैषधीयचरित महाकाव्य के रचनाकार धावक कवि माने जा सकते हैं। श्रीहर्ष के दरबार में रहने वाले धावक को उचित आसन एवं ताम्बूलद्वय दिया जाता हो; जिसकी चर्चा– **''ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्।''**[7] इस पद्यांश से की गयी हो तथा काव्य विक्रय के अनन्तर परिवर्तित नहीं किया जा सका हो। इसका प्रमुख कारण हो सकता है कि नैषधीयचरित को अल्पसमय में ही ख्याति प्राप्त हो चुकी हो। परन्तु यह मत भी स्वयमेव खण्डित हो जाता है क्योंकि नैषधीयचरित में श्रीहर्ष ने स्वयमेव प्रत्येक सर्ग की समाप्ति पर अपना नाम श्रीहर्ष, पिता का श्रीहीर और माता का नाम मामल्लदेवी बताया है– **श्रीहर्षं कविराजराजि-मुकुटालङ्कारहीरः सुतम्।**[8] जबकि सप्तम शताब्दी के श्रीहर्ष के पिता का नाम प्रभाकरवर्धन एवं माता का नाम यशोमती था।

नैषधकार श्रीहर्ष

संस्कृत वाङ्मय में तृतीय श्रीहर्ष का काल 12वीं शताब्दी का द्वितीय चरण माना जाता है; जो नैषध के रचनाकार हैं- **ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्।**[9] इस कथन से इन्होंने जिस कान्यकुब्जेश्वर का संकेत किया है, वे गाहड़वाल वंशीय गोविन्द चन्द्र थे। महाराज गोविन्द चन्द्र महाराज जयचन्द्र के पितामह तथा विजयचन्द्र के पिता थे। श्रीहर्षविरचित विजयप्रशस्ति सम्भवतः महाराज विजयचन्द्र की प्रशंसा में लिखा गया काव्य रहा होगा। श्रीहर्षरचित नैषध का उल्लेख करने वाले सर्वप्रथम हेमचन्द्र के शिष्य महेन्द्रसूरी हैं। जिनका समय 1088 ई. से 1172 ई. के मध्य स्पष्ट विदित है।[10]

देशकाल

संस्कृत साहित्य के अन्य कवियों की भांति श्रीहर्ष के स्थान के विषय में भी पर्याप्त मतभेद दृष्टिगोचर होता है। नैषधीयचरित के टीकाकार गदाधर ने श्रीहर्ष को वाराणसी के महाराज गोविन्दचन्द्र का आश्रित कवि बतलाया है।[11]

श्रीहर्ष ने जिस कान्यकुब्ज नरेश को अपना आश्रयदाता माना है वे गोविन्दचन्द्र वाराणसी और कान्यकुब्ज के महाराज थे। उनके अनेक ताम्रपत्रों से यह बात सिद्ध हो जाती है जो 1155 ई. तक शासन करते रहे। श्रीहर्ष के पाण्डित्य एवं काव्यकला से मन्त्रमुग्ध प्रायः अनेक इतिहासकारों ने उन्हें अपने–अपने राज्य का निवासी होना बतलाने का प्रयत्न किया है। यह जानते हुवे भी कि वे कान्यकुब्ज के आश्रित कवि थे। किसी ने उन्हें कश्मीर का बताया तो किसी ने बंगाल का। श्रीहर्ष को बंगाल का निवासी बताने वाले प्रो. श्रीनीलकण्ठभट्टाचार्य हैं।[12]

परन्तु इनके मत का खण्डन श्रीरघुवीर मिटठ्ल लाल शास्त्री विद्याभूषण ने प्रबल प्रमाणों के आधार पर करते हुवे श्रीहर्ष को कान्यकुब्ज का निवासी सिद्ध किया है। श्रीभट्टाचार्य ने श्रीहर्ष को बंगाली होने के पीछे जो तर्क प्रस्तुत किया है वह 'उलूलु' शब्द का स्वयंवर में दमयन्ती के द्वारा नल के गले में वर माला डालतें समय सुन्दरियों के द्वारा अस्फुट ध्वनि है।[13] श्रीभट्टाचार्य का मानना है कि विवाह में उलूलु शब्द का प्रचलन बंगाल में है। परन्तु इतने मात्र से श्रीहर्ष का बंगाली होना सिद्ध नहीं होता। उलूलु शब्द का उच्चारण विवाह प्रसंग में कश्मीर निवासी मुरारि ने भी अनर्घराघव में किया है- **वैदेहीकरबन्धमङ्गल-यजुःसूक्तं द्विजानां मुखे; नारीणां च कपोलकन्दलतले श्रेयानुलूलध्वनिः।**[14] 13वीं शताब्दी के वस्तुपाल ने नरनारायण में भी उलूलु शब्द का प्रयोग किया है–**मुदितमृगाक्षी मण्डलोलूलुनादः।**[15]

अन्तः एवं बाह्य साक्ष्यों के आधार पर श्रीहर्ष कान्यकुब्ज प्रान्त के थे; यह सिद्ध होता है और यह भी सिद्ध होता है कि उनका निवास कन्नौज या काशी था। यदि सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन किया जाय तो भी यह सिद्ध नहीं किया जा सकता है कि श्रीहर्ष का जन्मस्थान कहाँ था, क्योंकि उन्होंने अपनी कृति में नामतः उल्लेख नहीं किया है। अतएव उनके द्वारा नैषधीयचरित में प्रयुक्त स्थलों के प्रति अनुराग को देखते हुये हम उनके जन्म स्थान एवं भूमि के विषय में अपना तर्क प्रस्तुत कर रहे हैं। **'ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्'** इस कथन से श्रीहर्ष का कान्यकुब्जेश्वर के द्वारा सम्मानित होना सिद्ध होता है न कि उनका जन्मस्थान कान्यकुब्ज होना सिद्ध होता है। श्रीहर्ष ने काशी के प्रति अपना विशेष अनुराग प्रकट किया है।

स्वयंवर सभा में काशीराज का वर्णन करते हुये श्रीहर्ष ने काशी का बड़े प्रेम के साथ वर्णन किया है– वाराणसी भूलोक से परे है, वहाँ रहना देवलोक में वास करना है। अतएव उस तीर्थ में मरने वालों को मुक्ति ही मिलती है। अन्यथा मुक्ति के अतिरिक्त स्वर्ग से श्रेष्ठ कौन सा पद है जो आनन्द देगा–

वाराणसी निविशते न वसुन्धरायां
तत्र स्थितिर्मखभुजां भुवने निवासः।
तत्तीर्थमुक्तवपुषामतएव मुक्तिः
स्वर्गात्परं पदमुदेतु मुदे तु कीदृक्।।[16]

स्वयंवर के उपरान्त देवगणों के द्वारा नल दमयन्ती को दिया गया वरदान भी वाराणसी के प्रति श्रीहर्ष की अनुरक्ति को स्पष्ट करता है–राजन्! तुम्हारे निवास के लिये वाराणसी के समीप अस्सी नदी के पास तुम्हारे नाम की एक नगरी होगी। मोक्षाभिलाषी होने पर तुम्हारा निवास इसलिए नहीं किया कि वहां रहकर तुम्हें दमयन्ती के साथ सम्भोग सुख से वंचित रहना पड़ सकता है–

तवोपवाराणसिनामचिह्नं वासाय पारेऽसि पुरं पुराऽऽस्ते ।
निर्वातुमिच्छोरपि तत्र भैमीसंभोगसंकोचभियाऽधिकाशि ।।[17]

देवताओं द्वारा भी नल दमयन्ती को विवाहोपरान्त आशीर्वाद दिया गया है; जिसका स्पष्ट उल्लेख महाभारत के नलोपाख्यान में प्राप्त होता है, परन्तु देवों ने वाराणसी या वाराणसी के समीप नल नगरी का नाम नहीं लिया है। श्रीहर्ष द्वारा वाराणसी का नाम कवि कल्पित ही है। जिससे यह स्पष्ट सिद्ध है कि श्रीहर्ष का वाराणसी के प्रति विशेष लगाव वहां निवास करने के कारण ही था। आज भी काशी के समीप नगवा और नैषढ़ा दो गांव है। जिन्हें नलग्राम या नैषध का अपभ्रंश मानकर नल नगरी को स्वीकार किया जा सकता है। नैषध परिशीलन में डॉ. चण्डिका प्रसाद शुक्ल ने भी ऐसा ही कुछ तर्क नल नगरी के विषय में प्रस्तुत किया है।[18]

कवि का व्यक्तित्त्व

किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व की परिचायिका उसकी कृति होती है। कवि कितना भी संयत होकर अपने व्यक्तित्व को कृति से दूर रखना क्यों न चाहे लेकिन वह अपनी ही लेखनी तूलिका से अपनी कृति में अभिचित्रित हो ही जाता है। यही सिद्धान्त महाकवि श्रीहर्ष के व्यक्तित्व पर खरा उतरता है। कृति में प्रयुक्त शब्दावली, चरित्र–चित्रण, प्रकृतिप्रेम, व्यवहार आदि के वर्णन से कवि का व्यक्तित्व प्रस्फुटित होता रहता है। सभी विद्याओं और कलाओं में निपुण महाकवि श्रीहर्ष अद्भुत व्यक्तित्व सम्पन्न हैं। वे महर्षि पतंजलि सम्मत

विद्या के चारों सोपानों पर आरूढ़ हुवे हैं। महर्षि पतंजलि ने विद्या के चार सोपान बतलाया है–**चतुर्भिः प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति आगमकालेन, स्वाध्यायकालेन, प्रवचनकालेन व्यवहारकालेन च।**[19] श्रीहर्ष द्वारा राजा नल में चतुर्दशविद्याओं का चारों सोपानों से गुजरकर अधिष्ठित हो जाना यह सिद्ध करता है कि श्रीहर्षने महर्षि पतंजलि के महाभाष्य का सूक्ष्मता से अध्ययन कर आत्मसात् किया है। इस प्रकार ये महान् वैयाकरण भी मालूम पड़ते हैं। यद्यपि इन्होंने

उभयी प्रकृतिः कामे सज्जेदिति मुनेर्मतम्।
अपवर्गे तृतीयेति भणतः पाणिनेरपि।।[20]

अर्थात् **अपवर्गे तृतीया**[21] का तात्पर्य अपवर्ग अर्थात् फलप्राप्ति से है। फलप्राप्ति अर्थ बतलाने के लिये काल एवं मार्ग वाचक शब्दों के अत्यन्त संयोग में तृतीया विभक्ति होती है। यथा–**अह्ला कोशेन वानुकोऽधीतः।**[22] अर्थात् एक दिन में या एक कोश भर में अनुवाक पढ़ लिया। इस स्पष्ट अर्थ के वाचक सूत्र में प्रयुक्त अपवर्ग और तृतीया पदों का अन्यार्थ लेकर महर्षि पाणिनि पर व्यङ्ग्य किया गया है, जो श्रीहर्ष के मनोविनोदप्रियता का सूचक है। इसी प्रकार इन्होंने न्याय दर्शन के आद्य आचार्य गौतम को गो अर्थात् बैल, वैषेशिक दर्शन के आचार्य को उल्लू और अद्वैत वेदान्त पर कटाक्ष करते हुवे जीव का ब्रह्म में विलीन होने के सिद्धान्त पर मन्द कटाक्ष प्रस्तुत किया है। इन सभी बातों पर सूक्ष्मता से विचार करने पर यह सिद्ध होता है कि श्रीहर्ष तत्तच्छास्त्रों में असाधारण योग्यता रखने वाले थे।

श्रीहर्ष महान् दार्शनिक थे। उन्होंने अपने पिता श्रीहीर की पराजय के प्रतिशोध में प्रसिद्ध नैयायिक उदयनाचार्य के सिद्धान्तों का प्रबल विरोध किया है। इनके द्वारा रचित **'खण्डनखण्डखाद्य'** ग्रन्थ में उदयनाचार्य के **'कुसुमांजलि'** एवं **'तात्पर्यपरिशुद्धि'** का खण्डन ग्रन्थों के उद्धरण के साथ–साथ किया गया है। श्रीहर्ष ने बौद्धाधिकार ग्रन्थ के उदाहरणों को प्रस्तुत कर अपनी तार्किक बुद्धि का परिचय दिया है।

श्रीहर्ष का व्यक्तित्व सभी गुणों से सम्पन्न था। इनमें साहस कूट–कूट कर भरा था। अगाध पाण्डित्यपूर्ण बुद्धिवाले श्रीहर्ष संस्कृत कवि समाज को चुनौती देते हुवे कहते हैं कि–जो स्वयं को पण्डित मानता है वह वस्तुतः पण्डित नहीं है। वह खल व्यक्ति मेरे काव्य के साथ खिलवाड़ न करे। जिसने श्रद्धापूर्वक गुरु की शुश्रूषा के कारण ज्ञान प्राप्त किया है, वही मेरी उत्कृष्ट रचना की दृढ़ ग्रन्थि को शिथिल कर सकता है–

ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वचित् क्वचिदपि न्यासि प्रयत्नान्मया
प्राज्ञं मन्यमनाहठेन पठिती माऽस्मिन्खलः खेलतु।

श्रद्धाराद्धगुरुश्लथीकृतदृढग्रन्थिः समासादय-
त्वेतत्काव्यरसोर्मिमज्जनसुखव्यासज्जनं सज्जनः।।[23]

श्रीहर्ष का जीवन वैभव एवं राजकीय सुख से सम्पन्न था जिसका वे अनुभव कर चुके थे; क्योंकि इन्हें राजाश्रय प्राप्त था। इस बात को इन्होंने स्वयं **''ताम्बूलद्वमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्''** कहकर स्वीकार भी किया है। समस्त विलासिता के उपकरणों के रहने पर भी इन्होंने अपना जीवन अनासक्त योगी के समान व्यतीत किया है। जो **'श्रीहीरः सुषवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम्।'**[24] के माध्यम से अंगीकार किया है। श्रीहर्ष सिद्धसमाधियोगी थे। इसका प्रबल प्रमाण नैषध में ब्रह्म साक्षात्कारविषयक उनकी उक्तियां हैं।

आत्मवित्सह तया दिवानिशं भोगभागपि न पापमाप सः।
आहृता हि विषयैकतानता ज्ञानधौतमनसं न लिम्पति।।[25]

नैषधवर्णित हंस के उपाख्यान से यह स्पष्टतया सर्वजनसंवेद्य है कि मुनियों के समान दयादिगुणों का श्रीहर्ष में निवास था। तभी तो-

मदेकपुत्रा जननी जरातुरा नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी।
गतिस्तयोरेष जनस्तमर्दयन्नहो विधे त्वां करुणा रुणद्धि नो।।[26]

इस पद्य के माध्यम से निरीह जन्तुओं की हिंसा करने वाले निर्दय मनुष्यों के पाषाण हृदय को द्रवित करने का प्रयत्न किया है। नैषधकार श्रीहर्ष पूर्णरूपेण आस्तिक कवि हैं; क्योंकि एक श्रद्धावान् आस्तिक ही देव तथा तीर्थों का माहात्म्य जान सकता है। इन्होंने काशी को मोक्षदायिनी कहा है और वहीं निवास करने की इच्छा व्यक्त की है जो उनकी आस्तिकता का द्योतक है–

वाराणसी निविशते न वसुन्धरायाम्।[27]

राजा नल अलौकिक दानशील व्यक्ति थे। जिनकी दानशीलता का मुक्त कण्ठ से श्रीहर्ष ने गान किया है। जो यह सिद्ध करता है कि श्रीहर्ष दानशील आस्तिक राजा थे। श्रीहर्ष गृहस्थ का सबसे बड़ा धर्म अतिथिसत्कार को स्वीकार करते हैं।[28] इससे आचार्य मन्वादिसम्मत वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रति आदर भाव व्यंजित होता है। कर्म एवं भाग्य में से भाग्यवाद को स्वीकार करने वाले श्रीहर्ष का कथन है कि जब भाग्य ही कार्य में बाधक तत्त्व बन जाता है तो फिर कोई पौरुष साधक नहीं बन सकता–

तस्मिन्गुणैरपि भृते गणनादरिद्रैस्तन्वी न सा हृदयबन्धमवाप भूपे।
दैवे विरुन्धति निबन्धनतां वहन्ति हन्त! प्रयासपरुषाणि न पौरुषाणि।।[29]

श्रीहर्ष ने भाग्यवाद का पूर्ण समर्थन करते हुये यह स्पष्ट कर दिया है कि ईश्वर ने जिसके ललाट पर जो लिख दिया वह अनुचित होता हुआ भी उचित को हटाकर होता ही है-

यस्येश्वरेण यदलेखि ललाटपट्टे तत्स्यादयोग्यमपि योग्यमपास्य तस्य।
का वासनाऽस्तु बिभृयामिह यां हृदाऽहं? नार्कातपैर्जलजमेति हिमैस्तु दाहम्।।[30]

समुचित व्यवहारज्ञ श्रीहर्ष नैषध काव्य के माध्यम से मानव जाति को यह सन्देश देना चाहते हैं कि उपकार करने वाले का यथासाध्य प्रत्युपकार शीघ्र करना चाहिये। वह प्रत्युपकार छोटा हो या बड़ा विद्वान् लोग इस पर अधिक विचार नहीं करते।

अचिरादुपकर्तुराचरेदथ वात्मौपयिकीमुपक्रियाम् ।
पृथुरित्थमथाणुरस्त सा न विशेषे विदुषामिह ग्रहः।।[31]

श्रीहर्ष का मानना है कि सत्पुरुष को कभी आत्म प्रशंसा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि कार्य द्वारा ही व्यक्ति की योग्यता का पता चलता है शब्दों द्वारा नहीं।

तव संमतिमेव केवलामधिगन्तुं धिगिदं निवेदितम्।
ब्रुवते हि फलेन साधवो न तु कण्ठेन निजोपयोगिताम्।।[32]

महाकवि श्रीहर्ष जन्म-जन्मान्तर के पुण्यों एवं कर्मवाद में विश्वास रखते थे, किन्तु दैव इच्छा को भी उन्होंने परम सत्य के रूप में स्वीकार किया था। नियति नटी के समक्ष मानव परवश होता है ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार अत्यन्त वेगशाली बवन्डर का अनुसरण तृण-समूह विवशवश करता है-

अवश्यभव्येष्वनवग्रहग्रहा यया दिशा धावति वेधसः स्पृहा।
तृणेन वात्येव तयानुगम्यते जनस्य चित्तेन भृशावशात्मना।।[33]

ईश्वरेच्छा का अतिक्रमण मानव तो क्या सुरेश्वर के लिये भी सम्भव नहीं है-

न वस्तु दैवस्वरसाद्विनश्वरं सुरेश्वरोऽपि प्रतिकर्त्तुमीश्वरः।[34]

महाकवि श्रीहर्ष ने भारतभूमि तथा संस्कृत वाणी के प्रति विशेष श्रद्धा प्रकट की है। उन्होंने भारतवर्ष को इलावृतादि वर्षों से उसी प्रकार श्रेष्ठ माना है जिस प्रकार चार आश्रमों में गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ माना जाता है-

''वर्षेषु यद् भारतमार्यधुर्याः स्तुवन्ति गार्हस्थ्यमिवाश्रमेषु।''[35]

महाकवि ने तो भारतवर्ष को स्वर्ग से भी श्रेष्ठ स्वीकार किया है। उन्होंने भारत वर्ष का महत्त्व प्रतिपादित करते हुवे कहा है कि साधु को भी पुण्य समाप्त होने पर स्वर्गसे पतित होना पड़ता है, जबकि भारत भूमि पर जन्म लेकर साधु स्वर्गाभिप्रयाण करता है-

''साधोरपि स्वः खलु गामिताधोगामी स तु स्वर्गमितः प्रयाणे।।''[36]

गीर्वाण भारती का महत्त्व भी कवि ने सर्वत्र स्वीकार किया है। उन्होंने संस्कृत को **''दैवी वाक्''**[37] तथा **''दिव्य वाक्''**[38] माना है।

महाकवि की धार्मिक दृष्टि का अवलोकन करने पर हम पाते हैं कि उनमें धार्मिक कट्टरपन्थी नहीं थी अपितु उदार धार्मिक नीति के समर्थक थे। उनका धर्म अपेक्षाकृत लचीला था। आवश्यकतानुसार परिवर्तनशील था। उनके धर्माचरण में गतिशीलता थी–

'निषिद्धमप्याचरणीयमापदि क्रिया सती नावति यत्र सर्वथा।''[39]

स्पष्टतः महाकवि श्रीहर्ष साहित्य, दर्शन, न्याय, तर्क विद्या वेद-वेदाङ्ग, सङ्गीत, गणित, आयुर्वेद, ज्योतिष, पुराण तथा नीतिशास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् थे। साहित्य के इस महान् उपासक ने अन्ततः एक अभिमानी स्त्री की अवमानना से क्षुब्ध होकर माँ गङ्गा के अङ्क का आश्रय ले लिया।

नैषध महाकाव्य का परिचय

सम्पूर्ण भाषाओं में यदि कोई मधुर भाषा है तो वह संस्कृत भाषा है। इस भाषा में भी यदि कोई मधुर वस्तु है तो वह काव्य है। संस्कृत वाङ्मय काव्यों का रत्नाकर है। शृंगारादि रसों के द्वारा सहृदयों के हृदय को आप्लावित करने वाले ये काव्य केवल किसी कवि के रचना मात्र ही नहीं होते अपितु कुशल पथ प्रदर्शक एवं समाज के विकास में महान् योगदान देने वाले उन्नायक के समान होते हैं। एक ओर तो संस्कृत के काव्य दिव्य नायक के चरित्र का वर्णन कर महाकाव्य का सुखावसान प्रस्तुत करते हुये तत्कालीन समाज के गुण-दोषों का परिशीलन करते हुये वर्तमान एवं भविष्य को शिक्षा देने में तत्पर रहते हैं तो दूसरी तरफ कवि की मंगलकारिणी भावना को भी प्रस्तुत करते हैं। ये काव्य ग्रन्थ अपने बृहत् कलेवर के कारण महाकाव्य की संज्ञा से जाने जाते हैं।

इन्हीं महाकाव्यों की श्रेंणी में आने वाला महाकवि श्रीहर्ष प्रणीत नैषधीयचरित है, जो प्रतापी राजा नल एवं अद्वितीय सुन्दरी दमयन्ती के प्रणय प्रसंग पर अवलम्बित है। 22 सर्गो में उपनिबद्ध 2830 पद्यों वाला यह महाकाव्य बृहत्त्रयी में काव्यशास्त्रियों द्वारा स्वीकृत है।

नैषधीयचरित महाकाव्य का उपजीव्य ग्रन्थ महाभारत है जहाँ वनपर्व में नलोपाख्यान नाम से नल दमयन्ती की कथा दी गई है। इस कथा के एक देश पर अर्थात् नल-दमयन्ती के प्रणय प्रसंग पर सहृदय जन संवेद्य रचना महाकवि ने की है। अब यहाँ प्रसंग वश प्रत्येक सर्ग की कथा वस्तु अतिसंक्षेप में प्रस्तुत है।

कथानक

प्रथम सर्ग

नैषध महाकाव्य का प्रथम सर्ग पुण्यश्लोक महाराज नल की सुधातिशायिनी कथा से प्रारम्भ होती है। राजा नल के यश तथा प्रताप को जगद्व्यापी बताते हुए श्रीहर्ष ने उनकी कीर्ति को अपने मुख से विस्तारित करते हुए अपनी वाणी को पवित्र माना है। नल ने अट्ठारहों विद्याओं का अध्ययन, बोध, आचरण तथा प्रचार के माध्यम से आत्मसात किया।

अधीतिबोधाचरणप्रचारणैर्दशाश्चतस्त्रः प्रणयन्नुपाधिभिः।
चतुर्दशत्वं कृतवान्कुतस्स्वयं न वेद्मि विद्यासु चतुर्दशस्वयम्।।[40]

विजय यात्रा के समय नल की विशाल सेना से अपार धूल-राशि उठती है जिसे कवि अपनी कल्पना से चन्द्रमा में लगे कलंक को राजा नल के सेनाओं द्वारा उड़ायी गयी धूलि से उपमा देता है।

यदस्य यात्रासु बलोद्धतं रजःस्फुरत्प्रतापानलधूममञ्जिम।
तदेव गत्वा पतितं सुधाम्बुधौ दधाति पङ्कीभवदङ्कतां विधौ।।[41]

सूर्य के सामन कान्तिमान राजा नल कवि तथा विद्वानों के साथ काव्य एवं शास्त्र का सानन्द अभ्यास करते हुए समय बिताते थे। अब उनके शरीर में यौवन का आगमन हुआ वैसे ही जैसे वन में मदन-मित्र वसन्त का आगमन होता है। युवा नल का सौन्दर्य त्रैलोक्य में अनुपम था। उस नल को पाने के लिए तीनों लोकों की सुन्दरियाँ तीव्र अभिलाषा रखती थीं।

यौवन के साथ विदर्भ कुमारी दमयन्ती के मन में भी नल के प्रति अनुराग आने लगा। नल दमयन्ती के अनुरूप भी थे। दमयन्ती ने उनके विषय में बहुत कुछ सुना भी था। अतः उस सुन्दरी दमयन्ती का मदनकिङ्कर मन राजा (नल) में विशेष रूप से लगा था। दमयन्ती प्रतिदिन चारणों (बन्दीगणों) द्वारा किये जाने वाले यशोगान के समय ही प्रायः पिता की बन्दना करने के लिए जाती थी तथा अन्य राजाओं के चरित वर्णन के प्रसंग में नल-चरित सुनकर अत्यन्त पुलकित हो जाती थी-

उपासनामेत्य पितुस्स्म रज्यते दिने दिने सावसरेषु वन्दिनाम्।
पठत्सु तेषु प्रतिभूपतीनलं विनिद्ररोमाजनि शृण्वती नलम्।।[42]

उसी प्रकार नल भी युवकों के धैर्य को विलुप्त करने वाले दमयन्ती के गुणों को लोगों से सुना करते थे और उसमें उनका मदनानुराग भी जगता था। अतिशय मदन पीड़ित

होकर भी महामानी नल ने विदर्भराज से उनकी पुत्री न माँगी। अन्त में जब विरह-लक्षणों को छिपाने में नल हर प्रकार से असमर्थ हो गए तो उन्होंने उपवन विहार के बहाने निर्जन स्थान में जाने की अभिलाषा की और अपने कुछ अति विश्वासी मित्रों के साथ वे एक अद्भुत गुण सम्पन्न घोड़े पर सवार होकर उपवन की ओर चले। जहाँ उन्होंने एक स्वर्ण हंस को देखा और उसे पकड़ लिया। पकड़े गये हंस के करुण विलाप से स्वभावतः करुणापरायण, राजा नल की करुणा जाग गयी और उन्होंने हंस को छोड़ दिया। जिससे हंस को अपार हर्ष हुआ।

द्वितीय सर्ग

नैषध के द्वितीय सर्ग का प्रारम्भ नल एवं हंस के परस्पर वार्तालाप से होता है। जहां हंस राजा नल से विश्वसुन्दरी दमयन्ती के रमणीय रूप का वर्णन करते नहीं थकता। वह कहता है- इसका नाम ही तीनों भुवनों की सुनयनाओं के सौंदर्य गर्व को अपनी तन की शोभा से दमन करने के कारण दमयन्ती पड़ा है।

भुवनत्रयसुभ्रुवामसौ दमयन्ती कमनीयतामदम्।
उदियाय यतस्तनुश्रिया दमयन्तीति ततोऽभिधां दधौ।।[43]

उसी उपवन के रमणीय सरोवर में से स्नान करके निकले हुये एक हंस को राजा ने पकड़ लिया परन्तु हंस के करुण विलाप करने पर उसे जीवन दान दे देता है।

राजा चंगुल में आये हंस के द्वारा दमयन्ती के अद्भुत सौन्दर्य का वर्णन सुनकर और भी मदन व्यथित हो उठता है और राजा हंस से कहता है कि अपने रूप लावण्य से त्रैलोक्य को मोह लेने वाली उस दमयन्ती के विषय में मैंने सैकड़ो बार सुना है इस समय तुम्हारे कथन से तो मैं उसे साक्षात् देख रहा हूँ। अर्थात् मानो वह मेरी आँखों के सामने उपस्थित हो गयी हो।

शतशः श्रुतिमागतैव सा त्रिजगन्मोहमहौषधिर्मम।
अधुना तव शंसितेन तु स्वदृशैवाधिगतामिवैमि ताम्।।[44]

इस प्रकार दोनों मधुर वार्तालाप करते हैं। तत्पश्चात् हंस दमयन्ती के पास राजा के सौन्दर्य का वर्णन करने के लिए उड़ता है। महाकवि श्रीहर्ष ने सर्ग के अन्त में हंस के उड़ने का सजीव वर्णन एवं कुण्डिन नगर का सजीव चित्रण किया है।

अथ भीमसुतावलोकनैः सफलं कर्तुमहस्तदेव सः।
क्षितिमण्डलमण्डनायितं नगरं कुण्डिनमण्डजो ययौ।।
प्रथमं पथि लोचनातिथिं पथिकप्रार्थितसिद्धिशंसिनम्।
कलसं जलसंभृतः पुरः कलहंसः कलयाम्बभूव सः।।[45]

तृतीय सर्ग

तृतीय सर्ग का आरम्भ हंस के दमयन्ती के पास आगमन से होता है। जहाँ दमयन्ती की सखियों के द्वारा हंस को आदरपूर्वक देखा जाता है और हंस दमयन्ती को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। जिसको पकड़ती हुई दमयन्ती लताओं के समीप आ जाती है। दमयन्ती को अकेला जानकर हंस मनुष्य वाणी में बोलना प्रारम्भ करता है।

रुषा निषिद्धालिजनां यदैनां छायाद्वितीयां कलयाञ्चकार।
तदा श्रमाम्भःकणभूषिताङ्गी स कीरवन्मानुषवागवादीत्।।[46]

वह कहता है कि मैं भूलोक में नल के विलास तालाब में विहार करके यहाँ पर्यटन कर रहा हूँ। हंस अपनी सुन्दर एवं मनोहर वाणी के द्वारा राजा नल के दिव्य गुणों की प्रशंसा सुना कर दमयन्ती को नल के प्रति आसक्त करना चाहता है। अनन्तर अपनी सारगर्भित वाणी के द्वारा दमयन्ती को नल के प्रति आसक्त बनाता है।

भिन्न पुरुष से सम्बन्ध कदापि योग्य नहीं है अर्थात् आप के रूप, गुण और सौन्दर्य के अनुरूप यदि कोई पृथ्वी पर है तो वे एकमात्र राजा नल हैं। जैसे कोमल बेली की माला अत्यन्त कठोर कुश की रस्सी से नहीं गुथी जा सकती वैसे ही राजा नल ही आपके सौन्दर्य के अनुरूप हैं।

सतां स तावत्खलु दर्शनीयः।।[47] वाक्य के द्वारा दमयन्ती के हृदयगत भावों को जान लेता है और **चेतो नलं कामयते मदीयम्।।**[48] इस श्लिष्ट प्रयोग से "मेरा चित्त लंका नहीं जाता है, अपितु मेरा चित्त नल को चाहता है" सुनकर स्पष्ट रूपेण दमयन्ती का नल के प्रति प्रणयभाव को जानने का पुनः प्रयत्न करता है। दमयन्ती और हंस के मधुर कथोपकथन जो नल विषयक है। इसके पश्चात् तृतीय सर्ग के अन्त में हंस नल की राजधानी को प्रस्थान करता है।

चतुर्थ सर्ग

नैषध का चतुर्थ सर्ग दमयन्ती के हृदय में हंस के वार्तालाप से जनित नल के प्रेम से होता है। उसका सौन्दर्य नल को प्रतिपल याद करके और निखर आता है। इस सर्ग में विशेष रूप से दमयन्ती के अद्भुत विरह का वर्णन प्रस्तुत किया गया है जो राजा नल को पा लेने के लिए व्याकुल दमयन्ती के हृदय देश में निवास कर रहा है।

इयमनङ्गशरावलिपन्नगक्षतविसारिवियोगविषावशा।
शशिकलेव खरांशुकरार्दिता करुणनीरनिधौ निदधौ न कम्।।[49]

दमयन्ती की सखियों द्वारा बार-बार विरह त्यागने की बात कहने पर दमयन्ती

उत्तर प्रत्युत्तर प्रस्तुत करती है। एक सखी दमयन्ती से कहती है कि हे दमयन्ती! आपके प्रिय नल आपके हृदय में ही हैं तब आप क्यों विषाद करती हैं। इस पर दमयन्ती कहती है कि वे मेरे हृदय में ही हैं बाहर नहीं हैं, अर्थात् दिखाई नहीं दे रहे हैं इसी कारण से मैं विषाद कर रही हूँ।

हृदय एव तवास्मि स वल्लभस्तदपि किं दमयन्ति! विषीदसि!

हृदि परं न बहिः खलु वर्तते सखि! यतस्तत एव विपद्यते।।[50]

महाकवि श्रीहर्ष ने दमयन्ती विरह का जैसा वर्णन प्रस्तुत किया है वैसा विरह वर्णन नैषधीयचरित के अतिरिक्त अन्यत्र दुर्लभ ही नहीं अप्राप्य भी है।

पंचम सर्ग

दमयन्ती की स्वयंवर चर्चा से स्वागता छन्द में पञ्चम सर्ग प्रारम्भ होता है। जहाँ राजा भीम स्वयंवर के लिए राजाओं को बुलाना ही चाहते हैं कि अचानक आकाश मार्ग से नारदमुनि इन्द्र से मिलने के लिए वेगपूर्वक गति से चले जाते हैं।

गच्छता पथि विनैव विमानं व्योम तेन मुनिना विजगाहे।

साधने हि नियमोऽन्यजनानां योगिनां तु तपसाऽखिलसिद्धिः।।[51]

इन्द्र के पास पहुचने पर दोनों के मध्य वार्तालाप प्रारम्भ होता है जहाँ नारद के द्वारा दमयन्ती की सूचना इन्द्र को दी जाती है। वे यह भी बताते हैं कि दमयन्ती किसी अज्ञातनामा युवक को हृदय से चाहती भी है।

सम्प्रति प्रतिमुहूर्तमपूर्वा कापि यौवनजवेन भवन्ती।

आशिखं सकृतसारभृते सा क्वापि यूनि भजते किल भावम्।।[52]

नारद के चले जाने पर इन्द्र को भी दमयन्ती प्राप्ति की अभिलाषा होती है और वे भी स्वयंवर में अग्नि वरुण तथा यम को लेकर भू लोक चल देते हैं। मार्ग में ही उन्हें दमयन्ती स्वयंवर में जाते हुए राजा नल मिलते हैं। नल के अद्भुत रूप को देखते ही सभी देवगण हृदय से हार जाते हैं और उनका मन दमयन्ती से विमुख होने लगता है। देवराज इन्द्र जो वञ्चना कुशल हैं वे अपना तथा देवगण का परिचय छल से देते हैं।

एष नैषध! स दण्डभृदेष ज्वालजालजटिलः स हुताशः।

यादसां स पतिरेष च शेषं शासितारमवगच्छ सुराणाम्।।[53]

परन्तु राजा नल भी इन देवगणों की दमयन्ती के प्रति आसक्तिजनक कार्य का विरोध करते हैं। किन्तु चाटुकारिता पूर्ण बातों से देवराज इन्द्र राजा नल को दौत्यकार्य समर्पित करते हैं

पाणिपीडनमहं दमयन्त्याः कामयेमहि महीमिहिकांशो!।
दूत्यमत्र कुरु नः स्मरभीतिं निर्जितस्मर! चिरस्य निरस्य।।[54]

इस प्रकार अदृश्य रूप वरदान पाकर राजा नल वहाँ से कुण्डिनपुर जाने को उद्यत होते हैं।

षष्ठ सर्ग

षष्ठ सर्ग का प्रारम्भ राजा नल के दौत्यवेष में कुण्डिनपुर में प्रवेश करने से होता है। अन्तःपुर में पहुँचकर राजा रमणियों के सविश्रम्भ खुले अङ्ग प्रत्यङ्गों को देखकर व्रीडावनत हो जाता है।

अन्तः पुरान्तस्स विलोक्य बालां काञ्चित्समालब्धुमसंवृतोरुम्।
निमीलिताक्षः परया भ्रमन्त्या सङ्घट्टमासाद्य चमच्चकार।।[55]

अदृश्य रूप होने के कारण राजा नल कभी-कभी वहाँ की नगर रमणियों के शरीर के संघर्ष से पुलकित वदन भी हो जाते हैं। उस अन्तःपुर में लावण्य युक्त अत्यन्त रूपवती कन्या दमयन्ती को ढूँढते हुवे परिश्रान्त राजा अट्टालिकाओं में विश्राम के लिए चले जाते हैं। उसी क्षण माता को प्रणाम कर लौट रही अद्वितीय सुन्दरी दमयन्ती दिखलाई देती है। परन्तु उस दमयन्ती को पूर्व में न देखने के कारण राजा को भ्रम बना रहता है और दमयन्ती भी राजा नल के अदृश्य रूप के कारण उसे नहीं देख पाती है। दमयन्ती वहाँ से गगनचुम्बी महल की ओर प्रस्थान करती है। राजा नल भी उसका अनुगमन करते हुवे महल में पहुँचते हैं, जहाँ इन्द्र, यम, अग्नि आदि देवों द्वारा भेजी गयी दूतियां तत्तत् देवों को वरण करने के लिए अनेकधा प्रशंसा करती हुई दमयन्ती से कहती हैं। दमयन्ती की सखियां भी इन्द्र-दूती की बातों का समर्थन करती हैं किन्तु दमयन्ती देवराज इन्द्र द्वारा भेजी गई पारिजात माला को सादर स्वीकार करती हुई सविनय उत्तर देती है–

इत्युक्तवत्या निहितादरेण भैमीगृहीता मघवत्प्रसादः।
स्रवपारिजातस्य ऋते नलाशां वासैरमेषामपुपूरदाशाम्।।[56]

हे दूति! देवराज के विषय में कही हुई तुम्हारी सारी बातों को मैंने सुन लिया किन्तु पतिव्रत धर्म के अत्यन्त प्रतिकूल होने के कारण ये मेरे लिए दुस्सह हैं क्योंकि मैं पहले से ही अपने उस नर रूप धारी इन्द्र (नल) को मन से समर्पित हो चुकी हूँ, उस देवरूपधारी इन्द्र को नहीं। इन्द्र की कृपा से प्राप्त अन्तर्धान शक्ति के कारण नल अपने प्रति दमयन्ती के अनुराग वचनों को सुनने का सुन्दर अवसर पाते हैं।

श्रवणपुटयुगेन स्वेन साधूपनीतं दिगधिपकृपयात्तादीदृशः सन्निधानात्।
अलभत मधुबालारागवागुत्थमित्थं निषधजनपदेन्द्रः पातुमानन्दसान्द्रः।।[57]

सप्तम सर्ग

दमयन्ती का उन देवों के प्रति अभिलाषी न हो पाने से निरभिलाष मन से इन्द्रादि देवों के चले जाने पर तथा राजा नल द्वारा अद्वितीय सुन्दरी दमयन्ती के अङ्ग-प्रत्यङ्गों के किये गये वर्णन से सप्तम सर्ग का प्रारम्भ होता है।

प्रतिप्रतीकं प्रथमं प्रियायामथान्तरानन्दसुधासमुद्रे।
ततः प्रमोदाश्रुपरम्परायां ममज्जतस्तस्य दृशौ नृपस्य।।[58]

राजा नल दमयन्ती के सौन्दर्य का वर्णन करते हुवे कहते हैं कि अमृतरस के समान दमयन्ती के मुख समुद्र में मैं जब डूबने लगा तो मानो उसके उन्नत पयोधर ही मेरे रक्षक बने-

वेलामतिक्रम्य चिरं मुखेन्दोरालोकपीयूषरसेन तस्याः।
नलस्य रागाम्बुनिधौ विवृद्धे तुङ्गौ कुचावाश्रयति स्म दृष्टिः।।[59]

राजा नल दमयन्ती के सौन्दर्य के विषय में सोचते हुवे कहता है कि पहले तो ब्रह्मा ने ही दमयन्ती को लोकोत्तर अद्वितीय सुन्दरी बनाया फिर यौवन ने इसे और ऊपर उठाया और अन्त में मदन ने विलास कला पढ़ाकर तो इसे अवर्णनीय ही बना डाला। यह यथोचित काल है सखियों से घिरी दमयन्ती के समक्ष अपने को प्रकट करने का।

अष्टम सर्ग

नैषध के अष्टम सर्ग में राजा नल स्पष्ट रूप से सुन्दरियों सहित दमयन्ती के द्वारा देखे जाते हैं। राजा नल को देखकर दमयन्ती के मन में ऊहापोह होता है--

संसारसिन्धावनुबिम्बमत्र जागर्ति जाने तव वैरसेनिः।
बिम्बानुबिम्बो हि विहाय धातुर्न जातु दृष्टातिसरूपसृष्टिः।।[60]

वह हंस के द्वारा बताये गये गुणों के आधार पर नल को मानो पहचान लेती है और नल से उनका परिचय पूछती है। दमयन्ती के द्वारा अपना नाम लिए जाने पर भी नल अत्यन्त स्पष्ट परिचय नहीं देते हैं। बल्कि अपने आपको देवताओं द्वारा भेजा गया दूत ही बताते हैं। और यह कहते हैं कि इन्द्र, वरुण, अग्नि और सूर्यपुत्र यमराज को आपके गुण आकृष्ट कर रहे हैं। ये सब आपको पाने के लिए पल-प्रतिपल मदन बाणाहत हो रहे हैं-

कौमारमारभ्यगणा गुणानां हरन्ति ते दिक्षु धृताधिपत्यम्।
सुराधिराजं सलिलाधिपञ्च हुताशनञ्चार्यमनन्दनञ्च॥[61]

राजा नल के द्वारा इन्द्र, वरुण यमादि देवताओं के विरह का अनुपम वर्णन महाकवि श्रीहर्ष ने इस अष्टम सर्ग में किया है। जहाँ दमयन्ती अपने चित्त में बसने वाले नल के गुणों का इस दूत नल में अनुमान कर राजा नल के अद्‌भुत सौन्दर्य का बखान करती है। दूत रूप में आये राजा नल को यह स्पष्ट रूप से बताती हैं कि कामदेव आपके पैर के अंगूठे के नख के बराबर भी नहीं हैं अर्थात् आप सैकड़ो काम देवों से भी सुन्दर हैं।

नवम सर्ग

नवम सर्ग का आरम्भ दूत के रूप में दमयन्ती से राजा नल के द्वारा किये गये वार्तालाप के विमर्श से होता है। जहाँ महाकवि श्रीहर्ष ने स्पष्ट किया है कि दमयन्ती ने नल की बातों को इस लिए नहीं सुना कि वे इन्द्रादि के महत्त्व को ख्यापित करने वाले थे बल्कि इस लिए सुना कि वे राजा नल के मुख से कहे जा रहे थे। दमयन्ती के द्वारा पुनः परिचय पूछे जाने पर भी वह अपने आप को दूत बतलाकर यह कहता है कि दूत के तौर पर आने वाले व्यक्ति के द्वारा वंश का परिचय देना उपहास है।

राजा नल दमयन्ती से यह कहता है कि-हे सुन्दरी सज्जनों की आचार परम्परा ऐसी है कि सज्जन अपना नाम नहीं लेते हैं। इसी लिए मैं यदि अपना नाम लूँगा तो उल्लंघन होगा।

महाजनाचारपरम्परेदृशी स्वनाम नामाददते न साधवः।
अतोऽभिधातुं न तदुत्सहे पुनर्जनः किलाचारमुचं विगायति॥[62]

वाक्पटु व्यवहार कुशल और लोक परम्परा का पालन करने वाली दमयन्ती दूत नल को यह स्पष्ट बता देना चाहती है कि परपुरुष के साथ सम्भाषण सदाचार के विरुद्ध है।

मयापि देयं प्रतिवाचिकं न ते स्वनाम मत्कर्णसुधामकुर्वते।
परेण पुंसा हि ममापि सङ्कथा कुलाबलाचारसहासनासहा॥[63]

चतुर दमयन्ती ने इन्द्र को देव और अपने को मनुष्य बताकर देवाङ्गनाओं की नगरी में मनुष्य के सौन्दर्य को कहती है कि उर्वशी के समागम से सुशोभित होने वाले इन्द्र के लिए तो मैं अत्यन्त तुच्छ जीव के समान हूँ। वह स्पष्ट रूपेण यह कहती है कि यदि राजा नल मेरा पाणिग्रहण नहीं करेंगे तो मैं अपनी इह लीला समाप्त कर लूँगी। यह मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा है।

नल के द्वारा इन्द्रादि दिग्पालों का महत्त्व बताकर बारम्बार उनके प्रति अनुरक्ति के लिए दमयन्ती को प्रेरित किया जाता है। परन्तु दमयन्ती नल के अतिरिक्त किसी अन्य का नाम सुनना भी पसन्द नहीं करती है और नल का नाम लेकर वह विलाप करने लगती है। उसके करुण विलाप को सुनकर नल का हृदय द्रवित हो जाता है और वे स्वयं को अनजाने में प्रकट करते हैं, परन्तु जब उन्हें यह पता चलता है कि वे एक दूत के रूप में आये हैं न कि नल के रूप में तो उन्हें अधिक पश्चाताप होने लगता है। उसी वक्त हंस वहाँ उपस्थित होता है और नल से यह कहता है कि यदि तुम इसे निराश करोगे तो यह प्राण दे देगी, तूने अपने आप को प्रकट कर कोई अपराध नहीं किया है। दमयन्ती के द्वारा अभिज्ञात नल देवों के साथ स्वयंवर में आने का वचन देकर कपटी इन्द्रादि देवों के पास पहुँचते हैं और सम्पूर्ण वृन्तान्त देवताओं को सुना देते हैं। राजा नल दूत कर्म में असफल होने पर लज्जा भी प्रकट करते हैं।

दशम सर्ग

नैषध का दशम सर्ग दमयन्ती के स्वयंवर समारोह से होता है जहाँ सभी देशों के राजा कुमारी दमयन्ती को पाने की लालसा लिए उपस्थित होते हैं। इस स्वयंवर में सत्कुलोत्पन्न एवं दुष्कुलोत्पन्न वीरों का आगमन होता है। देव, गन्धर्व नाग स्वयंवर में उपस्थित होते हैं। कुण्डिनपुर में राजा भीम के द्वारा उन सबका यथोचित सत्कार किया जाता है। राजा नल और कपट से नल रूप धारी इन्द्रादि चारों देव भी वहाँ उपस्थित होते हैं। आकाश से ऋषि मुनि और देवगण स्वयंवर की शोभा का आनन्द लेते हुवे उसकी प्रशंसा करने लगते हैं।

अनेक लोकों से आये विभिन्न युवकों के चरित्र तथा गोत्र का वर्णन मानव शक्ति से परे जानकर पुत्री को इनका परिचय कैसे कराया जाय यह सोचकर विषाद ग्रस्त राजा भीम चक्रपाणि का स्मरण करते हैं।

श्रद्धालुसंकल्पितकल्पनायां कल्पद्रुमस्याथ रथाङ्गपाणेः।
तदाकुलोऽसौ कुलदैवतस्य स्मृतिं ततान क्षणमेकतानः॥[64]

भगवान् के द्वारा सरस्वती को राजकुमारी के परिचय के लिए भेजा जाता है। सरस्वती राजा को विषादमुक्त बैठने को कहती है और यह बताती है कि मैं ही इन सभी कुमारों का परिचय दूँगी। तत्पश्चात् अब अद्वितीय सुन्दरी दमयन्ती का आगमन होता है जिसे देखकर स्वयंवर में पधारे सभी मोहित हो जाते हैं।

एकादश सर्ग

एकादश सर्ग का प्रारम्भ स्वयंवर सभा में बैठी भीमजा दमयन्ती की नल प्राप्ति हेतु प्रसन्नता से होता है। जिस अतिशय आकर्षण युक्त स्वयंवर को देखने के लिये

देव-गण भी विमान पर बैठकर अन्तरिक्ष में विराजमान हैं। स्वयंवर में पधारे विभिन्न राज्य के राजाओं, देवताओं, नागों से दमयन्ती का परिचय कराया जाता है।

परिचय प्रसंग में कवि कहता है कि नागों के पास जब दमयन्ती को लाया गया तो वह कुछ भयभीत सी हो गयी। मनुष्य नरेशों में सर्वप्रथम सरस्वती पुष्कर द्वीप के राजा सवन का परिचय दमयन्ती से कराती हैं–

स्वादूदके जलनिधौ सवनेन सार्धं
भव्या भवन्तु तव वारिविहारलीलाः।
द्वीपस्य तं पतिममुं भज पुष्करस्य
निस्तन्द्रपुष्करतिरस्करणक्षमाक्षि॥[65]

देवी ने भीर शाक द्वीप के स्वामी हव्य का परिचय दिया। इस राजा के वर्णन में कवि कहता है कि यद्यपि उनका राज्य समृद्ध था, उनकी बाहुओं में लक्ष्मी तथा मुख में वाग्देवी का वास था तथापि उनकी न्यूनता इससे परिलक्षित हुयी कि उनके पास कभी इन्द्र याचक के रूप में नहीं गये। इसी प्रकार लक्षद्वीप के राजा मेघातिथि का वर्णन भी नीरस सिद्ध हुआ।

इसके बाद जम्बूद्वीप के राजाओं का वर्णन होता है। सर्वप्रथम अवन्तीनाथ का वर्णन होता है किन्तु दमयन्ती उनकी ओर देखती भी नहीं है। इस प्रकार विभिन्न देश के राजाओं के वर्णन के पश्चात् काशी नरेश के वर्णन में कवि कहता है–

वाराणसी निविशते न वसुन्धरायां
तत्र स्थितिर्मखभुजां भुवने निवासः
तत्तीर्थ-मुक्त वपुषामत एव मुक्तिः
स्वर्गात्परं पदमुदेतु मुदे तु कीदृक्?॥[66]

जिस प्रकार देवों, यक्ष, गन्धर्वों की उपेक्षा पहले दमयन्ती ने की वैसे ही काशी नरेश भी उपेक्षित हुवे। स्वयंवर प्रारम्भ ही था कि कुछ और प्रांन्त के भी राजा स्वयंवर में पधारते हैं। इसी के साथ एकादश सर्ग का अवसान होता है।

द्वादश सर्ग

नैषधीयचरित के द्वादश सर्ग का आरम्भ स्वयंवर में बैठे राजाओं के परिचय से होता है। सरस्वती अयोध्या से पधारे राजा ऋतुपर्ण का वर्णन दमयन्ती से करती हैं। पाण्ड्यदेश के राजा का प्रताप समस्त संसार में फैला हुआ है यदि तुम इसका अधर पान नहीं करना चाहती तो नेत्र पान तो कर लो ऐसा सरस्वती दमयन्ती से कहती हैं।

न पाण्ड्यभूमण्डनमेणलोचने! विलोचनेनापि नृपं पिपाससि?।
शशिप्रकाशाननमेनमीक्षितुं तरङ्गयापाङ्गदिशा दृशस्त्विषः।।[67]

तदनन्तर दमयन्ती को पृथु महेन्द्र पर्वत पाने की अभिलाषा वाले मन्दर स्वामी, काञ्ची, नेपालनरेश मलयाधिपति, मिथिलानरेश, उत्कलनरेश मगधेश्वर आदि राजाओं के गुणों पराक्रमों का वर्णन करती हुई सरस्वती दमयन्ती से वरण करने के लिए कहती हैं। राजा नल में आसक्त चित्ता दमयन्ती इन राजाओं की ओर देखती भी नहीं जिससे लज्जा का अनुभव करते हुये वे राजा अपना सिर झुका लेते है। दमयन्ती अत्यन्त चञ्चल कटाक्षों से नल को देखती है।

नलान्यवीक्षां विदधे दमस्वसुः कनीनिकाऽऽगः खलु नीलिमालयः।
चकार सेवां शुचिरक्ततोचितां मिलन्नपाङ्गः सविधे तु नैषधे।।[68]

इधर कामपीडित नल हर्षाश्रुपूर्ण हो जाते हैं। जिसके कारण दमयन्ती के अन्य कटाक्षों को नहीं देख पाते।

सर्वस्वं चेतसस्तां नृपतिरपि दृशे प्रीतिदायं प्रदाय
प्रापत्तद्दृष्टिमिष्टातिथिममरदुरापामपाङ्गोत्तरङ्गाम्।
आनन्दान्ध्येन वन्ध्यानकृत तदपराकूतपातान् स रत्याः।
पत्या पीयूषधारावलनविरचितेनाशुगेनाशु लीढः।।[69]

त्रयोदश सर्ग

त्रयोदश सर्ग का आरम्भ इन्द्र, अग्नि, वरुण एवं नल के वर्णन से होता है। जहाँ सरस्वती इन्द्र और नल का श्लिष्ट परिचय कराती हैं।

एतादृशीमथ विलोक्य सरस्वती तां सन्देहचित्रभयचित्रितचित्तवृतिम्।
देवस्य सूनुमरविन्दविकासिरश्मेरुद्दिश्य दिक्पतिमुदीरयितुं प्रचक्रे।।[70]

परिचय के क्रम में सरस्वती ने अग्नि का 13 यम का 15 तथा वरुण का 16 श्लिष्ट पद्यों द्वारा परिचय प्रस्तुत किया। जिसके कारण नल का रूप बना कर स्वयंवर सभा में आने वाले देवों का परिचय देकर सरस्वती ने इस सर्ग के 4 श्लोकों में (27 से 30) निषधदेशोद्भव राजा नल का परिचय प्रस्तुत किया है, तो श्लिष्ट पद्यों के द्वारा इन्द्र, अग्नि, यम एवं वरुण का भी परिचय दिया है। बार-बार एक-एक को देखने पर भी दमयन्ती वास्तविक नल का भेद नहीं कर पाती है और उसके हृदय में सैकड़ों शंकाये उठने लगती हैं।

एकैकमैक्षत मुहुर्महतादरेण भेदं विवेद न च पञ्चसु कञ्चिदेषा।
शङ्काशतं वितरता हरता पुनः स्म उन्मादिनेव मनसेयमिदं तदाह।।[71]

ऊहापोह में फँसी दमयन्ती इस त्रयोदश सर्ग के अन्त तक निर्णय नहीं कर पाती कि नल कौन है।

चतुर्दश सर्ग

नैषधीयचरित का चतुर्दश सर्ग इन्द्रादि देवों के पूजन से प्रारम्भ होता है। जहाँ इन्द्रादि देव दमयन्ती की पूजा से सन्तुष्ट हो जाते हैं। तदनन्तर सरस्वती की कथित शिलष्ट उक्तियों के द्वारा वास्तविक़ नल का दमयन्ती पहचान कर लेती है और अत्यन्त हर्ष से उल्लसित हो जाती है।

निश्चित्य शेषं तमसौ नरेशं प्रमोदमेदस्वितराऽऽन्तराऽभूत्।
देव्या गिरां भावितभङ्गिराख्यच्चित्तेन चिन्तार्णवयादसेयम्।।[72]

वह वास्तविक नल का निर्णय तब करती है जब इन्द्रादि नल रूपधारी देवों के पलकों को अपलक देखती है। अर्थात् देवताओं की पलकें नहीं गिरती मात्र खुली रहती हैं और मनुष्य अपनी पलकें खोलता एवं बन्द करता रहता है। दमयन्ती ने जब राजा नल को पलकें गिराते हुवे देखा। उंसे ऐसा लगा कि नल ऐसा कह रहे हैं कि-"तुम यहाँ आकर मिलो।"

सुरेषु नापश्यदवैक्षताक्ष्णोर्निमेषमुर्वीभृति सम्मुखी सा।
इह त्वमागत्य नले मिलेति संज्ञानदानादिव भाषमाणम्।।[73]

इसके अतिरिक्त भी देवताओं के शरीर पर धूलि मात्र भी नहीं थी जबकि नल पर धूल-कण विद्यमान थे जिससे स्पष्ट होता है कि यही नल है।

स्वेदः स्वदेहस्य वियोगतापं निर्वापयिष्यन्निव संसिसृक्षोः।
हीराङ्कुरश्चारुणि हेमनीव नले तयाऽलोकि न दैवतेषु।।[74]

देवताओं के गले में पड़ी मालायें अम्लान प्रतीत हो रही थीं जबकि नल के गले की माला म्लान' होती जा रही थी। इन विभिन्न लक्षणों के द्वारा दमयन्ती नल को पहचान लेती है। नल-अभिज्ञान के पश्चात् देवगण अपना कपट वेष त्याग देते हैं। तदनन्तर दमयन्ती देवों की अनुज्ञा से नल का वरण करती है। तत्पश्चात् सखियाँ मंगल-गान गाती हैं। देव भी इन्हें पृथक्-पृथक् आशीर्वाद देकर अपने-अपने निवास को चल देते हैं।

पञ्चदश सर्ग

नैषध के पन्द्रहवें सर्ग की कथा में वरयात्रा वर्णित है। राजा भीम ज्योतिषियों से सुन्दर शुभमुहूर्त निकलवाकर अपने दूत से राजा नल को आने का शुभ सन्देश देते हैं।

अथावदद्दूतमुखः स नैषधं कुलञ्च बाला च ममानुकम्प्यताम्।
स पल्लवत्वद्य मनोरथाङ्कुरश्चिरेण नस्त्वच्चरणोदकैरिति।।[75]

इधर राजा भीम नगर की सजावट अद्‌भुत कला कृतियों से करवाते हैं।

पथामनीयन्त तथाऽधिवासनान्मधुव्रतानामपि दत्तविभ्रमाः।
वितानतामातपनिर्भयास्तदा पदच्छिदाऽकालिकपुष्पजाः स्रजः।।[76]

मांगलिक कृत्य के अवसर पर गीत गाये जा रहे हैं। विभिन्न प्रकार के वाद्य भी बजाये जा रहे हैं।

तदा निसस्वानतमां घनं घनं ननाद तस्मिन् नितरां ततं ततम्।
अवापुरुच्चैः सुषिराणि राणितामनमानद्धमियत्तयाऽध्वनीत्।।[77]

इस सर्ग में वैवाहिक स्थान को सजाने के उपरान्त दमयन्ती को सजाये जाने की चर्चा है। साथ-ही-साथ आभूषणों से सुसज्जित नल के भी सौन्दर्य का वर्णन है। जो वरयात्रा लेकर विवाह स्थाल पर पधारते हैं। जिन्हें नगर की सुन्दरियाँ अतिशय प्रेम पूर्वक देखकर आनन्द का अनुभव कर रही हैं।

राजा नल के सौन्दर्य को देखती हुई सुन्दरियों ने उनका सौन्दर्य अत्यन्त ही मनोहारी और चित्ताह्लादकारी माना है।

षोडश सर्ग

श्रीहर्ष प्रणीत नैषध के 16वें सर्ग के आदि में पुरोहित गौतम के आगमन का वर्णन है जो विदर्भेश्वर के साथ महल में प्रवेश करते हैं। महल के समीप पहुँची वरयात्रा का स्वागत करने के लिए दमयन्ती के भाई कुमार दम आगे बढ़कर बरातियों का गर्मजोश से स्वागत करते हैं। दम अपने बहनोई नल को आदर के साथ ले जाते हैं। विदर्भेश्वर भीम जामाता नल को गले से लगाते हैं। तदनन्तर सविधि पाणिग्रहण संस्कार प्रारम्भ होता है। महाराज भीम जामाता नल को विवाह के शुभ अवसर पर मूल्यवान् एवं दिव्य उपहार प्रदान करते हैं। ध्यातव्य यह है कि विवाह कालिक प्रमुख विधियों को वर राजा नल स्वयमेव सम्पन्न करते हैं। जब कि पुरोहित मात्र गौणक्रियायों को ही पूरा कर पाते हैं। बारातियों का हास-परिहास पूर्वक स्वागत कुमार दम करते हैं। विवाह के बाद तीन दिन तक नल एवं दमयन्ती संयम पूर्वक शास्त्रविधि से रहे। पाँच, छः रात राजा

नल विदर्भ के यहाँ रहने के बाद दमयन्ती को लेकर पूरे बारातियों के साथ निषध देश को चल देते हैं। व्यवहार कुशल राजा भीम निषधेश्वर सहित बारातियों को राज्य की सीमा तक पहुँचाते हैं। पुत्री वियोग के कारण करुणभाव से युक्त होते हुवे विदर्भनरेश भीम दमयन्ती को गृहस्थोपयोगी उपदेश देते हैं। राजा नल दमयन्ती सहित बारातियों के साथ जब अपने राज्य में पहुँचते हैं तो मार्ग में ही अन्यान्य राज्य के मन्त्रियों द्वारा उनका भव्य स्वागत होता है। उस नगर की पौराङ्गनाओं द्वारा लाजा-वर्षा होती है। आकाश से देवगण इन सभी दृश्यों को देखकर मोमुदित हो रहे हैं।

अवनिपतिरथोद्ध्र्वस्त्रैणपाणिप्रवालस्खलितसुरभिलाजव्याजभाजः प्रतीच्छन्।
उपरि कुसुमवृष्टीरेष वैमानिकानामभिनवकृतभैमीसौधभूमिं विवेश॥[78]

इस प्रकार राजा नल नव निर्मित प्रासाद में अपनी अद्वितीय नवोढा प्रेयसी के साथ प्रवेश करते हैं।

सप्तदश सर्ग

सत्रहवें सर्ग का आरम्भ स्वर्ग जाते हुये देवों को रास्ते में मूर्तिमान काम, क्रोध लोभ मोह से ग्रस्त कलि के मिलन से होता है। इस सर्ग में श्रीहर्ष ने वैदिकं आस्तिकवाद के खण्डन करने वालों की भी चर्चा की है। सभी देवगण प्रबल प्रमाणों के साथ वैदिक मत की सत्यता सिद्ध करते हैं।

वेदैस्तद्वेषिभिस्तद्वत् स्थिरं मतशतैः कृतम्।
परं कस्ते परं वाचा लोकं लोकायत! त्यज्येत्?॥[79]

फिर देवों के मुख से नल-दमयन्ती स्वयंवर निष्पन्न हुआ जान कलि अत्यन्त क्रुद्ध हो जाता है। क्योंकि वह भी उसी स्वयंवर के लिए निकला रहता है। वह देवों के सम्मुख यह भी प्रतिज्ञा करता है कि मैं नल से दमयन्ती एवं उसकी राज्यश्री छुड़वाकर ही मानूँगा। देवगण उससे विशेष आग्रह न करते हुवे उसे जाने देते हैं। यहाँ कलि द्वापर के साथ जब नल के राज्य में पहुँचता है, तो यहाँ सारी प्रजा अपने-अपने धार्मिक कृत्यों में लगी हुई रहती है। जिससे उसे कहीं ठहरने का स्थान नहीं मिलता है। उस राज्य में केवल एक बहेड़े क़ा पेड़ मिलता है, जिसका कोई धार्मिक उपयोग नहीं है। कलि वहीं आश्रय लेता है। इस कलि प्रसङ्ग के साथ ही इस सर्ग का अवसान होता है।

अष्टादश सर्ग

अट्ठारहवें सर्ग का प्रारम्भ नल-दमयन्ती सुरत क्रीडा के लिए बनायी गयी ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं से होता है। जहाँ राजा नल समस्त राज्यभार मन्त्रियों को सौंपकर अपनी़ सुरत क्रीडा की लीला करने लगते हैं।

न्यस्य मन्त्रिषु स राज्यमादरादारराध मदनं प्रियासखः।
नैकवर्णमणिकोटिकुट्टिमे हेमभूमिभृति सौधभूधरे।।[80]

राजा नल दिन-रात दमयन्ती के साथ भोग के आनन्द में डूबे रहते हैं तो भी आत्मज्ञानी राजा नल को पाप का लेश भी नहीं लगता है क्योंकि इनका अन्तःकरण ज्ञान से निर्मल हो चुका है--

आत्मवित्सह तया दिवानिशं भोगभागपि न पापमाप सः।
आहृता हि विषयैकतानता ज्ञानधौतमनसं न लिम्पति।।[81]

राजा नल को कृत्रिम भोग से सर्वदा अनासक्ति रहती है। राजा नल सदा लावण्यवती नायिका दमयन्ती के संभोग जनित विभावानुभाव व्यभिचारीभावों में सम्पृक्त रहते हैं।

चुम्बनाय कलितप्रियाकुचं वीरसेनसुतवक्त्रमण्डलम्।
प्राप भर्तुममृतैः सुधांशुना सक्तहाटकघटेन मित्रताम्।।[82]

तदनन्तर कामदेव को भी अपने सौन्दर्य से परास्त कर देने वाले राजा नल से उपभुक्त समुच्छलयौवना दमयन्ती अत्यन्त हर्षित हो उठती है।

वामपादतललुप्तमन्मथश्रीमदेन मुखविक्षिणाऽनिशम्।
भुज्यमाननवयौवनाऽमुना पारसीमनि चचार सा मुदाम्।।[83]

ये दोनों परस्पर आलिङ्गित होते हुवे व्यवधान को कोशो दूर समझते हैं तथा परस्पर देखने में निमेष पलक गिरने को भी वर्षों दूर का व्यवधान समझते हैं। अर्थात् अत्यन्त विश्वस्त होकर एक दूसरे में समासक्त होते हैं तथा आनन्द का खूब भोग करते हैं। यहाँ तक की नल यह भी दमयन्ती से कह देते हैं कि हे सुमुखि! तुम्हारे बिना साम्राज्य की कोई वस्तु या कार्य मेरे लिए सुखकर नहीं है। अब तो तू ही मेरे सर्वविध सुख का साधन हो।

स क्षणः सुमुखि! यत्त्वदीक्षणं तच्च राज्यमुरु येन रज्यसि।
तन्नलस्य सुधयाऽभिषेचनं यस्त्वदङ्गपरिरम्भविभ्रमः।।[84]

एकोनविंशति सर्ग

श्रीहर्ष विरचित नैषधीयचरित महाकाव्य के 19वें सर्ग का आरम्भ प्रिया दमयन्ती के साथ प्रातःकाल होने पर भी सोये हुये राजा नल को जगाने के लिए बन्दियों एवं चारणों की जय-ध्वनि एवं मङ्गल गान से होता है। चारणों द्वारा मनोरम प्रभात का वर्णन किया जाता है और पृथक्-पृथक् नल एवं दमयन्ती को आलिङ्गन पास से मुक्त होकर प्रातः कालीन क्रियाओं को सम्पन्न करने का आग्रह किया जाता है।

न विदुषितरा कापि त्वत्तस्ततो नियतक्रियापतनदुरिते हेतुर्भर्तुर्मनस्विनि! मास्म भूः।
अनिशभवदत्यागादेनं जनः खलु कामुकीसुभगमभिधास्यत्युद्दामाऽपराङ्क्वदावदः॥
रह सहचरीमेतां राजन्नपि स्त्रितमां क्षणं तरणिकिरणैः स्तोकोन्मुक्तैः समालभते नभः।
उदधिनिरयद्भास्वत्स्वर्णोदकुम्भदिदृक्षुतां दधति नलिनं प्रस्थायिन्यः श्रियः कुमुदान्मुदा॥[85]

श्रीहर्ष ने वैतालिकों के मुख से नल दमयन्ती को जगाने के लिए उषा, निम्न चन्द्र-तारे चक्रवाल-भ्रमण, कमल, कुमुद और सूर्य आदि का अद्‌भुत एवं काल्पनिक वर्णन कराया है। वैतालिकों के मधुर-गान से प्रसन्न होकर दमयन्ती आभूषण प्रदान कर उन्हें पुरस्कृत करती है। दमयन्ती के साथ पुनः मिलन की आशा मन में सजाये हुए राजा नल नित्य क्रिया के सम्पादनकार्य में बाहर निकल जाते हैं।

विंशति सर्ग

बीसवें सर्ग का प्रारम्भ राजा नल एवं दमयन्ती के वार्तालाप से होता है जहाँ राजा नल दमयन्ती से कहते हैं कि यदि तुम्हारे चित्त में क्लेश न हो तो तुम्हारे आलिङ्गन के विघ्न कारक अवशिष्ट कार्य को समाप्त कर लूँ।

प्रेयसाऽवादि सा तन्वि! त्वदालिङ्गनविघ्नकृत्।
समाप्यतां विधिः शेषः क्लेशश्चेतसि चेन्न ते॥[86]

दमयन्ती ईर्ष्या क्रोध प्रकट करती हुई यह कहना चाहती है कि स्नानादि क्रियाओं में आपने महान् विलम्ब किया अब नित्यकर्मानुष्ठान कहाँ से आ गये अर्थात् कामासक्त दमयन्ती नल को अपने से थोडी देर के लिए भी जाने देना नहीं चाहती।

क्वैतावान्नर्ममर्माविद्विद्यते विधिरद्य ते।
इति तं मनसा रोषादवोचद्वचसा न सा॥[87]

तत्पश्चात् राजा नल प्रातःकालीन कृत्य कर्मों को सम्पन्न कर दमयन्ती के पास चले आते हैं। दोनों के बीच मधुर शृङ्गार विलास से परिपूर्ण वार्तालाप प्रारम्भ होता है। राजा नल अचानक दमयन्ती का चुम्बन करने लगते हैं जैसे जलमग्न सूर्य विकसित कमल का चुम्बन करता है।

चुचुम्बास्यमसौ तस्या रसमग्नः श्रितस्मितम्।
नभोमणिरिवाम्भोजं मधुमध्यानुबिम्बितः॥[88]

इसी बीच सखियों का आगमन होता है। सखियाँ रति-क्रीडा के अनेक रहस्यों का उद्‌घाटन करती हैं। राजा नल दमयन्ती एवं सखियों का परस्पर वार्तालाप अत्यन्त ही मनोहारी प्रतीत होता है।

इस सर्ग में दमयन्ती और नल की शृङ्गारिक चेष्टाओं का वर्णन अद्भुत प्रतीत होता है। इसी बीच मध्याह्न स्नान की सूचना चारण बनिता द्वारा दी जाती है। भगवान् शिव का पूजन बेला जान नल प्रसन्न मुद्रा में निकल पड़ते हैं।

एकविंशति सर्ग

राजा नल के दर्शनार्थ आये अनेक सामन्तों द्वारा प्रदत्त उपहार को स्वीकार करने से इक्कीसवें सर्ग का प्रारम्भ होता हैं। राजा नल समागत सामन्तों को प्रत्युपहार प्रदान कर उन्हें विदा करते हैं। तदनन्तर अस्त्र-शस्त्र का विद्यार्थियों को अभ्यास कराते हैं। इसके बाद शास्त्रीय विधि से राजा नल का स्नान होता है पूजार्चना के अनुकूल वस्त्र धारण कर वे मध्याह्न सन्ध्योपासन हेतु पूजा गृह में प्रवेश करते हैं। राजा नल पूजा गृह में सूर्यदेव शङ्कर की सविधि पूजा करने के बाद पुरुषसुक्त के अनुसार पुरुषोत्तम भगवान् की **"ॐ नमो भगवते वासुदेवाय"** इस मन्त्र से अर्चना करते हैं। तत्पश्चात् विष्णु के अवतारों की स्तुति भी वे करते हैं। भगवान् विष्णु के ध्यान करने से वे सम्प्रज्ञात समाधि में लीन हो जाते हैं। जहाँ भगवान् विष्णु का साक्षात्कार होने पर वे भक्ति के उद्रेक के कारण झूमने लगते हैं। पूजन के पश्चात् ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर भोजनालय में प्रविष्ट राजा नल सुस्वादु भोजन कर आनन्द भवन में चले जाते हैं। इसी बीच दमयन्ती भी गौर्यादि देवियों की पूजा करने के पश्चात् भोजन कर अलङ्कारों से सज-धज कर पति नल की गोद में बैठ जाती है। सखियों द्वारा गान होता है। तत्पश्चात् राजा दमयन्ती को सखियों के मध्य छोड सायं सन्ध्योपासना के लिए चले जाते हैं।

द्वाविंशति सर्ग

बाइसवें सर्ग क़ा आरम्भ राजा नल के सन्ध्या कालिक विधि को पूर्ण कर दमयन्ती के पास आगमन से होता है। दमयन्ती प्रासाद के सातवें तल पर है जहाँ राजा नल सायं काल़ की सन्ध्या, मधुर कल्पनाओं के साथ तारा, अन्धकार तथा चन्द्रमा का वर्णन करते हैं। दमयन्ती भी सस्नेह चन्द्रमा का काल्पनिक वर्णन प्रस्तुत करती है जिसे सुनकर राजा भी आनन्द और आश्चर्य से क्षण भर के लिए स्तब्ध हो जाते हैं और प्रिया दमयन्ती के वर्णन की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुवे चन्द्रमा के विषय में बोलते हैं।

प्रिये! अनेक बार राहु के दाँतों के नीचे पड़ने के कारण चन्द्रमा के शरीर में अगणित छिद्र बन गये हैं जिनसे उनकी सुधा रश्मियों के रूप में बहा करती है। ऐसे चन्द्रमा अमृतवर्षा करते हुये हमें सुख दें।

स्वर्भानुप्रतिवारपारणमिलद्दन्तौघयन्त्रोद्भवश्वभ्रालीपतयालुदीधितिसुधासारस्तुषारद्युतिः।
पुष्पेष्वासनतत्प्रियापरिणयानन्दाभिषेकोत्सवे देवः प्राप्तसहस्त्रधारकलशश्रीरस्तु नस्तुष्टये॥[४१]

इस प्रकार महाकवि श्रीहर्ष विरचित नैषधीयचरित महाकाव्य की कथावस्तु यथामति प्रस्तुत की गयी है जो सर्वजन सहृदयहृदयाह्लादकारी रसराजशृङ्गार वर्णनपूर्ण होती हुई चमत्कार जनिका है।

नैषधीयचरितम् : मूलस्त्रोत

"नैषधं विद्वदौषधम्" की उक्ति से प्रथित द्वादश सर्गात्मक नैषध महाकाव्य श्रीहर्ष का अद्वितीय पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थरत्न है। निषध देश के राजा नल तथा विदर्भराज भीमसेन की कन्या दमयन्ती की अनुपम प्रणय गाथा पर आधारित यह महाकाव्य शृंगार रस से ओत प्रोत है तथा पाठकों के हृदय को भी रसराज शृंगार की अद्भुत अनुभूति कराता है। इसकी कथावस्तु का उत्स महर्षि वेदव्यास प्रणीत "महाभारत" के 'वनपर्व' के अन्तर्गत 'नलोपाख्यान' (अ.52-79) में सम्प्राप्त होता है। इसी नलोपाख्यान के प्रारम्भिक छः अध्यायों की कथा बाईस सर्गात्मक महाकाव्य में निबद्ध है।

महाभारत के अतिरिक्त भी नल-दमयन्ती की कथा **'शतपथ-ब्राह्मण'**[90], **लिङ्गपुराण**[91] **वायुपुराण**[92], **हरिवंशपुराण**[93] तथा **ब्रह्माण्ड पुराण**[94] आदि ग्रन्थों में वर्णित है, किन्तु नैषधीयचरित का साम्य इन ग्रन्थों की अपेक्षा महाभारतीय 'नलोपाख्यान' से अधिक दृष्टिगोचर होता है।

महाकवि श्रीहर्ष ने महाभारत से गृहीत कथावस्तु को बड़े ही सन्तुलित ढंग से बाईस सर्गात्मक प्रबन्ध काव्य के रूप में निबद्ध किया है। महाकवि ने कथानक को अधिक सजीव एवं मनोवैज्ञानिक बनाने तथा नायक के चरित्र में उत्कर्ष लाने हेतु अपनी मौलिक कल्पनाशक्ति का पर्याप्त प्रयोग किया है। महाभारत की सरल-कथा को महाकवि ने अलङ्कृत शैली में प्रस्तुत किया है।

मूलकथानक में आवश्यक परिवर्तन तथा परिवर्धन

बृहत्त्रयी के अन्तर्गत परिगणित 'नैषधीयचरितम्' महाकाव्य महाकवि श्रीहर्ष की अनुपम कृति है। 'महाभारत' के 'वनपर्व' के अन्तर्गत समपुलब्ध 'नलोपाख्यान' (अध्याय 52-79) से गृहीत विषयवस्तु को महाकवि ने बाईस सर्गों वाले विशाल कलेवर महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत किया है। इसमें महाकवि ने अपनी कल्पनाशक्ति तथा शास्त्रीय नियमानुसार यथास्थल यथामति आवश्यक परिवर्तन किया हैं। संक्षेप में ये परिवर्तन निम्नलिखित हैं–

1. महाकवि श्रीहर्ष ने 'महाभारत' के 'नलोपाख्यान (अ.52-79)' में संकलित कथा के छः अध्याय पर्यन्त विषयवस्तु को ही ग्रहण किया है जिसका वर्णन वहाँ मात्र

186 अनुष्टुप् छन्दों में किया गया है। महाकवि ने अपनी कल्पनाशक्ति एवं वर्णन-कुशलता से इस संक्षिप्त प्रकरण को बाईस सर्गों में निबद्ध 2804 श्लोकों वाले विशाल महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत किया है।

2. महाभारत में निबद्ध नल-दमयन्ती कथा सरल वर्णनात्मक शैली में है जबकि महाकवि श्रीहर्ष ने विविध अलङ्कारों, छन्दों एवं समुचित विविध रसों के परिपाक से सरल कथानक को अलङ्कृत शैली में प्रस्तुत किया है।

3. महाभारत में नल एवं दमयन्ती लोगों से एक-दूसरे के गुणों को सुनकर परस्पर एक-दूसरे के प्रति आसक्त हुए हैं। किन्तु महाकवि श्रीहर्ष ने **''आदौ वाच्यः स्त्रिया रागः''** का अनुसरण करते हुए विदर्भ-कुमारी दमयन्ती के हृदय में राजा नल के प्रति प्रेमाङ्कुर प्रस्फुटन का प्रथम उपक्रम किया है।

4. नैषध में समुपलब्ध 'रति' भाव अपेक्षाकृत उद्दात्त है। यहाँ इसे कर्त्तव्य तथा धर्म की पृष्ठभूमि पर अवलम्बित किया गया है। यद्यपि महाभारत में भी 'रति भाव' का निरूपण ऐन्द्रियिकता से उच्चस्तर का है किन्तु शृंगार तथा प्रणय का जैसा विन्यास महाकवि ने किया है वह स्पृहणीय है।

5. महाभारतीय कथा के उपवन में कोई सरोवर नहीं है किन्तु महाकवि श्रीहर्ष ने 'महाकाव्य' के शास्त्रीय लक्षणों[95] का अनुवर्तन करने के निमित्त एक सरोवर की कल्पना की है। जिससे उपवन का सौन्दर्य द्विगुणित हो गया है।

6. महाभारत में निषधनरेश नल हंस को तभी मुक्त करते हैं जब वह प्रत्युपकार स्वरूप विदर्भराज कन्या दमयन्ती के हृदय में उनके प्रति प्रणयाङ्कुर विकसित करने का आश्वासन देता है। जबकि नैषधीयचरित में राजा नल हंस के हृदयविदारक करुण क्रन्दन से द्रवीभूत होकर उसे शीघ्र ही मुक्त कर देते हैं।[96] इससे चरित नायक का उत्कर्ष साध्य है।

7. उपरोक्त प्रसङ्ग के परिणामस्वरूप नैषध के आठ श्लोकों (1/135-142) में 'करुण रस[97] की जो लघु धारा प्रवाहित हुई है वह इतनी प्रभावशाली, हृदयस्पर्शी एवं मनोवैज्ञानिक है कि समस्त साहित्य में अपना स्थान बनाने में समर्थ है। महाभारतीय कथा में इसका अभाव है।

8. महाभारत में अनेक हंस दमयन्ती के समीप पहुँच जाते हैं। जहाँ दमयन्ती एवं उसकी सखियाँ उनका पीछा करती हैं। जबकि नैषधीयचरित में राजा नल के द्वारा करुणया मुक्त किया गया हंस स्वयं प्रत्युपकार की भावना से दमयन्ती के समक्ष अकेला ही उपस्थित होता है।

9. महाभारतीय कथा में हंस एक सामान्य पक्षी के रूप में चित्रित हुआ है जबकि नैषध का हंस शिष्ट, सुसंस्कृत एवं मानवीय भावों से ओत-प्रोत होने से अपेक्षाकृत विशिष्ट रूप में प्रस्तुत हुआ है। वह दिव्य पक्षी[98] प्रतीत होता है।

10. महाभारत में हंस दमयन्ती के पास जाकर सर्वप्रथम निषधाधिपति नल का परिचय देता है।[99] जबकि नैषध का हंस दमयन्ती के पास पहुँचकर सर्वप्रथम अपने दिव्य गुणों का वर्णन करता है। तत्पश्चात् वह नल की महत्ता प्रतिपादनार्थ कहता है कि मुझ जैसे दिव्य पक्षी को पकड़ना किसी साधारण मनुष्य के लिये संभव नहीं है।[100] निश्चय ही नल महान् गुणों के आगार हैं। इस प्रकार हंस दमयन्ती के समक्ष नल का प्रभावपूर्ण चरित्र स्थापित करता है। इसी विस्तार के कारण महाभारत में मात्र चौदह श्लोकों में उपलब्ध हंस-प्रसंग यहाँ प्रथम से तृतीय सर्ग पर्यन्त परिव्याप्त है।

11. महाभारत में हंस द्वारा राजा के गुणों को सुनकर कामासक्त हुई दमयन्ती की विरहदशा का वर्णन अपेक्षाकृत संक्षिप्त है, जबकि नैषध में महाकवि ने पूरे एक सर्ग में विरह की स्वाभाविक निर्झरिणी प्रवाहित की है। इसमें महाकवि को काम की समस्त दशाओं के चित्रण का उचित अवसर मिला है।

12. महाभारत में नल-दमयन्ती के विवाह के अनन्तर बहुत समय के पश्चात् 'कलि' का प्रवेश होता है जबकि महाकवि ने विवाहोपरान्त शीघ्र ही 'कलि' का प्रवेश दिखाया है।

13. महाभारत में राजा नल ने देवों का दूतकार्य प्रतिज्ञा-भंग के दोष-निवारणार्थ किया है, जबकि नैषध में देवताओं द्वारा याचना किये जाने पर राजा नल अपनी प्रियतमा दमयन्ती का भी त्याग करने को तत्पर हो गये हैं। यह भी नायक के चरित्र को उत्कर्ष प्रदान करता है। महाभारत का नल भयवश देवदूत बनता है जबकि यहाँ कर्त्तव्यबोध से दौत्यकर्म स्वीकार करता है।

14. महाभारत में नल को प्रत्येक देवता दो-दो वरदान प्रदान करते हैं; जबकि नैषध में अकेले इन्द्र ने ही नल को चार वर प्रदान किये हैं। यम तथा वरुण द्वारा दो-दो वर दिये गये हैं। यहाँ इन्द्र-प्रदत्त एक वर, यम-प्रदत्त एक वर तथा वरुण द्वारा दिये गये दोनों वर महाभारत तथा नैषध में समान हैं। भगवती सरस्वती द्वारा वरदान प्रदान किया जाना कवि-कल्पना-प्रसूत है।

15. महाभारतीय नल जब दमयन्ती के समक्ष देवदूत बनकर जाता है तब नल के रूप में ही अपना परिचय देता है। वह स्वयं को छिपाता नहीं है जबकि नैषध में प्रथमतः वह अपना परिचय गुप्त रखता है। दमयन्ती जब क़िसी भी देवता का वरण न किये जाने

की अपनी दृढ़प्रतिज्ञा को प्रकट करती है तब राजा नल अपना परिचय देते हैं। यह भी राजा नल को आदर्श रूप में उपस्थापित करना है।

16. महाकवि ने कई नये पात्रों का सृजन किया है। जिसमें प्रधान हैं भगवती सरस्वती जो स्वयंवर में उपस्थित होकर राजकुमारी दमयन्ती का सहयोग करती हैं। इन्द्र की दूती, दमयन्ती की सखी कला तथा चार्वाक आदि कलि के सहायक कवि-कल्पना-प्रसूत पात्र हैं।

17. उक्त के अतिरिक्त कई अन्य प्रकरण हैं, जो कि महाभारतीय कथा में अनुपलब्ध हैं। यथा–राजा नल का दमयन्ती के भवन में गुप्त प्रवेश, दमयन्ती का सौन्दर्य निरूपण, विवाह-विधि का वर्णन, विवाह में हास्य के प्रसङ्ग, चार्वाक-सिद्धान्तों का प्रतिपादन तथा देवताओं द्वारा उसका खण्डन, नल-दमयन्ती का प्रणय निरूपण इत्यादि कवि-कल्पना के विशाल प्रासाद हैं जिस पर चढ़कर सहृदय पाठक गौरव मिश्रित आनन्दानुभूति करता है।

संवाद–योजना

संवाद मुख्यतः दृश्य काव्य के अभिन्न अङ्ग हैं। किन्तु महाकवि ने श्रव्य काव्य में भी अपनी वर्णनकुशलता का परिचय देते हुए संवादों की ऐसी अनुपम योजना की है कि पाठक के समक्ष पात्र उपस्थित हो गये हैं। ऐसे स्थलों पर महाकाव्य में नाटकीयता की प्रतीति होने लगती है। यथा–चतुर्थ सर्ग में मूर्च्छित दमयन्ती को देखकर उसे चेतना में लाने के लिये सखियों का व्यापार द्रष्टव्य है–

अधित कापि मुखे सलिलं सखी प्यधित कापि सरोजदलैः स्तनौ।
व्यधित कापि हृदि व्यजनानिलं न्यधित कापि हिमं सुतनोस्तनौ।।[101]

यहाँ त्वरा एवं घबराहट का दृश्य उपस्थित करने के लिए कई क्रियाओं का एक साथ प्रयोग किया गया है।

अन्यत्र भी ऐसे अनेक प्रसङ्ग आये हैं जिनमें संवाद-योजना से नाटकीयता का आभास मिलता है। इस दृष्टि से नवम सर्ग (9/8,9/14), सप्तदश सर्ग (17/121,17/132), विंशति सर्ग (20/37,20/40) आदि विशेष अवलोकनीय हैं। कवि के इन प्रयोगों से उनकी नाटक प्रतिभा का स्फुट परिचय मिलता है।

चरित्र–चित्रण

नैषध महाकाव्य के प्रमुख पात्र निषधनरेश नल तथा भीमसेन-आत्मजा दमयन्ती हैं। प्रतिनायक के रूप में इन्द्र, यम, अग्नि, वरुण आदि देवता आये हैं। विदर्भनरेश

भीमसेन, अन्य राजसमूह, देवी सरस्वती, तथा दमयन्ती की सखियाँ आदि पात्र अवसरानुसार उपस्थित हुए हैं। इसके अतिरिक्त एक महत्त्वपूर्ण पात्र है पक्षी हंस, जो एक कुशल दूत के रूप में हमारे समक्ष आता है तथा जिसका कार्य-व्यापार अत्यन्त कौशलपूर्ण एवं अवसरोचित है।

महाकाव्य के नायक नल समस्त नायकीय गुणों से सम्पन्न हैं। कवि ने इनके गुण, रूप, बल, बुद्धि, वैभव, प्रभाव, उदारता, ज्ञान तथा दानशीलता आदि का सविस्तार विवेचन किया है। वह **पुण्यात्मा**[102], **शूरवीर**[103], **विद्वान्**[104], **प्रभावशाली**[105], **त्यागी** तथा **दानी**[106] एवं **गुणानुरागी**[107] के रूप में उपस्थित होते हैं। उनके अनुराग में निम्न कामपिपासा नहीं है। उसमें गम्भीरता, करुणार्द्रता, स्वाभिमान, मर्यादा, तथा दृढ़प्रतिज्ञा है, तभी वे अत्यधिक कामसंतप्त होकर भी स्वयं भीमसेन से दमयन्ती की याचना नहीं करते हैं।

उनके करुणाशील हृदय का परिचय हमें हंस के करुण–विलास–वर्णन के प्रसङ्ग में मिलता है जहाँ हंस की व्यथा से राजा नल अश्रु–परिपूर्ण नेत्रों वाले हो जाते हैं तथा **'रूपमदर्शि धृतोऽसि यदर्थं गच्छ यथेच्छमथेत्यभिधाय।'**[108] कहकर उसे मुक्त कर देते हैं। देवताओं द्वारा प्रदत्त दौत्यकर्म का सम्पादन भी नल की कर्त्तव्यपरायणता, त्याग, सहृदयता एवं एकनिष्ठता का परिचायक है। उनकी महानता के सन्दर्भ में हंस की निम्नलिखित उक्ति अवलोकनीय है–

क्रियेत चेत्साधुविभक्तिचिन्ता व्यक्तिस्तदा सा प्रथमाभिधेया।
या स्वौजसां साधयितुं विलासैस्तावत्क्षमा नामपदं बहु स्यात्।।[109]

विदर्भराज भीम की पुत्री नायिका दमयन्ती एक नवयौवना, अद्वितीय रूपवती, लज्जाशील, एकनिष्ठ, स्थिरचित्त एवं दृढ़प्रतिज्ञा मुग्धा नायिका के रूप में हमारे समक्ष आती है। वह निषध नरेश राजा नल पर आसक्त है किन्तु उसमें उत्कट कामलिप्सा न होकर प्रेम का मधुर एवं परिष्कृत रूप है जिससे वह मात्र दासी बनकर नल की सेवा करना चाहती है–

तदेकदासीत्वपदादुदग्रे मदीप्सिते साधु विधित्सुता ते।
अहेलिना किं नलिनी विधत्ते सुधाकरेणापि सुधाकरेण।।[110]

दमयन्ती की चरित्रगत उदात्तता का परिचय प्रत्येक पग पर मिलता है। चन्द्रोपालम्भ के समय विरह-व्यथा से मूर्च्छित होने पर भी पिता के आगमन पर समस्त मदनव्यथा के चिह्नों का गोपन करती हुई उन्हें प्रणाम करती है। यही चारित्रिक शुचिता इन्द्र-दूती तथा देवदूत नल द्वारा किये गये देवताओं से विवाह प्रस्ताव के निराकरण में भी प्रदर्शित होती है। वह आदर्श गृहिणी की तरह देवपूजन तथा पति के भोजन कर लेने पर ही भोजन ग्रहण करती है।

नैषध में यथा स्थान दमयन्ती के रूप एवं गुणों का पर्याप्त वर्णन प्राप्त होता है। उसके रूप सौन्दर्य का वर्णन तो उसके नाम से भी उपलब्ध है। त्रिलोक की सुन्दरियों का अपनी रूप-माधुरी से दमन करने के कारण इसका नाम दमयन्ती पड़ा।[111] इसी कारण राजा नल को पुरुषश्रेष्ठ तथा दमयन्ती को त्रिभुवनसुन्दरी कहा गया है–

प्रियं प्रियां च त्रिजगज्जयिश्रियौ लिखाधिलीलागृहभित्तिकावापि।

इति स्म सा कारुतरेण लेखितं नलस्य च स्वस्य च सख्यमीक्षते।।[112]

अपने सौन्दर्य के अतिरिक्त मधुरता, विनयशीलता, कला-प्रियता तथा सरलता आदि गुणों से दमयन्ती एक अनुपम नायिका सिद्ध होती है।

अन्य पात्रों में भी विदर्भराज भीम एक हितचिन्तक, कर्त्तव्यनिष्ठ एवं उदार पिता हैं। देवी सरस्वती वाग्देवी हैं जिन्होंने दमयन्ती के स्वयंवर में उसका मार्गदर्शन किया। कला आदि सखियाँ राजकुमारी की परिचारिकाएँ हैं।

इस प्रकार नैषध में देवी-देवताओं से लेकर मानव समाज के प्रत्येक वर्ग यथा–राजा-रानी, परिचारिका, सामान्यजन आदि तथा मानवेतर प्राणी वर्ग का भी चित्रण हुआ है। जिनके रूप, गुण स्वभाव आदि के वर्णन में महाकवि को पूर्ण सफलता मिली है।

भाषा

महाकवि श्रीहर्ष की भाषा अपेक्षाकृत दुरूह है। "खण्डनखण्डखाद्य" जैसे क्लिष्ट ग्रन्थ के रचयिता के लिये यह स्वाभाविक ही है। साथ ही उस समय माघ और भारवि जैसे कवियों द्वारा पाण्डित्य प्रदर्शन हेतु दुरूह भाषा का प्रयोग किया जा रहा था। परिणामतः उनकी अपेक्षा अधिक पाण्डित्य–प्रदर्शन हेतु महाकवि ने दुरूह शब्दावली का प्रयोग किया है। यद्यपि महाकवि ने यथा स्थान प्रसङ्गानुसार प्रसाद गुण युक्त सरल पदावली का भी प्रयोग किया है किन्तु ऐसे स्थल अपेक्षाकृत कम हैं। इसी कारण विद्वानों को भी नैषध को समझने के लिये कोश व टीका का उपयोग करना पड़ता है।

इनकी भाषा की दुरूहता अप्रचलित शब्दों के प्रयोग से और अधिक बढ़ जाती है। यथा–फाल, अगदङ्कार, अकूपार, मिहिकारुच, इन्दिन्दिर-इत्यादि शब्दों का प्रयोग इनके काव्य में मिलता है। इसके अतिरिक्त अपने व्याकरण सम्बन्धी ज्ञान के प्रदर्शन हेतु इन्होंने नवीन शब्दों को सिद्ध करके अपने ग्रन्थ में प्रयोग किया है। यथा–शूननायक, प्रतीतचर, अधिगामुका तथा हसस्पशम् इत्यादि।

यमक जैसे शब्दालङ्कारों का अधिक प्रयोग भी महाकवि की भाषा में जटिलता का आधान करता है। इसका अनुपम उदाहरण तेरहवें सर्ग में वर्णित पञ्चनली पुरुङ्ग है

जहाँ श्लेष के माध्यम से एकं ही श्लोक नल के साथ चारों देवताओं के सम्बन्ध में घटित होता है। महाकवि की सरल भाषा का भी एक उदाहरण प्रस्तुत है–

नलेन भायाश्शशिना निशेव त्वया स भायान्निशया शशीव।[113]

इनकी भाषा में वर्तमानकालीन प्रचलित मुहावरों का भी प्रयोग मिलता है। यथा– **''कथमास्यं दर्शयिताहे''**[114] (मैं अपना मुख कैसे दिखाऊँगा), **''नवीनमश्रावि तवाननादिदम्''**[115] (यह तो मैंने तुम्हारे मुख से बिल्कुल नई बात सुनी), **''आसितुं न आदात्''**[116] (बैठने नहीं दिया), इत्यादि मुहावरों का प्रयोग इनकी भाषा के प्रभाव को द्विगुणित कर देता है।

स्पष्टतः कह सकते हैं कि महाकवि श्रीहर्ष की भाषा दुरूह होते हुए भी प्राञ्जल, प्रवाहमयी, सरस तथा प्रभावपूर्ण है। इसमें भावानुसार माधुर्य, प्रसाद, ओज सभी गुणों का समन्वित परिपाक मिलता है। यद्यपि दीर्घ समस्त पदों, अप्रचलित शब्दों, दुरूह-वैयाकरण-प्रयोगों से भाषा गम्भीर हो गई है तथापि व्युत्पन्नमति रसिक के लिये महाकाव्य हृदयहारी ही है।

शैली

महाकवि ने प्रायः वैदर्भी रीति का आश्रय लिया है। इनकी वैदर्भी रीति में प्रसाद गुण का पुट नहीं मिलता अपितु पाण्डित्यपूर्ण है। कहीं-कहीं हंस-विलाप एवं हंस के कृतज्ञता-ज्ञापन में प्रसाद गुण सम्पन्न वैदर्भी की झलक मिलती है। वैदर्भी रीति के लिए महाकवि ने स्वयं लिखा है–**धन्यासि वैदर्भि गुणैरुदारैर्यया समाकृष्यत नैषधोऽपि।।**[117]

अन्यत्र भी इन्होंने लिखा है–

गुणानामास्थानीं नृपतिलक नारीति विदितां
रसस्फीतामन्तस्तव च तव वृत्ते च कवितुः।
भवित्री वैदर्भीमधिकमधिकण्ठं रचयितुं
परीरम्भक्रीडाचरणशरणामन्वहमहम्।।[118]

कहीं-कहीं दीर्घ समस्त पदावली से इनकी शैली गौड़ी शैली के सन्निकट पहुँच गई है–

स्फुरद्धनुर्निस्वनतद्घनाशुगप्रगल्भवृष्टिव्ययितस्य सङ्गरे।[119]

एक अन्य उदाहरण दर्शनीय है–

अनल्पदग्धारिपुरानलोज्ज्वलैर्निजप्रतापैर्वलयं ज्वलद् भुवः।[120]

महाकवि की शैली की विशेषता अनुप्रास, वीप्सा, यमक, श्लेष आदि अलङ्कारों का प्रयोग भी है। महाकवि श्रीहर्ष के माधुर्य गुण के सुन्दर प्रयोगों के कारण "नैषधे पदलालित्यम्" की उक्ति प्रथित है। पदलालित्य का एक उदाहरण प्रस्तुत है–

अहो अहोभिर्महिमा हिमागमेऽप्यतिप्रपेदे प्रति तां स्मरार्दिताम्।
तपर्तुपूर्त्तावपि मेदसां भरा विभावरीभिर्विभरांबभूविरे।।[121]

स्पष्टतः महाकवि ने प्रसङ्गानुकूल शैली का प्रयोग किया है।

रसाभिव्यक्ति

महाकवि श्रीहर्ष ने रसराज शृंगार को अङ्गी रूप में स्वीकार करते हुए नैषध महाकाव्य में शृंगार की अद्भुत निर्झरिणी प्रवाहित की है। वीर, करुण हास्य आदि सहायक रसों का परिपाक भी यथास्थान महाकवि ने कौशलपूर्वक किया है। शृंगार के दोनों पक्षों के प्रतिपादन में महाकवि ने अपनी बुद्धि-चातुरी का प्रयोग किया है। इनके शृंगार निरूपण में कालिदास के समान कवि हृदय से निस्सृत स्वाभाविकता नहीं अपितु उस पर वात्स्यायन के कामसूत्र का प्रभाव परिलक्षित होता है। यही कारण है कि इनका शृंगार वर्णन कहीं-कहीं मर्यादा की परिधि का अतिक्रमण कर गया है। किन्तु अन्यत्र इनके श्लोक कलात्मक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावोत्पादक हैं। यथा–नल-दमयन्ती के प्रथम समागम का दृश्य संयोग शृंगार की दृष्टि से अवलोकनीय है–

वल्लभस्य भुजयोः स्मरोत्सवे दित्सतोः प्रसभमङ्कपालिकाम्।
एककश्चिरमरोधि बालया तल्पयन्त्रणनिरन्तरालया।।[122]

संयोग के समान ही शृंगार के वियोग पक्ष पर भी महाकवि ने लेखनी चलायी है। एक रमणीय उदाहरण प्रस्तुत है–

विनिहितं परितापिनि चन्दनं हृदि तया भृतबुद्बुदमाबभौ।
उपनमन् सुहृदं हृदयेशयं विधुरिवाङ्कगतोडुपरिग्रहः।।[123]

अर्थात् उस दमयन्ती के द्वारा संतपनशील हृदय पर रखा गया चन्दनलेप बुद्बुद (पानी का बुलबुला) बनकर हृदयस्थित कामदेव के पास तारे रूप में विद्यमान परिवार सहित आये हुये चन्द्रमा के समान प्रतीत होता था।

महाकवि ने नल की बारात में यथा अवसर हास्य का भी परिपाक किया है। करुण रस का चित्रण हंस-विलाप में दिखलाई पड़ता है–

मदेकपुत्रा जननी जरातुरा नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी।
गतिस्तयोरेष जनस्तमर्दयन्नहो! विधे त्वां करुणा रुणद्धि नो।।[124]

इसी प्रकार हंस-विलाप का समस्त प्रकरण करुण रस से संवलित है। वीर रस का परिपोष दमयन्ती के स्वयंवर में आगत राजाओं के पराक्रम वर्णन में समुपलब्ध होता है। स्पष्टः महाकवि ने अङ्गी रस के साथ ही सहायक रसों का भी सुन्दर एवं समन्वित निरूपण किया है।

अलङ्कार-योजना

अलङ्कारों का प्रयोग भी महाकवि की एक विशेषता है। शब्दालङ्कारों तथा अर्थालङ्कारों का यथास्थान सन्निवेश किया गया है। यहाँ ध्यातव्य है कि इन्होंने अलङ्कारों का सर्वथा सहज, स्वाभाविक प्रयोग किया है। इनके अलङ्कार रसप्रवाह में कहीं बाधक नहीं हैं। अनुप्रास एवं यमक का प्रयोग प्रचुर मात्रा में मिलता है। श्लेष का भी पर्याप्त प्रयोग किया गया है। अनुप्रास का एक रमणीय प्रयोग द्रष्टव्य है–

तव वर्त्मनि वर्त्ततां शिवं पुनरस्तु त्वरितं समागमः।
अपि साधय साधयेप्सितं स्मरणीयाः समये वयं वयः।।[125]

श्लेष का एक रमणीय उदाहरण प्रस्तुत है–

स्थितिशालिसमस्तवर्णतां न कथं चित्रमयी विभर्तु या ?।
स्वरभेदमुपैतु या कथं कलितानल्पमुखारवा न वा? ।।[126]

इसके अतिरिक्त कवि ने उत्प्रेक्षा, उपमा, अतिशयोक्ति, विरोधाभास, स्वभावोक्ति, समासोक्ति, दृष्टान्त आदि अलङ्कारों का भी समुचित प्रयोग यथास्थान किया है।

छन्द-विधान

श्रीहर्ष ने अपने महाकाव्य में विविध छन्दों का प्रयोग कर तत्तत् प्रसङ्गों को गति प्रदान किया है। कवि ने कुल उन्नीस छन्दों का प्रयोग किया है, जिसमें सर्वाधिक उपजाति छन्द प्रयुक्त है। इसके अतिरिक्त वंशस्थ, वसन्ततिलका, द्रुतविलम्बित, रथोद्धता, हरिणी का प्रयोग है। साथ ही कवि ने मन्दाक्रान्ता छन्द, जिसके पाँच पद्य हैं तथा अचल धृति, त्रोटक, दोधक तथा पृथ्वी छन्द में एक-एक पद्य की रचना की है।

बारहवाँ सर्ग विविध छन्दों में लिखा गया है, जिसमें "वंशस्थ" का प्राधान्य है। महाकवि ने वसन्ततिलका, श्लोक तथा स्वागता छन्दों की बाहुलता वाले दो-दो सर्ग लिखे हैं। पुष्पिताग्रा, मालिनी, शिखरिणी तथा स्रग्धरा का भी महाकवि ने प्रयोग किया है।

इस प्रकार महाकवि श्रीहर्ष ने तत्कालीन प्रचलित प्रायः सभी छन्दों का प्रयोग किया है। उदाहरणतः प्रथम सर्ग में 'वंशस्थ' का प्रयोग द्रष्टव्य है–

मनोरथेन स्वपतीकृतं नलं निशि क्व सा न स्वपती स्म पश्यति।
अदृष्टमप्यर्थमदृष्टवैभवात्करोति सुप्तिर्जनदर्शनातिथिम्।।[127]

यहाँ छन्दोमञ्जरी में समुपलब्ध 'वंशस्थ' का लक्षण-''वदन्ति वंशस्थविलं जतौ जरौ।''[128] पूर्णतः घटित होता है।

इसी प्रकार द्वितीय सर्ग का प्रारम्भ तो 'वियोगिनी छन्द' से हुआ है किन्तु बाद में अन्य छन्दों का भी प्रयोग है। यथा–''शार्दूलविक्रीडित'' का एक उदाहरण प्रस्तुत है–

अश्रान्तश्रुतिपाठपूतरसनाविर्भूतभूरिस्तवा-
जिह्मब्रह्ममुखौघविघ्नितनवस्वर्गक्रियाकेलिना।
पूर्वं गाधिसुतेन सामिधटिता मुक्ता नु मन्दाकिनी
यत्प्रासाददुकूलवल्लिरनिलान्दोलैरखेलद्दिवि।।[129]

यहाँ भी ''शार्दूलविक्रीडित''[130] का लक्षण ठीक-ठीक बैठता है।

इसी प्रकार महाकवि के द्वारा समस्त छन्दों का विषयानुसार समुचित प्रयोग उनकी छन्द-विधान कुशलता का द्योतक है।

प्रकृति-सौन्दर्य

महाकवि श्रीहर्ष का सौन्दर्य-प्रेम उन्हें सहज ही प्रकृति की ओर आकृष्ट करता है। दमयन्ती के प्रति पूर्वराग की अवस्था में व्याकुल महाराजा नल जब उपवन में पहुँचते हैं तब वहाँ वृक्षों, पुष्पों आदि सभी को विरही प्रेमी की भाँति देखते हैं। उपवन के पुष्प, वायु इत्यादि उनके वियोगजन्य दुःख को और अधिक बढ़ाते हैं। अतः यहाँ प्रकृति उद्दीपन विभाव रूप में प्रस्तुत हुई है। उन्होंने प्रकृति चित्रण में कल्पना का भी पर्याप्त आश्रय लिया है। यथा–चम्पा पुष्प की कलियाँ नल को दीपक प्रतीत होती हैं–

विचिन्वतीः पान्थपतङ्गहिंसनैरपुण्यकर्माण्यलिकज्जलच्छलात्।
व्यलोकयच्चम्पककोरकावलीः स शम्बरारेर्बलिदीपिका इव।।[131]

इसी प्रकार आगे उन्होंने पुष्प-पराग को भगवान् शिव जी के शरीर पर लगी हुई भस्म समझा है–

अमन्यतासौ कुसुमेषुगर्भजं परागमन्धङ्करणं वियोगिनाम्।
स्मरेण मुक्तेषु पुरा पुरारये तदङ्गभस्मेव शरेषु सङ्गतम्।।[132]

इसके अतिरिक्त महाकवि ने प्रकृति के मानवीकरण का भी अनेक दृश्य प्रस्तुत किया है। इस प्रकार के वर्णनों में प्रकृति में मानवोचित अनुभूतियों का सन्निवेश किया गया है। प्रथम सर्ग में ही वृक्षों द्वारा किया गया 'अतिथि सत्कार' का वर्णन दर्शनीय है–

फलानि पुष्पाणि च पल्लवे करे वयोऽतिपातोद्गतवातवेपिते।
स्थितैः समाधाय महर्षिवार्धकाद्वने तदातिथ्यमशिक्षि शाखिभिः॥[133]

इसी प्रकार राजा नल पृथ्वी को माता मानकर उनका अभिनन्दन नतमस्तक होकर करते हैं-

गता यदुत्सङ्गतले विशालतां द्रुमाः शिरोभिः फलगौरवेणताम्।
कथं न धात्रीमतिमात्रनामितैः स वन्दमानानभिनन्दतिस्म तान्?॥[134]

प्रथम सर्ग में ही प्रकृति-चित्रण में पशु-पक्षियों में मानवीय व्यवहार का उदाहरण राजा नल द्वारा हंस के पकड़े जाने पर उपलब्ध होता है। यहाँ हंस अपनी माता, पत्नी तथा शिशु का जिस मार्मिकता से वर्णन करता है वह मानव हृदय को द्रवीभूत कर देता है–

मदेकपुत्रा जननी जरातुरा नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी।
गतिस्तयोरेष जनस्तमर्दयन्नहो विधे! त्वां करुणा रुणद्धि नो॥[135]

हंस ने अपनी पत्नी को सम्बोधित करते हुए जो बच्चों के पालन-पोषण हेतु अपने वियोग में प्राण-त्याग न करने की प्रार्थना की है वह सहृदयहृदय को विदीर्ण कर देने वाली है–

ममैव शोकेन विदीर्णवक्षसा त्वयाऽपि चित्राङ्गि! विपद्यते यदि।
तदस्मि दैवेन हतोऽपि हा हतः स्फुटं यतस्ते शिशवः परासवः॥[136]

महाकवि श्रीहर्ष ने न केवल चेतन प्रकृति के साथ मानव का सम्बन्ध स्थापित किया है अपितु जड़ प्रकृति के साथ भी मानव का कौटुम्बिक साहचर्य स्थापित किया है। बाईसवें सर्ग में आकाश में 'अष्टमूर्ति शिव' की कल्पना अति अद्भुत प्रतीत होती है–

तारास्थिभूषा शशिजह्नु जाभृच्चन्द्रांशुपांशुच्छुरितद्युतिर्द्यौः।
छायापथच्छद्मफणीन्द्रहारा स्वं मूर्तिमाह स्फुटमष्टमूर्त्तेः॥[137]

अर्थात् तारक-रूप हड्डियों से विभूषित चन्द्रमा रूप गङ्गा का धारण करता, चन्द्रकिरण-रूप शुभ्र भस्म के अङ्गराग से दीप्त, छायापथ (दण्डाकार दक्षिणोत्तरस्थ शुभ्र रेखा) के व्यान से नाग (वासुकि) का हार पहिने 'द्यौ' (आकाश देवता) अपने को अष्टमूर्ति (शिव) का शरीर सुव्यक्त रूप से कह रहा है।

वास्तव में महाकवि ने प्रकृति के आलम्बन रूप के चित्रण की अपेक्षा प्रकृति के उद्दीपन रूप का ही अधिक प्रयोग किया है। यथा-प्रथम सर्ग में प्रकृति राजा नल की विरहाग्नि को उद्दीप्त करती हुई बिखती है तथा चतुर्थ सर्ग में दमयन्ती को संतप्त करती है। आलम्बन रूप में प्रकृति-चित्रण का अभाव होते हुये भी महाकवि की कल्पना-शक्ति का पर्याप्त परिचय संप्राप्त होता है।

निष्कर्षतः महाभारतीय कथावस्तु को महाकवि ने अपने काव्य-कौशल से विविध रसों, अलङ्कारों, छन्दों एवं कल्पना-वैभव से सुसज्जित करके बाईस सर्गात्मक अद्वितीय महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत किया है। जिसकी परिगणना बृहत्त्रयी के अन्तर्गत की जाती है तथा इसकी महत्ता का प्रतिपादक निम्नलिखित वाक्य प्रसिद्ध है–

''उदिते नैषधे काव्ये क्व माघ क्व च भारविः।''

श्रीहर्ष का कृतित्त्व

नैषधीयचरित महाकाव्य के आधार पर साहित्य जगत् में तथा खण्डनखण्डखाद्य से दर्शन जगत् में अपनी धवल कीर्ति के विस्तारक सरस्वती के उपासक शृंगार-रस मर्मज्ञ महाकवि श्रीहर्ष के व्यक्तित्व की ही भाँति उनका कृतित्व भी पूर्णतः प्रकाशित नहीं है। भगवती से प्राप्त **'तत्त्वचिन्तामणिमन्त्र'** सिद्धि से व्युत्पन्नमति कवि ने शताधिक रचनायें की। इसका प्रमाण राजशेखर कृत 'प्रबन्धकोश' के अन्तर्गत **'श्रीहर्षकविप्रबन्ध'** नामक प्रकरण में समुपलब्ध होता है।[138]

वस्तुतः श्रीहर्ष जैसे विदग्ध कवि के लिये यह समीचीन भी प्रतीत होता है। परन्तु सम्प्रति इन ग्रन्थों का स्पष्ट नामोल्लेख भी प्राप्त नहीं होता। यहाँ तक कि राजशेखर ने भी अपने 'प्रबन्धकोश' में इनका कोई स्पष्ट विवरण प्रस्तुत नहीं किया है। संस्कृत साहित्याकाश में चन्द्रसूर्य की भाँति देदीप्यमान् **नैषधीयचरित** तथा **खण्डनखण्डखाद्य** पर ही इनकी यशः कीर्ति अवलम्बित है। नैषधीयचरित में आठ ग्रन्थों का तथा खण्डनखण्डखाद्य में एक ग्रन्थ का विवरण प्राप्त होता है।

सम्प्रति अन्य अप्राप्त ग्रन्थों की विषय-वस्तु क्या है? इसका निर्णय करना कठिन कार्य है, क्योंकि स्वयं श्रीहर्ष ने भी इन ग्रन्थों के नाम के अतिरिक्त अन्य कोई जानकारी नहीं प्रदान की है। इस विकट स्थिति में समालोचक विद्वानों द्वारा प्रकट किये गये मत का ही आश्रय लिया जा सकता है। श्रीहर्ष-विरचित अन्य ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है–

1. स्थैर्यविचारण प्रकरण–इसका परिचय हमें नैषध महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग से प्राप्त होता है।[139] सम्प्रति यह ग्रन्थ अनुपलब्ध है। ग्रन्थ के नाम से आचार्य नारायण द्वारा अनुमानित है कि इसमें महाकवि ने बौद्ध-दर्शन के क्षणभङ्गुरवाद का खड़न किया होगा। उनका यह मत अन्य विद्वानों द्वारा भी समर्थित हुआ है।

2. विजयप्रशस्ति– नैषध महाकाव्य के पञ्चम सर्ग से इसका सञ्ज्ञान मिलता है।[140] इसमें सम्भवतः जयचन्द्र के पिता विजयचन्द्र की प्रशस्ति वर्णित है। महाराज विजयचन्द्र कान्यकुब्ज के राजा थे। इनके पिता का नाम महाराज गोविन्द चन्द्र था। महाराज विजयचन्द्र के श्रीहर्ष के पिता श्रीहीर के संरक्षक होने की बात भी मिलती है।

3. गौडोर्वीश-कुल प्रशस्ति– प्रस्तुत ग्रन्थ की सूचना नैषधीयचरित के सप्तम सर्ग से अवाप्त होती है।[141] ग्रन्थ के नाम से अनुमान लगाया जाता है कि इसमें गौड (बङ्गाल) देश के राजवंश का वर्णन किया गया होगा। प्रो.आर.डी.सेन के मतानुसार गौड देश के राजा आरिसूर (आरिशूर) का ग्रहण यहाँ अभीष्ट है जबकि प्रो.श्रीछन्द ने गौडेश्वर महाराज महिपाल प्रथम को स्वीकार किया है। एक अन्य मत डॉ. भण्डारकर का भी है जो इसे किसी भी राजा विशेष की प्रशस्ति न मानकर गौड देश के राजवंश की प्रशस्ति मानते हैं।

4. अर्णव-वर्णन– इस ग्रन्थ का नामोल्लेख नैषध महाकाव्य के नवम सर्ग में मिलता है।[142] अर्णव समुद्र का पर्याय है अतः नाम के अनुसार इसमें समुद्र का वर्णन सम्भावित है। नारायणी टीका भीं इसे **'समुद्रस्थवर्णनम्'** कहती है। यह मत डॉ. कृष्णमाचार्य तथा प्रो. आफ्रेख्ट द्वारा भी समर्थित है, किन्तु डॉ. भण्डारकर ने इसे सांभर राज्य के चौहान-वंशीय राजा अर्णव से सम्बद्ध माना है। जिसका खण्डन करते हुवे डॉ. जानी ने कहा है कि 'वर्णन' शब्द का अर्थ 'चरित' नहीं लिया जाना चाहिये।

5. छिन्द-प्रशस्ति या छन्द-प्रशस्ति– इस ग्रन्थ की जानकारी नैषध के सत्रहवें सर्ग से मिलती है।[143] प्रथम नाम के अनुसार यह ग्रन्थ छिन्द नामक किसी राजा की प्रशस्ति अथवा जीवनचर्या का प्रशंसात्मक वर्णन हो सकता है। डॉ.भण्ड़ारकर तथा डॉ. कृष्णमाचार्य इसका सम्बन्ध 'गया' के राजा से मानते हैं, जिनका उल्लेख सन् 1176 ई. के एक शिलालेख में मिलता है। प्रो.श्रीछन्द के मतानुसार यह छिन्द वंश के राजा लल्ल की प्रशस्ति है।

उक्त ग्रन्थ का नाम कहीं-कहीं 'छन्द-प्रशस्ति' भी मिलता है। यदि यह नाम ही सही है तो निश्चय ही यह कोई छन्द से सम्बन्धित ग्रन्थ होगा।

6. शिव-शक्ति-सिद्धि– इसका नामोल्लेख नैषधीयचरित के अट्ठारहवें सर्ग में मिलता है।[144] यह ग्रन्थ भी अनुपलब्ध है, अतएव इसका वर्ण्य-विषय क्या है? इसका अनुमान ही लगाया जा सकता है। विद्वानों का एक वर्ग इसे शिव नामक किसी राजा की वीरता के वर्णन से सम्बद्ध मानता है जबकि अन्य वर्ग इसे शिव-पार्वती की महिमा का ग्रन्थ स्वीकार करता है।

उक्त ग्रन्थ का नाम कही 'शिवा-भक्ति-सिद्धि' भी मिलता है। इस नाम के अनुसार इसे तन्त्रशास्त्र का ग्रन्थ भी अनुमानित किया गया है।

7. नवसाहसाङ्कचरित– इस ग्रन्थ की जानकारी भी श्रीहर्ष कृत नैषधीयचरित से मिलती है। स्वयं श्रीहर्ष ने इसे चम्पू काव्य माना है–**"द्वाविंशो नव-साहसाङ्कचरिते-चम्पू-कृतः"**।[145] जैसा कि नाम से स्पष्ट है इस ग्रन्थ में 'साहसाङ्क' उपाधि वाले

किसी राजा का चरित्र वर्णित है परन्तु वह कौन है? इस विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। इसमें प्रथम मत भण्डारकर जी का है। कान्यकुब्जेश्वर महाराज जयचन्द्र साहसाङ्क' उपाधिधारी थे, अतएव यह ग्रन्थ उन्हीं के कीर्तिमानों का वर्णन करता है। चूँकि महाराज जयचन्द्र श्रीहर्ष के आश्रयदाता थे अतः श्रीहर्ष द्वारा उनका गुणगान स्वाभाविक तथा युक्तिसम्मत प्रतीत होता है।

नैषधीयचरित के टीकाकार आचार्य नरहरि **'साहसाङ्क'** से **भोजराज साहसाङ्क** का ग्रहण करते हैं तथा कुछ विद्वान् इसे साहसाङ्क उपाधि प्राप्त **विक्रमादित्य** से सम्बद्ध मानते हैं, किन्तु यहाँ कवि द्वारा प्रयुक्त **'नव साहसाङ्क-चरित'** से प्रतीत होता है कि यह साहसाङ्क कोई नया ही व्यक्ति होगा। इसके अतिरिक्त नैषध के टीकाकार **आचार्य विद्याधर** इसमें बङ्गाल देश के राजाओं का चरित्र-चित्रण मानते हैं। कारण कि उनका विरुद 'नव-साहसाङ्क' था– **''नव-साहस इत्यंको विरुदो यस्य, तस्य गौडेश्वरस्य चरिते।''** इस मत का समर्थन डॉ.जानी भी करते हैं।

ध्यातव्य है कि उक्त में से किसी भी मत की पुष्टि प्रमाणों के आधार पर नहीं की जा सकती। सभी मत सम्भावना पर आधारित हैं। परन्तु विचार किया जाये तो भण्डारकर महोदय जी का मत अधिक औचित्यपूर्ण प्रतीत होता है। श्रीहर्ष महाराज जयचन्द्र के दरबारी कवि एवं प्रशंसक थे अतः यहाँ नव साहसाङ्क से 'जयचन्द' का ग्रहण समीचीन प्रतीत होता है।

8. खण्डनखण्डखाद्य– इसका उल्लेख नैषध महाकाव्य के षष्ठ सर्ग में मिलता है।[146] यह उनकी द्वितीय उपलब्ध कृति है। यह भी श्रीहर्ष की एक पाण्डित्य पूर्ण दार्शनिक कृति है। चार परिच्छेदों में विभक्त यह ग्रन्थ अद्वैत दर्शन का अद्वितीय ग्रन्थरत्न है। इसमें न्याय दर्शन के सिद्धान्तों का खण्डन न्याय विधि के ही आश्रय से किया गया है। अर्थात् नैयायिकों का खण्डन करके उनके समक्ष ही खांड (गुड़ से बनी चीनी) के रूप में प्रस्तुत कर दिया गया है। अद्वैत सिद्धान्तों का मण्ड़न यहाँ अत्यन्त दुरूह शैली में किया गया है। ग्रन्थारम्भ में महाकवि श्रीहर्ष ने शक्ति की स्तुति की है–

मानाऽपनोदनविनोदनले गिरीशे
भासेव सङ्कुचितयोरुचितं तदिन्दोः।
भेक्तुं भवाऽनिश चितम् दुरतं भवानि
नम्री भवानि घनंध्रि सरोज-योस्ते॥[147]

अर्थात् हे भवानि! मैं संसार में अनादि काल से सञ्चित पाप को दूर करने के लिये आपके उस चरण कमल में नत होता हूँ जो मान छुड़ाने के लिए प्रियतम के नत

होने पर उसके शिरोभूषण चन्द्र की किरणों से संकुचित है; अथवा अज्ञान के नाश के लिये जीवों मे नत (अर्थात् उपासना में तत्पर) होने पर उनकी उपासना रूप चन्द्र की किरणों से संकुचिता (साकारता) को प्राप्त है। इस स्तुतिपाठ के अनन्तर श्रीहर्ष ने विविध प्रकरणों में अद्वैत मत का सविस्तार मण्डन किया है।

खण्डनखण्डखाघ में अद्वैतसिद्धान्त का वर्णन किया गया है। प्रकृत ग्रन्थ का नामकरण आयुर्वेदीय सिद्धान्त पर अवलम्बित है। आयुर्वेदशास्त्र में **खण्डखाद्य** नाम का एक अवलेह विशेष प्रसिद्ध है जो चक्षु सम्बन्धि रोग का नाशक है। यह ग्रन्थ भी निर्वचनीयतावाद रूपी रोग को नष्ट करने में कारण विशेष माना गया है। प्रकृत ग्रन्थ में न्याय-वैशेषिक-मीमांसादि प्रतिपाद्यविषयों की तीक्ष्ण आलोचना की गयी है।

आचार्य गङ्गेश उपाध्याय ने इस ग्रन्थ में प्रतिपादित सिद्धान्तों का ही खण्डन अपनी "तत्त्वार्थचिन्तामणि" में किया है।

9. ईश्वराभि-सन्धि– इस ग्रन्थ का नामोल्लेख श्रीहर्ष के 'खण्डनखण्डखाद्य' में ही किया गया है।[148] यह भी सम्प्रति अनुपलब्ध है। ग्रन्थ के नाम से प्रतीत होता है कि इसमें ईश्वर की सत्ता प्रतिपादित की गयी होगी। सम्भवतः अनीश्वरवादी बौद्धमतावलम्बियों के लिये इसकी रचना हुई होगी।

इस प्रकार कवि एवं काव्य-परिचय नामक प्रस्तुत अध्याय में महाकवि श्रीहर्ष का परिचय उनका देशकाल, उनकी स्थिति, उनका व्यक्तित्त्व आदि विषयों के साथ-साथ नैषधीयचरित महाकाव्य के सर्गानुसार कथानक का प्रतिपादन किया गया है। साथ ही इस कथनाक का मूल-स्रोत महाभारत में प्रतिपादित नलोपाख्यान को भी संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है, तथा संवाद-योजना, पात्रों के चरित्र-चित्रण, नैषध की भाषा एवं शैली इस महाकाव्य में रसाभिव्यक्ति, छन्दों का विधान इत्यादि विषय कहीं संक्षेप में कहीं विस्तार में वर्णित हैं। इसके अतिरिक्त श्रीहर्ष के अन्यान्य कृतियों का भी संक्षेप में परिचय दिया गया है और उनकी महत्ता का उपस्थापन हुआ है।

संदर्भ सूची

1. ईशावास्योपनिषद् मंत्र सं.8 ।
2. अग्निपुराण 339/10 ।
3. गीता 10/37।
4. उत्तररामचरित 1/10।
5. काव्यप्रकाश, 1/2 का वृत्तिभाग।
6. राजतरंगिणी 7/611।

7. नैषधीयचरित, कविप्रशस्ति, श्लोक-4।
8. नैषधीयचरित, 1/145।
9. नैषधीयचरित, कविप्रशस्ति, श्लोक-4।
10. हिस्ट्री सं. प्रो. पृ.273 काणे।
11. प्रो. रामकृष्ण भण्डारकर के द्वितीय भ्रमण का विवरण, पृ.43-47।
12. सरस्वती भवन स्टडीज पत्रिका भाग-3, पृ.159-194।
13. कापि प्रमोदास्फुटनिर्जिहानवर्णैव या मङ्गलगीतिरासाम्।
    सैवाननेभ्यः पुरसुन्दरीणामुच्चैरुलुध्वनिरुच्चार॥ नैषधीयचरित 14/49।
14. अनर्घराघव 3/55।
15. नरनारायण 15/17।
16. नैषधीयचरित 11/116।
17. नैषधीयचरित 14/72।
18. नैषधपरिशीलन, पृ.20।
19. महाभाष्य पस्पशाह्निक।
20. नैषधीयचरित, 17/68।
21. अष्टाध्यायी, 2/3/6।
22. अष्टाध्यायी, 2/3/6।
23. नैषधीयचरित 22/152।
24. नैषधीयचरित 1/145।
25. नैषधीयचरित 18/2।
26. नैषधीयचरित 1/135।
27. नैषधीयचरित 11/116।
28. नैषधीयचरित 1/15-16।
29. नैषधीयचरित 11/55।
30. नैषधीयचरित 13/49।
31. नैषधीयचरित 2/14।
32. नैषधीयचरित 2/48।
33. नैषधीयचरित 1/120।
34. नैषधीयचरित 9/126।
35. नैषधीयचरित 6/97।

36. नैषधीयचरित 6/99।
37. वाल्मीकिरश्लाघत तामनेकशाखात्रयीभूरुहराजिभाजा।
क्लेशं विना कण्ठपथेन यस्य दैवी दिवः प्राग्भुवमागमद्वाक्॥ नैषधीयचरित 10/57।
38. नाकेऽपि दीव्यत्तमदिव्यवाचि वचः स्त्रगाचार्यकवित् कविर्यः।
दैतेयनीतेः पथि सार्थवाहः काव्यः स काव्येन सभामभाणीत्॥ नैषधीयचरित 10/59।
39. नैषधीयचरित 9/36।
40. नैषधीयचरित, 1/4।
41. नैषधीयचरित 1/8।
42. नैषधीयचरित 1/34।
43. नैषधीयचरित, 2/18।
44. नैषधीयचरित, 2/54।
45. नैषधीयचरित, 2/64-65।
46. नैषधीयचरित, 3/12।
47. नैषधीयचरित, 3/56।
48. नैषधीयचरित, 3/67।
49. नैषधीयचरित, 4/33।
50. नैषधीयचरित, 4/108।
51. नैषधीयचरित, 5/3।
52. नैषधीयचरित, 5/27।
53. नैषधीयचरित, 5/76।
54. नैषधीयचरित, 5/99।
55. नैषधीयचरित, 6/13।
56. नैषधीयचरित, 6/86।
57. नैषधीयचरित, 6/112।
58. नैषधीयचरित, 7/2।
59. नैषधीयचरित, 7/4।
60. नैषधीयचरित, 8/46।
61. नैषधीयचरित, 8/58।
62. नैषधीयचरित, 9/13।
63. नैषधीयचरित, 9/16।

64. नैषधीयचरित, 10/69।
65. नैषधीयचरित, 11/26।
66. नैषधीयचरित, 11/116।
67. नैषधीयचरित, 12/15।
68. नैषधीयचरित, 12/108।
69. नैषधीयचरित, 12/112।
70. नैषधीयचरित, 13/14।
71. नैषधीयचरित, 13/40।
72. नैषधीयचरित, 14/11।
73. नैषधीयचरित, 14/17।
74. नैषधीयचरित, 14/19।
75. नैषधीयचरित, 15/9।
76. नैषधीयचरित, 15/14।
77. नैषधीयचरित, 15/16।
78. नैषधीयचरित, 16/128।
79. नैषधीयचरित, 17/96।
80. नैषधीयचरित, 18/3।
81. नैषधीयचरित, 18/2।
82. नैषधीयचरित, 18/100।
83. नैषधीयचरित, 18/105।
84. नैषधीयचरित, 18/139।
85. नैषधीयचरित, 19/24-25।
86. नैषधीयचरित, 20/6।
87. नैषधीयचरित, 20/7।
88. नैषधीयचरित, 20/25।
89. नैषधीयचरित, 22/148।
90. शतपथ ब्राह्मण, 2/2/4-1-2।
91. लिंग पुराण, 1/66, 24-25।
92. वायु पुराण, 2/26/74।
93. हरिवंशपुराण, 1/15।

94. ब्रह्माण्ड पुराण, 2/63, 173-74।

95. (क) प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवन सागराः। साहित्यदर्पण, 6/323.1

(ख) उद्याने सरणः सर्वफलपुष्पलताद्रुमाः।

पिकालिकेलिहंसाद्याः क्रीडावाप्यध्वगस्थितिः॥ काव्यकल्पलतावृत्ति, 1/65- 68।

96. इत्थममुं विलपन्तममुञ्चद्दीनदयालुतयाऽवनिपालः।

रूपमदर्शि धृतोऽसि यदर्थं गच्छ यथेच्छमथेत्यभिधाय॥ नैषध, 1/143।

97. मुहूर्त्तमात्रं भवनिन्दया दयासखाः सखायः स्त्रवदश्रवो मम।

निवृत्तिमेष्यन्ति परं दुरुत्तरस्त्वयैव मातः! सुतशोकसागरः॥ नैषध, 1/136।

98. पयोधिलक्ष्मीमुषि केलिपल्लवे रिरंसुहंसीकलनादसादरम्।

स तत्र चित्रं विचरन्तमन्तिके हिरण्मयं हंसमबोधि नैषधः॥

प्रियासु बालासु रतिक्षमासु च द्विपत्रितं पल्लवितञ्च विभ्रतम्।

स्मरार्जितं रागमहीरुहाङ्कुरं मिषेण चञ्च्वोश्चरणद्वयस्य च॥ नैषधीयचरित, 1/117-118।

99. दमयन्ति नलो नाम निषधेषु महीपतिः। महाभारत, वनपर्व, 53/26-27

100. बन्धाय दिव्ये न तिरश्चि कश्चित्पाशादिरासादितपौरुषस्स्यात्।

एकं विना मादृशि तन्नरस्य स्वर्भोगभाग्यं विरलोदयस्य॥ नैषधीयचरित, 3/20।

101. नैषधीयचरित, 4/111।

102. नैषधीयचरित, 1/1।

103. नैषधीयचरित, 1/6 तथा 1/10।

104. नैषधीयचरित, 1/4 तथा 1/5।

105. नैषधीयचरित, 1/7।

106. नैषधीयचरित, 1/15-16।

107. नैषधीयचरित, 1/17।

108. नैषधीयचरित, 1/143।

109. नैषधीयचरित, 3/23।

110. नैषधीयचरित, 3/80।

111. नैषधीयचरित, 2/18।

112. नैषधीयचरित, 1/38।

113. नैषधीयचरित, 3/117।

114. नैषधीयचरित, 5/71 तथा 20/49।

115. नैषधीयचरित, 9/41।

116. नैषधीयचरित, 18/50।
117. नैषधीयचरित, 3/116।
118. नैषधीयचरित, 14/91।
119. नैषधीयचरित, 1/9।
120. नैषधीयचरित, 1/10।
121. नैषधीयचरित, 1/41।
122. नैषधीयचरित, 18/40।
123. नैषधीयचरित, 4/28।
124. नैषधीयचरित, 1/135।
125. नैषधीयचरित, 2/62।
126. नैषधीयचरित, 2/98।
127. नैषधीयचरित, 1/39।
128. छन्दोमञ्जरी, द्वितीय स्तबक, पृष्ठ 49।
129. नैषधीयचरित, 2/102।
130. सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्॥ छन्दोमञ्जरी, द्वितीय स्तबक, पृ.115।
131. नैषधीयचरित, 1/86।
132. नैषधीयचरित, 1/87।
133. नैषधीयचरित, 1/77।
134. नैषधीयचरित, 1/98।
135. नैषधीयचरित, 1/135।
136. नैषधीयचरित, 1/140।
137. नैषधीयचरित, 22/126।
138. "बोध्यावगासीत्" खण्डनादिग्रंथान् परः शताङ्गग्रन्थः।
कृतकृत्यीभूय काशीमायासीत्॥ प्रबन्धकोश, पृ.54।
139. तुर्यः स्थैर्य विचारणप्रकरणभ्रातर्ययं तन्महाकाव्येऽत्र व्यगलन्नलस्य चरिते सर्गो निसर्गोज्ज्वलः॥ नैषधीयचरितम्, 4/123
140. तस्य श्रीविजयप्रशस्तिरचनातातस्य भव्ये महाकाव्ये चारुणि नैषधीयचिरते सर्गोऽगमत्पञ्चमः॥ नैषधीयचरितम्, 5/138।
141. गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति भणितिभ्रातर्ययं तन्महाकाव्ये चारुणि नैषधीयचरिते सर्गोऽगमत्सप्तमः॥ नैषधीयचरितम्, 7/109।

142. संदृब्धार्णववर्णनस्य नवमस्तस्य व्यरंसीन्महाकाव्ये चारुणि नैषधीचरिते सर्गो निसर्गोज्ज्वलः॥
नैषधीयचरितम्, 9/160।

143. यातः सप्तदशः स्वसुः सुसदृशि छिन्दप्रशस्तेर्महाकाव्ये तद्भुवि नैषधीचरिते सर्गो निसर्गोज्ज्वलः॥ नैषधीयचरितम्, 17/229।

144. यातोऽस्मिंशिवशक्तिसिद्धि भगिनीसौभ्रात्रभव्ये महाकाव्ये तस्य कृतौ नलीयचरिते सर्गोऽयमष्टादशः॥ नैषधीयचरितम्, 18/154।

145. नैषधीयचरितम्, 22/149।

146. षष्ठः खण्डनखण्डतोऽपि सहजात्क्षोदक्षमे तन्महाकाव्येचारुणि नैषधीयचरिते सर्गो निसर्गोज्ज्वलः॥ नैषधीयचरितम्, 6/113।

147. खण्डनखण्डखाद्य, 1/2।

148. द्रष्टव्योदाहरणं चेतदीश्वराभिसन्धौ वेदप्रामाण्ये तथा, यथा न सौगतोऽपि विप्रतिपत्तुमर्हति... दर्शितं च विविच्येदमीश्वराभिसन्धौ। खण्डनखण्डखाद्य-अप्रसङ्गात्मकतर्कनिरुपणम्, पृ.779/781।

द्वितीय अध्याय

नैषधीयचरित महाकाव्य में धार्मिक-सन्दर्भ

धर्म का स्वरूप

धर्म अर्थ काम और मोक्ष इन पुरुषार्थ चतुष्टय में धर्म का प्रथम स्थान आता है। धर्म की महत्ता को इन सभी पुरुषार्थों में श्रेष्ठ एवं आदरणीय पद पर प्रतिष्ठापित किया गया है। धर्म का अस्तित्व देश और काल की सीमाओं से परे है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के सभी देशों एवं सभी जातियों में अनादि काल से धर्म की मान्यता चली आ रही है। धर्म की सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक सत्ता को देखकर हमारे ऋषियों ने धर्मशास्त्रों में कहा है कि–धर्म ही सम्पूर्ण संसार का आश्रयभूत है इसीलिए मानवमात्र के प्रति उनका उपदेश था–**'धर्मं चर,[1] भोक्ता च धर्माविरुद्धान् भोगान्। एवमुभौ लोकावभिजयति।।[2]** अर्थात् धर्म करो, धर्म से प्रमाद नहीं करना चाहिए, धर्म करके सुख से रहो।

आज संसार में प्रत्येक प्राणी यही इच्छा रखता है कि वह अधिकाधिक सुख एवं सम्पत्ति का भागी बन सके। आज भी प्रायः इन्हीं वासनाओं की मृगमरीचिका ने मनुष्य को भौतिकतावादी स्वभाववादी, यथार्थवादी और न जाने कितने वादों में परिणत कर दिया है। उसकी जितनी अधिक प्रतिस्पर्धा 'अर्थ' व 'काम' को प्राप्त करने में है उतनी 'धर्म' एवं 'मोक्ष' के लिए नहीं है। यदि कतिपय लोगों के हृदय में इसके लिए स्थान भी है तो वह नाममात्र के लिए है। धर्म व मोक्ष की स्वाभाविक चेतना किन्हीं विरले ही व्यक्तियों में होती है जिसका परिणाम यह होता है कि इन दोनों की प्राप्ति के लिए आज संसार में तथाकथित अन्यान्य अनेक ढोंग फैलाना पड़ता है। मोक्ष में विश्वास रखने वालों की संख्या आज नाममात्र हो गई है। फलतः 'धर्म' व 'मोक्ष' को अर्थ व काम की अपेक्षा पुरुषार्थ कहना सूर्य को दीपक दिखाने के समान हो गया है। वस्तुतः ''धर्म'' व ''मोक्ष'' के प्रति उत्पन्न अनुराग व्यक्ति की अन्तश्चेतना का प्रतीक है।

धर्म आत्मा में स्थित वह रहस्यमय भावना है जो मानव तथा मानवेतर प्राणियों में भेद स्पष्ट करता है। इसीलिए आचार्य मनु ने कहा भी है कि–ज्ञानी पुरुष को अपने ज्ञानचक्षु से इन सभी को अच्छी प्रकार देखकर क्या करना चाहिए क्या नहीं करना चाहिए तथा शास्त्रों द्वारा कथित नियमों को प्रमाणित मानकर अपने-अपने धर्माचरण में स्थित रहना चाहिये–

सर्वं तु समवेक्ष्येदं निखिलं ज्ञानचक्षुषा।
श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान्स्वधर्मे निविशेत वै॥[3]

क्योंकि जो धर्म की रक्षा करता है उसकी रक्षा धर्म करता है–

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्॥[4]

आज का समाज धर्म की वास्तविक परिभाषा से भटक गया है। यही कारण है कि आज बहुत सारे लोग 'धर्म' का मतलब ही नहीं जानते और अज्ञानतावश धर्म, संप्रदाय और मजहब को एक ही समझ लेते हैं तथा इसी अज्ञानता के कारण बहुत सारे लोग "सभी धर्म एक समान" सरीखे नारे को बुलंद करते आ रहे हैं। इस घोर ज्ञानान्धता को दूर करने के लिए धर्म के यथार्थ स्वरूप को समझाना नितान्त आवश्यक है।

धर्म का लक्षण

धर्म शब्द की निष्पत्ति धारणार्थक "धृञ्" धातु से हुई है जिसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है–"जो किसी वस्तु को धारण करे" या उस वस्तु का अस्तित्व बनाये रखे। महाभारत के अनुसार भी धारण करने के कारण ही इसे धर्म कहा गया है–

धारणाद् धर्ममित्याहुर्धमो धारयते प्रजाः।
यत्स्याद् धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चितम्॥[5]

लोक व परलोक के सुखों की सिद्धि हेतु सार्वजनिक पवित्र गुणों और कर्मों का धारण व सेवन करना ही धर्म हैं।

धर्म की परिभाषा प्रायः सभी आद्याचार्यों ने अपने शास्त्रों में दी है। वैशेषिक धर्म के अनुसार धर्म की परिभाषा बतलायी गयी है–'**यतोभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः**'' जिससे अभ्युदय एवं निःश्रेयस की सिद्धि हो उसे धर्म कहते है। मीमांसा दर्शन के अनुसार "**चोदनालक्षणोर्थो धर्मः।**"[6]

ईश्वर प्रेरणा ही धर्म है अथवा शास्त्रप्रतिपादित कर्म या आचरण पद्धति ही धर्म है। भगवान् मनु ने धर्म की परिभाषा में लिखा है – वेद, स्मृति, सदाचार और जो अपनी आत्मा को प्रिय लगे वही धर्म है–

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च॥[7]

इन आचार्यों द्वारा प्रतिपादित धर्म की परिभाषा को आधार मानकर यह कह सकते हैं कि व्यक्ति के स्वयं तथा उसके सामाजिक जीवन को सुव्यवस्थित तथा समुन्नत करने के लिए कल्याणकारी एवं हितकारी नियमों तथा नैतिक कर्तव्यों को ही धर्म कहते हैं। यदि

सामान्यतया कहा जाए तो मानव का कल्याण एवं वेद प्रतिपादित नियमों का पालन तथा नैतिक नियम ही धर्म है। तैत्तिरीयारण्यक में कहा गया है कि धर्म किसी मजहब, सम्प्रदाय या मत का द्योतक नहीं अपितु यह जीवन का एक ढंग या आचरण संहिता है जो समाज या व्यक्ति के रूप में मनुष्यों के आचरणों एवं कर्मों को सुव्यवस्थित करता है। उसमें उत्तरोत्तर विकास लाते हुवे मानवीय सद्‌गुणों को सुसंस्कारित करता है।

धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा, लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्जन्ति।
धर्मेण पाथमुपनुदति धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माद्धर्मं परमं वदन्ति।।[8]

बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है कि मनुष्य के जीवन में अपूर्णता या रिक्तता, चारित्रिक वैषम्य और आध्यात्मिक अशान्ति तथा अवसाद की जो भावना देखी जाती है ज्ञान के बल पर उससे उपर उठकर जो पूर्ण सत्य, आप्तकार्यता, अमृतत्व और परमशान्ति की अनुभूति होती है वही परम धर्म है। यह एक ऐसा तथ्य है जो मानव का आस्था एवं भय इन दोनों रूपों में नियमन करता आया है।

धर्मशास्त्रीय तत्त्वों के विवेचन से महाकाव्य भी पूर्णतया आप्लावित हैं। कुमारसम्भवम्, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, मालविकाग्निमित्रम्, रामायण, महाभारत आदि प्रमुख महाकाव्यों में भी पर्याप्त धर्म सम्बन्धी उद्धरण कवियों ने दिये हैं–

अनेन धर्मः सविशेषमद्य मे त्रिवर्गसारः प्रतिभाति भाविनी।
त्वया मनोनिर्विषयार्थकामया यदेक एव प्रतिगृह्य सेव्यते।।[9]

अर्थात् ब्रह्मचारी देवी पार्वती से कहता है कि मैं आपके इस आचरण से ही समझ रहा हूँ कि धर्म, अर्थ एवं काम, इन तीनों में धर्म ही सबसे बढ़कर है क्योंकि आप अर्थ और काम से अपने मन को हटाकर अकेले धर्म का ही पल्ला थामे उसकी सेवा किए जा रही हैं।

षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः।[10]
उत्पस्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा।[11]
दिव्यास्त्रगुणसम्पन्नः परं धर्मं गतो युधि।[12]

इन धार्मिक विवेचनों से विमुख श्रीहर्ष भी नहीं हैं। इन्होंने भी स्वरचित महाकाव्य नैषधीयचरितम् में पर्याप्त धार्मिक उद्धरण दिये हैं।

नैषध में वर्णित धर्म

नैषध महाकाव्य में धर्मशास्त्र सम्बन्धी तथ्यों का अवलोकन नल हंस संवाद, नल की पूजार्चना, नल-दमयन्ती विवाह प्रसंग एवं नल तथा देवों के वार्तालाप आदि स्थलों पर होता है। महाकाव्य के प्रारम्भ में ही राजा नल–युग की धार्मिकता परिलक्षित होती है।

पदैश्चतुर्भिः सुकृते स्थिरीकृते कृतेऽमुना के न तपः प्रपेदिरे।
भुवं यदेकाङ्घ्रिकनिष्ठया स्पृशन् दधावधर्मोऽपि कृशस्तपस्विताम्।।[13]

राजा नल को त्रेता युग में उत्पन्न माना जाता है, उसने अपने पुण्य से त्रेता युग में भी धर्म की पूर्ण स्थापना करके सत्युग ला दिया था, जिसमें धर्म चारों पैरों से विचरण करता है और अधर्म एक पैर से, तब जब अधर्म भी धरती पर एक पैर खड़ा हो तपस्वी हो गया तो और कौन तपस्वी न हो जाता। इस प्रकार पूर्ण धर्म की चर्चा है।

नैषधकार ने नल की भक्ति के शतांशमात्र से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को सुलभ बताया है–

फलसीमां चतुर्वर्गं यच्छतांऽशोऽपि यच्छति।
नलस्यास्मदुपघ्ना सा भक्तिर्भूतावकेशिनी।।[14]

नल की धर्मनिष्ठा में इन्द्र ने उन्हें अत्यन्त सज्जन, लोकपालों के समान श्रीमान् निषधदेश का अमृतवर्षी चन्द्रमा, समस्त श्रौत एवं स्मार्त धर्मों का आश्रयी और धर्म का धनी बताते हुए कलि को भी नल-दमयन्ती से वैर न रखने की सलाह दी है–

भव्यो न व्यवसायस्ते नले साधुमतौ कले।
लोकपालविशालोऽयं निषधानां सुधाकरः।।
न पश्यामः कलेस्तस्मिन्नवकाशं क्षमाभृति।
निचिताखिलधर्मे च द्वापरस्योदयं वयम्।।
सा विनीततमा भैमी व्यर्थानर्थग्रहैरहो!।
कथं भवद्विधैर्बाध्या प्रमितिर्विभ्रमैरिव।।
तं नासत्ययुगं तां वा त्रेता स्पर्धितुमर्हति।
एकप्रकाशधर्माणं न कलिद्वापरौ! युवाम्।।[15]

यहाँ तक कि उन्होंने नल के विषय में यह भी कह दिया कि जो कोई भी व्यक्ति अज्ञान वश भी नल से द्रोह करेगा वह निश्चित ही पाप का भागी बनेगा।

द्रोहं मोहेन यस्तस्मिन्नाचरेदचिरेण सः।
तत्पापसम्भवं तापमाप्नुयादनयात्ततः।।[16]

भगवान् महात्मा बुद्ध द्वारा छठीं शताब्दी में बौद्ध धर्म की स्थापना हुई थी जो श्रीहर्ष के समय में अवनति की ओर था क्योंकि आद्यशङ्कराचार्य भगवत्पाद द्वारा वैदिक धर्म का पुनः उद्धार हो चुका था। भगवत्पाद द्वारा पुनरुद्धारित इस वैदिक धर्म में अवतारवाद, मूर्ति पूजा आदि को विशेष प्रतिष्ठा मिली थी एवं विष्णु, कृष्ण, राम आदि की देवतुल्य पूजार्चना धर्म का आधार बन गई।

महाकवि द्वारा नैषध के 21वें सर्ग में राजा नल द्वारा विभिन्न अवतारों की स्तुतियों, पूजा-पाठादि के प्रकार वर्णित हैं।

महाकवि श्रीहर्ष द्वारा धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित धर्म के प्रत्येक पहलुओं का समादर हुआ है।

मनुस्मृतिकार ने स्त्रियों को नग्न देखना निषिद्ध माना है–

नाग्निं मुखेनोपधमेन्नग्नां नेक्षेत च स्त्रियम्।
नामेध्यं प्रक्षिपेदग्नौ न च पादौ प्रतापयेत्।।[17]

अग्नि को मुख से न फूंके, नंगी स्त्री को (मैथुन के अतिरिक्त समय में) न देखें, अपवित्र वस्तु अग्नि में न डाले और पैर को अग्नि के उपर उठाकर न सेंके।

ऐसा ही प्रकरण धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ याज्ञवल्क्य स्मृति में भी दृष्टिगत होता है जहाँ सूर्य, नग्न-स्त्री तथा सुरतकालीन स्त्री को देखना निषिद्ध माना गया है।

नैषधकार श्रीहर्ष ने धर्मशास्त्रीय इन मर्यादाओं का पूर्णरूपेण पालन किया है। कवि ने स्मृति–प्रोक्त आज्ञा का स्मरण करते हुए अपने काव्य में वर्णन किया है– 'पुष्पलताओं के साथ पवन की केलियों को देखकर नल आँखें बन्द कर लेता है। पवन सर्वप्रथम लताओं का ओस की बूँदों के कारण पाण्डुपत्र रूपी वस्त्र बलात् हटाता है फिर उनसे विलास क्रीडायें भी करता है–

पुरा हठाक्षिप्ततुषारपाण्डुरच्छदा वृतेर्वीरुधि बद्धविभ्रमाः।
मिलन्निमीलं ससृजुर्विलोकिता नभस्वतस्तं कुसुमेषु केलयः।।[18]

महाराज नल भी विदर्भराज भीम के अन्तःपुर में ऐसे ही धर्म संकट में फस जाते हैं। महाराज भीम के अन्तःपुर में आलिङ्गनार्थ खुली किसी युवती के जाँघ को देख सहसा राजा नल अपनी आँखें बन्द कर लेते हैं किन्तु बगल से आती अन्य युवती से टकराकर चौंक जाते हैं–

अन्तः पुरान्तः स विलोक्य बालां कांचित्समालब्धुमसंवृतोरुम्।
निमीलिताक्षः परया भ्रमन्त्या संघट्टमासाद्य चमच्चकार।।[19]

धर्मशास्त्रों में ऐसा वर्णन आता है कि पति की मृत्यु हो जाने पर स्त्री को भी अपना देहत्याग कर देना चाहिए ऐसा करना धर्म संगत तथ्य माना जाता है–

मृते म्रियते या पत्यौ सा स्त्री ज्ञेया पतिव्रता।[20]

किन्तु यदि पति महापातक दोष में संलिप्त हो तो जब तक वह शुचि न हो जाए तब तक स्त्री उससे स्वतन्त्र रह सकती है एवं शुद्धिकाल तक उसकी प्रतीक्षा कर सकती है।

आशुद्धेः सम्प्रतीक्ष्यो हि महापातकदूषितः।[21]

ऊपर कहे इन दोनों धार्मिक तथ्यों को ध्यान में रखते हुए दमयन्ती मदन को फटकारती है–मदन! पूर्ण पतिव्रता होकर भी रति तुम्हारे साथ ही क्यों न सती हो गई? और अभी क्या तुम्हारी प्रिया ने भी इतनी विरहिणियों के वध के पातकी तुम्हें त्याग दिया।

अनुममार न मार! कथं नु सा रतिरिति प्रथितापि पतिव्रता।
इयदनाथवधूवधपातकी दयितयापि तयासि किमुज्झितः।।[22]

धर्म शास्त्रकारों ने विधि-निषेध एवं विहित कर्मों का सविस्तार व्याख्यान किया है। महाकवि श्रीहर्ष ने इस प्रसंग में कहा है कि जो विधि-निषेध हो किन्तु श्रुति-सम्मत हो उसे मानना चाहिए।

क्वापि सर्वैरवैमत्यात् पातित्यादन्यथा क्वचिद्।
स्थातव्यं श्रौत एव स्याद्धर्मे शेषेऽपि तत्कृते।।[23]

मनुस्मृति में कहा गया है कि विद्यार्थी को सदा वेदपाठ के पूर्व एवं समाप्ति पर अपने गुरु को ब्रह्माञ्जलि बद्ध प्रणाम करना चाहिए–

ब्रह्मारम्भेऽवसाने च पादौ ग्राह्यौ गुरोः सदा।
संहत्य हस्तावध्येयं स हि ब्रह्माञ्जलिः स्मृतः।।[24]

वेद पढ़ने के पहले और बाद में गुरु के दोनों चरणों का स्पर्श करना चाहिए। हाथ जोड़कर वेदाध्ययन करना ही ब्रह्माञ्जलि कहलाता है।

नैषध में इसका वर्णन कलि प्रसंग में प्राप्त होता है जब निषधपुरी में कलि वेद-विद्वानों को ब्रह्माञ्जलि बद्ध देखा तो धर्म की प्रगाढ़ता वश उसे दुःख हुआ और उसके आँखों से आँसू गिर पड़े–

अपश्यद् यावतो ब्रह्मविदां ब्रह्माञ्जलीनसौ।
उदडीयन्त तावन्तस्तस्तास्त्राञ्जलयो हृदः।।[25]

हमारे ऋषि-महर्षियों द्वारा धर्म के कुछ ऐसे सोपान बनाये गये हैं जिनका पालन प्रत्येक मनुष्य को सभी कालों में अवश्य करना चाहिए।

मनुस्मृति में ऐसा उपदेश मिलता है कि 'सूर्यास्त तथा सूर्योदय के समय सोने वाला पुरुष बिना प्रायश्चित्त किये बड़े पाप का भागीदार बनता है–

सूर्येण ह्यभिनिर्मुक्तः शयानोऽभ्युदितश्च यः।
प्रायश्चित्तमकुर्वाणो युक्तः स्यान्महतैनसा।।[26]

महाकवि श्रीहर्ष ने इस सन्दर्भ में लिखा है कि 'कलि ने निषधनगरी में घूमते हुए अपने समान किसी अधर्मा को नहीं देखा'–

तेनादृश्यन्त वीरघ्ना न तु वीरहणो जिनाः।
नापश्यत् सोऽभिनिर्मुक्तान् जीवन्मुक्तानवैक्षत।।[27]

यह सार्वजनीन व सार्वकालिक तथ्य है कि पुरुषों द्वारा देवताओं की की गई उपासना का फल उनके द्वारा दी गई सद्बुद्धि ही है। जिसे पाकर व्यक्ति असंभव वस्तु को भी सरलतया प्राप्त कर लेता है। जैसा कि नैषध में भी वर्णन आया है देवों द्वारा दी गई सद्बुद्धि के कारण ही दमयन्ती को सरस्वती के श्लिष्ट रचनाओं का स्मरण हुआ क्योंकि देवगण प्रमुदित होकर सद्बुद्धि ही देते हैं–

प्रसादमासाद्य सुरैः कृतं सा सस्मार सारस्वतसूक्तिसृष्टेः।
देवा हि नान्यद् वितरन्ति किन्तु प्रसद्य ते साधुधियं ददन्ते।।[28]

पूजा की विविध सामग्रियों का भी नैषधीयचरित में पर्याप्त वर्णन मिलता है। देवालयों में पूजार्थ फूल-मालाएँ लाकर उचित स्थानों पर रखी जाती हैं। फूलों को बाँसों की डालियाँ अथवा ताँबा, चाँदी या सुवर्णादि के पात्रों में रखा जाता है। अगुरु आदि धूप भी जलाया जाता है। राजा नल के मंदिर में भी कुछ ऐसा ही दृश्य दिखलाई देता है–

क्वापि यन्नभसि धूपजधूमैर्मेचकागुरुभवैर्भ्रमराणाम्।
भूयते स्म सुमनः सुमनः स्त्रग्दामधामपटले पटलेन।।[29]

नैषधकालीन मंदिरों में चौतरफा (चौमुखी) दीपक जलाने का वर्णन प्राप्त होता है–

साङ्कुरेव रुचिपीततमा यैर्यैः पुराऽस्ति रजनी रजनीव।
ते धृता वितरितुं त्रिदशेभ्यो यत्र हेमलतिका इव दीपाः।।[30]

अर्थात् देव मंदिर में देवों के सम्मुख इतने अधिक चौमुखी बाती-सहित दीपक रखे गये थे कि रात का अंधेरा पूर्णतः दूर हो गया था।

पूजनोपरान्त देवताओं को नैवेद्यार्पण का विधान है जिसका वर्णन करते हुए कवि लिखता है–

स्वात्मनः प्रियमपि प्रति गुप्तिं कुर्वती कुलवधूमवजज्ञे।
हृद्यदैवतनिवेद्यनिवेशान् यत्र भूमिरवकाशदरिद्रा।।[31]

अर्थात् देवमंदिर में मन को आने वाले देवसंबद्ध नैवेद्य इतने प्रचुर मात्रा में वहाँ रखें गये थे कि वहाँ की पृथ्वी पूरी ढ़क गई थी।

नैषधकार ने यह भी निर्देश दिया है कि पुरुषार्थचतुष्टय की सिद्धि में प्रधान कारण ईश्वरभक्ति ही है–

धर्मबीजसलिला सरिदङ्घ्रावर्थमूलमुरसि स्फुरति श्रीः।
कामदैवतमपि प्रसवस्ते ब्रह्म मुक्तिदमसि स्वयमेव।।[32]

स्मृतियों में ऐसा विधान मिलता है कि व्यक्ति को एक वस्त्र पहनकर कोई मंगलकृत्य नहीं करना चाहिए–

इस स्मृति विधान का अनुपालन करते हुए महाकवि श्रीहर्ष ने वर्णन किया कि 'राजा नल ने पूजा के समय अपने उपर के अंगों-वक्ष आदि को चारों ओर से उत्तरीयवस्त्र से ढका।' इसकी कल्पना की गई कि मानों राजा नल ने अपने चंचल मन को नियन्त्रित करने हेतु अपने वक्ष को चारों तरफ से घेर दिया क्योंकि उसका मन स्वप्रिया निकट गमनोत्सुक था, ऐसा उचित नहीं था–

भीमजामनुचलत् प्रतिवेलं संयियंसुरिव राजऋषीन्द्रः।
प्राववार हृदयं स समन्तादुत्तरीयपरिवेषमिषेण ।।[33]

धर्मशास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार व्यक्ति का जीवन आजकल के वातावरण, परिवेष समुदाय में शास्त्रसंगत नहीं दिखता। धार्मिक नियमों में व्यास-वचन मिलता है कि–**'हस्तवस्त्रैर्न मार्जयेत्'** अर्थात् वैधस्नानानन्तर सिर को हाथ अथवा वस्त्र से न पोंछे। तिलक (चन्दन) के विषय में दक्ष-वचन है–**''ऊर्ध्ववृत्ततिर्गगर्द्धचन्द्राकाराः वर्णानां क्रमात्तिलकाः''** अर्थात् ब्राह्मण ऊर्ध्व तिलक लगाये, क्षत्रिय वृत्ताकार (गोल), वैश्य तिरछा और शूद्र अर्द्धचन्द्राकार।

इन दो धार्मिक सिद्धान्तों का अनुपालन करते हुए कवि ने अत्यन्त सुन्दर चित्रण चित्रित किया है–

स्नानवारिघटराजदुरोजा गौरमृत्तिलकबिन्दुमुखेन्दुः।
केशशेषजलमौक्तिकदन्ता तं बभाज सुभगाऽऽप्लवनश्रीः।।[34]

नैषधकार ने धर्म को ऐसे अनेक अलौकिक उदाहरणों से परिभाषित किया है जो अधुनातन साम्प्रयोगिक हैं। कवि कहता है कि– जैसे वन-मण्डली से भयभीत व्यक्ति अपने अत्यावश्यक कार्यों को छोड़कर छुप जाता है वैसे ही धर्मप्रवीण निषधोन्मुख से कलि भयभीत हो गया–

नलेष्टापूर्त्तसम्पूर्त्तेर्दूरदुर्गानमुं प्रति।
निषेधन् निषधान् गन्तुं विघ्नः सञ्झघटे घनः।।[35]

कलियुग में धर्म एक पैर पर खड़ा रहता है अर्थात् धर्मपंगु हो जाता है। इसलिए कलि को ठहरने के लिये नल के राज्य में एक ही वृक्ष मिला बहेडा का। अर्थात् नल कृतयुग के राजा थे तो उस समय कलि भी पंगु था–

ददौ पदेन धर्मस्य स्थातुमेकेन यत् कलिः।
एकः सोऽपि तदा तस्य पदं मन्येऽमिलत् ततः।।[36]

इन्द्र कलि को सावधान करते हुवे कहता है– हम देवगण क्षमाशील, सामर्थ्यवान् पृथ्वीपति समग्र धर्मपुण्य कर्म के संग्रही, वेदोपनिषद् के गूढार्थ ज्ञाता उस राजा नल में कलि अर्थात् कलह युक्त कलियुग का कोई अवसर ही नहीं देख पाते हैं। राजा नल तो धर्म के मूर्तिमान् स्वामी हैं–

न पश्यामः कलेस्तस्मिन्नवकाशं क्षमाभृति।
निचिताखिलधर्मे च द्वापरस्योदयं वयम्।।[37]

इस प्रकार महाकवि श्रीहर्ष ने अपने महाकाव्य में धर्म के अनेक पुष्टातिपुष्ट उदाहरण दिये हैं।

देवपूजा

12वीं शताब्दी में वैदिक धर्म उन्नति की ओर था। देवी-देवताओं की पूजा करने की प्रथा तत्कालीन प्रत्येक वर्ग में निहित थी। दिन में तीन बार प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल में सन्ध्योपासना की चर्चा महाकवि ने की है। महाकवि श्रीहर्ष के काल में जनता को यह पूर्ण विश्वास था कि देवता ही हमें सब कुछ प्रदान करते हैं। जैसे हम पेड़-पौधों को खाद, पानी से सिञ्चित करते हैं तो वे हमें फल-मूल देते हैं वैसे ही प्रदक्षिणा, जल-निवेदन, धूपदानादि से पूजित देवता भी हमें फल देते हैं–

प्रदक्षिणप्रक्रमणालवालविलेपधूपावरणाम्बुसेकैः।
इष्टञ्च मृष्टञ्च फलं सुवाना देवा हि कल्पद्रुमकाननं नः।।[38]

राजा नल द्वारा नित्य अग्निहोत्र में आह्वनीय, गार्हपत्य तथा दक्षिणाग्नि इन तीनों अग्नियों की पूजा का वर्णन उपलब्ध होता है–

ममासावपि मा सम्भूत् कलिद्वापरवत् परः।
इतीव नित्यसत्रे तां स त्रेतां पर्यतूतुषत्।।[39]

राजा नल को धर्म एवं देवी-देवताओं में प्रगाढ़ विश्वास था। राज़ा नल का यह मानना है कि देवताओं की पूजार्चना के फलस्वरूप ही आज मुझे यह त्रैलोक्य सुंदरी सर्वगुण–सम्पन्ना दमयन्ती प्राप्त हुई है–

त्वां प्रापं यत्प्रसादेन प्रिये! तन्नाद्रिये तपः।।[40]

दमयन्ती ने श्रद्धया नामग्रहणपूर्वक उन उन देवताओं को प्रणाम किया–'इन्द्राय नमः' 'अग्नये नमः' इत्यादि। वस्तुतः नमस्कार सभी पूजा विधियों में महत्त्वपूर्ण है एवं श्रद्धा से किये गये प्रणाम का फल मनोवांछितकार्यसिद्धिरूप होता है–

श्रद्धामयीभूय सुपर्वणस्तान् ननाम नामग्रहणाग्रकं सा।
सुरेषु हि श्रद्दधतां नमस्या सर्वार्थनिध्यङ्गमिथः समस्या।।[41]

किसी भी धार्मिक कृत्य को करने से पूर्व बाह्याभ्यन्तर शुचिता आवश्यक होती है। इस प्रसंग में श्रीहर्ष ने कहा है कि धर्मशास्त्रों में निर्दिष्ट आचमन, उपस्पर्शन करके धरती पर छोड़ दिया जाता है, राजा नल ने इसका सविधि पालन किया–

कल्प्यमानममुनाऽऽचमनार्थं गाङ्गमम्बु चुलुकोदरचुम्बि।
निर्मलत्वमिलितप्रतिबिम्बां द्यामयच्छदुपनीय करे नु।।[42]

पूजा-पाठ के विधान में आचमन के बाद पवित्रीधारण का विधान बतलाया गया है। पवित्री में कुश का धर्म संहिताओं में अत्यन्त महत्त्व है–

कुशस्य मूले मध्येऽग्रे ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
सदा वसन्त्यतः श्रेष्ठः कुशः सकलकर्मसु।।[43]

इन धर्मनिर्दिष्ट बातों को ध्यान में रखते हुए राजा नल ने भी कुश का पवित्रीधारण किया जैसा कि महाकवि श्रीहर्ष ने वर्णन किया है–

मूलमध्यशिखरस्थितवेधः शौरिशम्भुकरकांघ्रिशिरःस्थैः।
तस्य मूर्ध्नि चकरे शुचि दर्भैर्वारि वान्तमिव गाङ्गतरङ्गैः।।[44]

दर्भो के मूल आदि मध्य अन्त्य पर यथाक्रम स्थित ब्रह्मा विष्णु महेश के कमण्डलु, चरण शिर पर स्थित गंगा की लहरियों द्वारा जैसे उद्गीर्ण पवित्र गंगा-जल कुशों द्वारा उस (नल) के मस्तक पर छिड़का गया।

पवित्रीधारण के बाद क्रम आता है प्राणायाम का जिसका वर्णन करते हुए कवि कहता है–'प्राणायाम करते हुए राजा नल का मुख अमृत मंथन से पूर्व समुद्र के मध्य निवास करते हुए चन्द्रमा के समान सुशोभित हुआ।'

प्राणमायतवतो जलमध्ये मञ्जिमानमभजन्मुखमस्य।
आपगापरिवृढोदरपूरे पूर्वकालमुषितस्य सुधांशोः।।[45]

यथाविधि आवाहन पूजन के पश्चात् राजा नल ने सूर्यार्चनोपरान्त गायत्रीमंत्र का स्फटिकमाला पर जप किया। इस विधान का अत्यन्त मनोरम वर्णन कवि ने अपनी इस पद से किया है–

सम्यगस्य जपतः श्रुतिमन्त्राः सन्निधानमभजन्त कराब्जे।
शुद्धबीजविशदस्फुटवर्णाः स्फाटिकाक्षवलयच्छलभाजः।।[46]

राजा नल निर्दोष, उजले, चमकदार स्फटिकों की जपमाला पर क्रम, मात्रा आदि की सम्पूर्णता के साथ स्पष्ट उदाहरण करते हुवे सविधि गायत्र्यादि श्रुतिमंत्रों का उपांशु जप कर रहे थे।

धर्म शास्त्रों में ऐसा वर्णन आता है कि देवताओं का तर्पण यव (जौ) से तथा पितरों का तर्पण तिल से किया जाता है–'**देवतर्पणं हि यवैः क्रियते पितृतर्पणं हि तिलैः क्रियते।**' इस धार्मिक सिद्धान्त का अनुपालन करते हुए श्रीहर्ष ने लिखा है–

पाणिपर्वणि यवः पुनराख्यद्देवतर्पणयवार्पणमस्य।
न्युप्यमानजलयोगितिलौघैः स द्विरुक्तकरकालतिलोऽभूत्॥[47]

नल ने हाथ में जौ लेकर देवतर्पण किया और जौ तिल-जल से पितृ-तर्पण किया।

दैनिक दिनचर्या में पूजा-पाठ का शास्त्रकारों ने विधान किया है। महाकवि श्रीहर्ष का नायक राजा नलने भी अपने दैनिक कृत्यों (पूजा, देवार्चना, तर्पण आदि) के पालन से अपनी धर्म-परायणता सिद्ध की है।

यज्ञ

महाकवि श्रीहर्ष ने वेद धर्मशास्त्रादि ग्रन्थों में प्रतिपादित विभिन्न यज्ञीय वर्णनों का भी अपने नैषध महाकाव्य में पर्याप्त उल्लेख किया है। यज्ञ शब्द की व्युत्पत्ति ('यज्+भावे नङ्') शाब्दिकों ने की है, जिसका अर्थ याग या मख, यज्ञ सम्बन्धीकृत्य होता है।

नैषध के सत्रहवें सर्ग में कवि ने गोमेध यज्ञ, सौत्रामणी यज्ञ, सर्वमेधयज्ञ, ब्रह्मसामयज्ञ, अग्निष्टोमयज्ञ, पौर्णमासयज्ञ, सोमयज्ञ, अश्वमेधयज्ञादि विभिन्न याज्ञिक विधानों का वर्णन किया है। महाकवि श्रीहर्ष लिखते हैं- राजानल की राजधानी में चारों तरफ यज्ञ हो रहे थे जिसके धुएँ से कलि का नेत्र भी नहीं खुल सका तथा यज्ञ की आहुति के सुगन्ध से उसका नाक मानो नष्ट हो गया–

तस्य होमाज्यगन्धेन नासा नाशमिवागमत्।
तत्रातत दृशौ नासौ क्रतुधूमकदर्थिते॥[48]

सत्रहवें सर्ग में कलिवर्णन प्रसंग में कवि लिखता है कि गोमेधयज्ञ में बलि के निमित्त बंधी गौ को देख उस दुष्टकलि ने समझा कि अब तो गो हत्यारूप पाप होगा, किन्तु जब उसको यह ज्ञात हुआ कि यह पाप-अधर्म नहीं अपितु '**गोमेधयज्ञ**' एक धार्मिक अनुष्ठान हो रहा है तो दूर से ही निराश होकर वापस चला गया–

हिंसागवीं मखे वीक्ष्य रिंसुर्धावति स्म सः।
सा तु सौम्यवृषासक्ता खरं दूरं निरास तम्॥[49]

सौत्रामणीयज्ञ के विधान में वेद, ब्राह्मादि ग्रन्थों में मदिरा (सुरा या सोमरस) का प्रयोग बतलाया गया है–

सुरावन्तं वर्हिषदं सुवीरं यज्ञं हिन्वन्ति महिषा नमोमिः।
दधानाः सोमं दिवि देवतासु मदे मैन्द्रं यजमानाः स्वर्काः॥[50]

सुरावान् वा एष वर्हिषद् यज्ञौ यत् सौत्रामणीः।[51]

सौत्रामणीयज्ञ के वर्णन प्रसंग में कवि कहता है कि 'एक ब्राह्मण इन्द्रदेवता का यज्ञ 'सौत्रामणि' कर रहा था जिसमें शास्त्रोक्त विधिना वह यागकर्त्ता सुरादान कर रहा था जिसे देख कलि प्रसन्न हुआ किन्तु जब उसे शास्त्रविहित विधि का अवबोध हुआ तो दुःखी हो गया।

आनन्दन्मदिरादानं विन्दन्नेष द्विजन्मनः।
दृष्ट्वा सौत्रामणीमिष्टिं तं कुर्वन्तमदूयत॥[52]

धर्मशास्त्रों में सर्वमेधयज्ञ के विधान में यह नियम बतलाया गया है कि प्रत्येक वर्ग का व्यक्ति अपने-अपने वर्ग के एक-एक व्यक्ति की हिंसा करता है–'**ब्राह्मणो ब्राह्मणमालभेत**'।

इस यज्ञ के सम्बन्ध में नैषधकार का मत है कि नल की नगरी में ब्रह्महत्या करते देखकर वह (कलि) अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ, किन्तु जब उसे यह ज्ञात हुआ कि वह सर्वमेध-यज्ञ कर रहा है जिसमें शास्त्र का ऐसा विधान है तो (कलि) अत्यन्त सन्तप्त हो गया।

तत्र ब्रह्महणं पश्यन्नतिसंतोषमानशे।
निर्वर्ण्य सर्वमेधस्य यज्वानं ज्वलति स्म सः॥[53]

राजसूय यज्ञ में यजमान का ऋत्विजों के साथ जुआ (अक्षपण) खेलने का विधान होता है। वेद विहित यज्ञों में राजसूय यज्ञ का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि "कलि चाहता था कि उसे वेद विरोधी लोग मिलें, जो उसके अनुकूल हों।" कलि ने नलराजधानी में (स्वयं का सहायक समझने वाले) जैन को ढूंढते हुए भी अजिन (ब्रह्मचारियों का मृगचर्म) ही पाया एवं दिगम्बर बौद्ध क्षपण को पाना चाहा लेकिन उसे मिला अक्षपण (दीक्षा से थोड़ा भी च्युत न होने वाला राजा या जुए पर दाँव में लगाया धन)।

अपश्यज्जिनमन्विष्यन्नजिनं ब्रह्मचारिणाम्।
क्षपणार्थी सदीक्षस्य स चाक्षपणमैक्षत॥[54]

नैषध महाकाव्य में अमावस्या तिथि में किया जाने वाला दर्शयज्ञ, अग्निष्टोम, पौर्णमास तथा सोमयज्ञ का भी वर्णन प्राप्त होता है। महाकवि श्रीहर्ष ने इन यज्ञों के माहात्म्य का प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि–इन यज्ञों से तो उस अधार्मिक कलि को कष्ट हुआ ही किन्तु पौर्णमास यज्ञ को देखकर वह मूर्च्छित हो गया एवं सोमयज्ञ को तो

वह साक्षात् यम ही समझ लिया–

दर्शस्य दर्शनात् कष्टमग्निष्टोमस्य चानशे।
जुघूर्णे पौर्णमासेक्षी सौमं सोऽमन्यतान्तकम्।।[55]

सर्वस्वार यज्ञ के विधान में धर्म-शास्त्रों में ऐसा प्रतिपादन मिलता है कि इस यज्ञ में राजा अपना सर्वस्व त्यागकर संन्यास ग्रहण करता है एवं इस यज्ञ में यज्ञकर्त्ता पशुमंत्रों द्वारा संस्कार कर आत्मघात करके यज्ञ में अर्पित हो सकता है।

नैषध महाकाव्य में भी इस यज्ञ विधान का समुचित प्रयोग दिखता है, नलराजधानी में आत्मघाती जनों को देख कलि आनन्दित होता है किन्तु उसे जब यह ज्ञात होता है कि 'सर्वस्वार' नामक यज्ञ में ऐसा विधान उचित है तो वह अत्यन्त व्यथित होता है–

आननन्द निरीक्ष्यायं पुरे तत्रात्मघातिनम्।
सर्वस्वारस्य यज्वानमेनं दृष्ट्वाऽथ विव्यथे।।[56]

कलि विवरण प्रसंग में ही महाकवि ने अवशमेध यज्ञ का वर्णन किया है इस यज्ञ में धर्मशास्त्रों का मानना है कि यज्ञकर्त्ता की स्त्री के वरांग से यज्ञ के घोड़े के जननेन्द्रिय को संस्पृष्ट कराया जाता है। नलनगरी में तद्वद् दृश्य देख उस शास्त्रमर्म का अज्ञ पण्डित कलि ने वेद प्रतिपादक ईश्वर को भाँड़ कहा–

यज्वभार्याश्वमेधाश्वलिङ्गालिङ्गिवराङ्गताम् ।
दृष्ट्वाऽऽचष्ट स कर्त्तारं श्रुतेर्भण्डमपण्डितः।।[57]

इस प्रकार वेदों में वर्णित या पुनः धर्मशास्त्रों द्वारा उपदिष्ट विविध यज्ञों का सप्रयोजन प्रसंगानुकूल वर्णन धर्मशास्त्रविद् महाकवि श्रीहर्ष ने अपने नैषधीयचरित महाकाव्य में वर्णित किया है, जिनके यहाँ उपरोक्त उदाहरण दर्शाये गये हैं।

संस्कार

धार्मिक दृष्टि से हमारे ऋषियों ने संस्कार की अत्यधिक महत्ता प्रतिपादित की है। संस्कार शब्द की व्युत्पत्ति (सम् + कृ + घञ्)[58] की गई है।

संस्कार का समुद्देश्य मन की अन्तः एवं बाह्य शुचिता से है। हमारे स्मृतिकारों ने मानव जीवन के लिए संस्कार का अत्यन्त माहात्म्य प्रदर्शित किया है। मानव शरीर अपने संस्कारों के निर्वाह से ही अन्तिम लक्ष्य मोक्ष की सिद्धि कर सकता है। संस्कारों की संख्या के विषय में स्मृतिकारों में मतभेद है किन्तु सर्वसम्मत से प्रचलित षोडश संस्कारों का निर्वाह करना आवश्यक माना जाता है। आधुनिक समय में इन षोडश संस्कारों में भी गर्भाधान, उपनयन, विवाह एवं अन्त्येष्टि संस्कार ही कुछ धार्मिक प्रवृत्ति के लोग कर पाते हैं।

महाकवि श्रीहर्ष ने भी मुख्यतया या प्रकारान्तर से धर्मसम्मत संस्कारों की चर्चा अपने महाकाव्य में की है। यद्यपि कवि का वर्ण्य विषय नायक-नायिका का परस्पर मिलन एवं संभोग है तथापि काव्य में धार्मिक स्थलों पर यत्र-तत्र संस्कारों की भी चर्चा हुयी है। कवि ने देव कलि संवाद प्रसंग में कहा है कि जब कलि नल के राज्य में पहुँचता है तो वहाँ उसे प्रत्येक अवस्था के व्यक्तियों में संस्कार दिखलायी देता है-

दोषं नलस्य जिज्ञासुर्बभ्राज द्वापरः क्षितौ।
नादोषः कोऽपि लोकस्य मुखेऽस्तीति दुराशया।।[59]

महाकवि श्रीहर्ष संस्कारों के प्रसंग में उपनयन संस्कार का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि कलि को ब्रह्मचारियों की मौञ्जी मेखला बन्धनरज्जु जैसे प्रतीत हुआ-

मौञ्जीभृतो धृताषाढानाशशङ्के स वर्णिनः।
रज्ज्वाऽमी बद्धुमायान्ति हन्तुं दण्डेन मां ततः।।[60]

महाकवि श्रीहर्ष के समय में संस्कार प्रक्रिया उत्कर्ष में थी। सभी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जन नियमतः अपने पितरों का तर्पण करते थे, जिसमें काले तिलका उपयोग होता था-

पितॄणां तर्पणे वर्णैः कीर्णाद् वेश्मनि वेश्मनि।
कालादिव तिलात् कालाद् दूरमत्रसदत्र सः।।[61]

सभी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जन नियमतः अपने पितरों का तर्पण करते थे, जिसमें काले तिल का उपयोग होता था। वह काला तिल कलि को काल रूप लगा और डर कर दूर ही रहा।

प्रातःकाल सन्ध्यावन्दन में गायत्री मन्त्र का जाप हमारे संस्कारों में महत्त्व स्थान रखता है। जिसका वर्णन करते हुए कवि लिखता है-

आवाहितां द्विजैस्तत्र गायत्रीमर्कमण्डलात्।
स सन्निदधतीं पश्यन् दृष्टनष्टोऽभवद्धिया।।[62]

प्रत्येक धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति प्रातः सन्ध्यावादन में गायत्री का जाप करता है जिससे जन्म-जन्मान्तर का पुण्यार्जन प्राप्त होता है।

इस प्रकार महाकवि श्रीहर्ष ने प्राचीन स्मृतिकारों के वर्णित संस्कारों का यथेष्ट प्रसंगानुकूल वर्णन किया है।

स्नान

यह तथ्य सर्वविदित है कि धार्मिक क्रियाओं के पूर्व शरीर की शुचिता परमावश्यक होती है जिसे शास्त्रनिर्दिष्ट पञ्च विध स्नान से पूर्ण माना गया है–

आग्नेयं वारुणं ब्राह्मं वायव्यं दिव्यमेव च।
आग्नेयं भस्मना स्नानं वारुण्यमवगाहनम्।।[63]

प्रायः सभी शास्त्रकारों ने शरीर के आन्तरिक एवं बाह्य शुचिता के लिए स्नान के अनेक प्रकारों की चर्चा अपने शास्त्रों में की है। शास्त्रों में वर्णित इन स्नान प्रकारों की चर्चा महाकवि श्रीहर्ष ने भी अपने काव्य में किया है।

महाकाव्य के नायक राजा नल के ब्राह्म स्नान का वर्णन करता हुआ कवि लिखता है–

भूभृतं पृथुतपोधनमाप्तस्तं शुचिः स्नपयति स्म पुरोधाः।
सन्दधज्जलधरस्खलदोधास्तीर्थवारिलहरीरुपरिष्टात्।।[64]

अर्थात् सुन्दरी तुंगस्तना रमणियों द्वारा स्नान कराये जाने के अनन्तर सदाचारी और विश्वसनीय राजपुरोहित ने महाराज (नल) का तीर्थ जलों से अभिषेक किया।

गोशाला की धूलि से किये गये स्नान को वायव्य स्नान की संज्ञा दी गई है। इस स्नान का भी कवि ने कलि वर्णन प्रसंग में उद्धरण दिया है–'मलिनता और अपवित्रता में कलि का वास होता है।' कलि को जहाँ अपवित्रता की संभावना लगी तुरन्त प्रसन्न हो गया किन्तु जब वह संभावना नष्ट हो गई तो प्रसन्नता कष्ट में परिणत हो गई। अर्थात् जब वह अपवित्र व्यक्ति वायव्य स्नान या गोधूलिस्नान कर लिया तो उस अपवित्र कलि का कोई साथी न रहा–

दृष्ट्वा जनं रजोजुष्टं तुष्टिं प्राप्नोज्झटित्यसौ।
तं पश्यन् पावनस्नानावस्थं दुःस्थस्ततोऽभवत्।।[65]

तीर्थस्नान के वर्णन में कवि कहता है कि तीर्थस्नान संचितपुण्यकर्मों के कारण ही हो पाता है। इस प्रकार शास्त्रनिर्दिष्ट स्नान प्रकारों से भी कवि ने अपने काव्य को अछूता नहीं रखा है।

विशेषतीर्थैरिव जह्नुनन्दना गुणैरिवाजानिकरागभूमिका।
जगाम भाग्यैरिव नीतिरुज्ज्वलैर्विभूषणैस्तत्सुषमामहार्घताम्।।[66]

हमारे धार्मिक कृत्यों में संगम स्नान का बहुत बड़ा माहात्म्य है महाराज नल के स्नान वर्णन में कवि कहता है–गंगा का शुभ्रजल जब महाराज नल के कालिंदी की तरंगों-सदृश कुटिल और उसके जल-तम कृष्ण कुंतलों से संमिश्र होगा तो गंगा-यमुना-संगम की शोभा हो जायेगी। यहाँ गंगा-जल द्वारा उस शोभानुभव की कामना की गई है कि गंगा-जल लाया गया है महाराज नल अब स्नान करें।

उपहृतमधिगङ्गमम्बु कम्बुच्छवि तव वाञ्छति केशभङ्गिसङ्गात्।
अनुभवितुमनन्तरं तरङ्गासमशमनस्वसृमिश्रभावशोभाम्।।[67]

इसके बाद महाकवि ने राजा नल के स्नान में प्रयुक्त प्रसाधनों का वर्णन किया है– "महाराज नल के स्नान के पूर्व कर्पूर, अगुरु, चन्दन, कस्तूरी, शीतल चीनी के मिश्रण का उनके शरीर में उन्नत पयोधर स्त्रियों ने लेप किया तदनन्तर स्नान कराया"–

यक्षकर्दममृदून्मृदिताङ्गं प्राक्कुरङ्गमदमीलितमौलिम्।
गन्धवार्भिरनुबन्धितभृङ्गैरङ्गना सिषिचुरुच्चकुचास्तम्।।[68]

स्नान के धार्मिक नियमों में यह बतलाया गया है कि तर्जनी और कनिष्ठा अंगुलियों के मध्य में कुश-धारण कर स्नान का अधिक माहात्म्य है। महाकवि श्रीहर्ष ने भी राजा नल के स्नानोपक्रम में कुछ ऐसा ही साहित्यिक वर्णन किया है–

प्रेयसीकुचवियोगहविर्भुग्जन्मधूमवितनीरिव बिभ्रत्।
स्नायिनः करसरोरुहयुग्मं तस्य गर्भधृतदर्भमराजत्।।[69]

इस प्रकार महाकवि श्रीहर्ष ने स्नान का शास्त्र सम्मत धार्मिक उपस्थापन किया है।

वृक्षपूजन

भारतीय आर्य संस्कृति में कुछ वृक्ष भी पूजनीय माने गये हैं। वृक्षों का पूजन अनादिकाल से चला आ रहा है। श्रीमद्भगवद्गीता में स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है-

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारद।[70]

अर्थात् मैं (श्रीकृष्ण) वृक्षों में पीपल का वृक्ष हूँ। आज भी स्त्रियाँ सोमी अमावस्या को पीपलवृक्ष की पूजा करती हैं।

महाकवि श्रीहर्ष ने भी वृक्षों के माहात्म्य की चर्चा की है। कवि वृक्षों के पूजन में साहित्यिक वर्णन करते हुये लिखता है कि वृक्षों से फूल-फल की प्राप्ति के निमित्त निरन्तर उसमें धूपादि खाद एवं उपजाऊ पानी दिये जाते थे।

अमुष्मिन्नारामे सततनिपतद्दोहदतया
प्रसूनैरुन्निद्रैरनिशममृतांशुप्रतिभटे।
असौ बद्धालम्बः कलिरजनि कादम्बविहग-
च्छदच्छायाभ्यङ्गोचितरुचितया लाञ्छनमृगः।।[71]

निरन्तर (वृक्षों से फूल-फल प्राप्ति के निमित्त) दोहद (धूपादि खाद और उपजाऊ पानी) दिये जाने के कारण खिले फूलों से सदा अमृत किरणमाली (चन्द्र) के प्रतिद्वन्द्वी इस उपवन में (ही) आश्रय लिए यह कलि श्याम पंख वाले कलहंसों के पंखो

की क्रान्ति के स्पर्श मात्र से अतिशय श्याम कान्ति हो जाने के कारण चन्द्र का कृष्णमृगचिह्न हो गया।

वृक्ष हमें आश्रय भी देते हैं। धूप से निवृत्ति के लिये हम वृक्षों का आश्रय लेते हैं एवं वृक्षों के पत्ते तथा उनके फूलों और फलों का भी धार्मिक प्रयोग होता है। इस सन्दर्भ में कवि लिखता है-

दलपुष्पफलैर्देवद्विजपूजाभिसन्धिना।
स नलेनार्जितान् प्राप तत्र नाक्रमितुं द्रुमान्।।[72]

अर्थात् नल द्वारा देव-ब्राह्मण पूजा के निमित्त लगाये गये वृक्षों के फल-फूलों पर वह कलि आश्रय नहीं ले पाया।

कुछ वृक्ष ऐसे भी थे जिनकी धार्मिकता की दृष्टि से कोई प्रतिष्ठा नहीं थी। उनके सम्बन्ध में कवि लिखता है कि कलि को आश्चर्य हुआ कि दमयन्ती ने बड़े-बड़े बाँसों के समान महान् कुल जात राजाओं का वरण न कर के तृण घास के समान राजा नल का वरण कैसे कर लिया।

महावंशाननादृत्य महान्तमभिलाषुका।
स्वीचकार कथङ्कारमहो! सा तरलं नलम्।।[73]

यहाँ वृक्षों की धार्मिकता एवं त्याज्यता के सन्दर्भ मे यह ध्येय है कि राजा नल धर्म पुरुष हैं जिनकी तुलना घास, तृण से की गयी हैं। आज भी हमारे धार्मिक संस्कारों पूजन पाठादि में दूर्वाङ्कुर का अत्यधिक महत्त्व माना जाता है। पूजन में प्रारम्भिक देव भगवान् गणेश को तो दूर्वाङ्कुर ही प्रिय है।

राजा नल के उपवन में सभी प्रकार के वृक्ष थे। कुछ वृक्ष ऐसे भी थे जिनकी धर्म क्रिया में कोई उपयुक्तता नहीं थी किन्तु उपवन की शोभा के लिए राजा नल ने उन्हें लगाया था। ऐसा वृक्ष नल के उपवन मे मात्र एक ही था जिसे धर्मविहीन समझ कलि उसका आश्रय लिया था-

अथ सर्वोद्भिदासत्ति पूरणाय स रोपितम्।
बिभीतकं ददर्शैकं कुटं धर्मेऽप्यकर्मठम्।।[74]

इस प्रकार कवि ने अपने काव्य में वृक्षों की चर्चा की है जिनमें से कुछ वृक्षों की धार्मिकता भी प्रकट की है।

व्रत

आर्यधर्म में व्रत उपवास की अत्यधिक प्रतिष्ठा है। हमारे ऋषि-महर्षियों तथा स्मृतिकारों ने व्रत-उपवास के माहात्म्य पर गम्भीर विश्लेषण किया है। व्रत शब्द पुं.

नपु. लिङ्ग दोनों में प्रयुक्त हुआ है। व्रत शब्द की व्युत्पत्ति (व्रज् + घ, जस्य तः) कोषकारों ने की है। जिसका सामान्य अर्थ होता है-भक्ति या साधना का धार्मिक कृत्य, प्रतिज्ञात का पालन, प्रतिज्ञा आदि। व्रत हमारे धार्मिक उत्सवों पर्वों पर किया जाने वाला एक सर्वोत्तम संस्कार है।

इन्हीं मान्यताओं के आधार पर महाकवि श्रीहर्ष ने भी अपने महाकाव्य नैषधीयचरित में कुछ जगहों पर व्रत की चर्चा की है। कवि ने महर्षियों की तपस्या को भी व्रत की प्रतिष्ठा दी है।

स्थंडिलशायी व्रत की चर्चा में कवि कहता है कि बिना आस्तरण धरती पर सोने वाले साधकों को देख कर तो कलि निषध देश छोड़कर भाग जाना चाहता था-

मण्डलत्यागमेवैच्छद् वीक्ष्य स्थण्डिलशायिनः।
पवित्रालोकनादेष पवित्रासमविन्दत।।[75]

मौन व्रत की चर्चा करते हुवे महाकवि श्रीहर्ष लिखते हैं कि- कलि मौनव्रत में स्थित व्रतियों को देखकर यह अनुमान लगाया कि ये मानो मुझे गाली दे रहे हैं और वन्दनीय गुरुजनों के सम्मुख वन्दनार्थ विनत होते जनों द्वारा अपने सिर पर पादा-घात होता समझ रहा था-

मौनेन व्रतनिष्ठानां स्वाक्रोशं मन्यते स्म सः।
वन्द्यबन्दारुभिर्जज्ञो स्वशिरश्च पदाहतम्।।[76]

व्रत प्रसंग में आगे महाकवि श्रीहर्ष चर्चा करते हैं कि पापी कलि को पुण्यशाली जनों से भय लगता था। वह व्रतार्थ स्नान किये व्यक्ति को अपना वध करने वाला समझ रहा था और तपःक्लेशसहिष्णु व्यक्ति को अपने लिए साक्षात् यमराज मान रहा था-

स्नातकं घातुकं जज्ञे जज्ञौ दान्तं कृतान्तवत्।
वाचं यमस्य दृष्ट्यैव यमस्येव बिभाय सः।।[77]

इस प्रकार यद्यपि नैषध शृङ्गार प्रधान महाकाव्य है, जिसमें नायक नायिका का शृङ्गार वर्णन ही मुख्य ध्येय माना गया है तथापि तपस्या, साधना एवं पवित्रता के रूप में व्रत का समुल्लेख महाकवि श्रीहर्ष ने काव्य में प्रसंगवश दर्शाया है।

दान

धर्मशास्त्रज्ञों ने दान का बहुविध गुणगान किया है। स्मृतियों में दान की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए ऋषियों ने कहा है कि– वह दान जो पात्र के पास जाकर दिया जाए उसका अनन्त फल होता है तथा जो दान बुलाकर दिया जाता है उसका हजारगुना फल मिलता है और याचना करने पर जो दान दिया जाता है उसका पहले वाले दान से भी आधा फल मिलता है–

गत्वा यद्दीयते दानं तदनन्तफलं स्मृतम्।
सहस्त्रगुणमाहूय याचिते तु तदर्धकम्।।[78]

स्मृति अनुगामी राजा नल ने भी अयाचित दान में ही अपना श्रेयस् माना है–

मीयतां कथमभीप्सितमेषां दीयतां द्रुतमयाचितमेव।
तं धिगस्तु कलयन्नपि वाञ्छामर्थिवागवसरं सहते यः।।[79]

राजा नल के दान की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए कवि ने उन्हें कल्पवृक्ष से भी अधिक दानशीलता के रूप में वर्णित किया है–

अयं दरिद्रो भवितेति वैधसीं लिपिं ललाटेऽर्थिजनस्य जाग्रतीम्।
मृषा न चक्रेऽल्पितकल्पपादपः प्रणीय दारिद्र्यदरिद्रतां नलः।।[80]

कल्पवृक्ष याचक को देता है, किन्तु नल अयाचकों को भी देता था, इस प्रकार उसके सम्मुख कल्पवृक्ष भी छोटा पड़ गया, इस प्रकार दरिद्रों के भाल पर विधाता की लिखी लिपि को प्रभूतदान के द्वारा राजा नल ने झूठा कर दिया।

राजा नल की दान देने की सीमा अपरिमित थी जिसे पूरा न करने के कारण उन्होंने इसे अपने अयश में परिगणित किया–

विभज्य मेरुर्न यदर्थिसात्कृतो न सिन्धुरुत्सर्गजलव्ययैर्मरुः।
अमानि तत्तेन निजायशोयुगं द्विफालबद्धाश्चिकुराः शिरःस्थितम्।।[81]

सुमेरुगिरि को खण्ड-खण्ड करके याचकों को न देने और दानार्थ जल उलीचते उलीचते समुद्र को मरुस्थल न बना देने के कारण राजा नल इसे अपना अयश मानकर दोनों ओर करके केश संवारता था। अयश का रंगकाला होता है, अतएव यहाँ बालों को अयश के रूप में कहा गया है।

नैषधीयचरित महाकाव्य के अनेक स्थलों पर दान की धर्मशास्त्रानुदिष्ट विशद् विवेचना हुई है, यथा–नल वर्णन में उनके अन्तर्वर्ति के विवरण में, नल-दमयन्ती विवाह में,. राजा भीम द्वारा पदाञ्जलि प्रणेता बन्दीजनों के वर्णन में, तथा नल द्वारा की गई पूजार्चना के प्रसंग में दान का माहात्म्य पूर्णरूपेण द्रष्टव्य है।

यहाँ राजा नल द्वारा अर्चनानन्तर ब्राह्मणों को दिये गये दान का उदाहरण द्रष्टव्य है–

विप्रपाणिषु भृशं वसुवर्षी पात्रसात्कृतपितृक्रतुकव्यः।
श्रेयसा हरिहरौ परिपूज्य प्रह्व एष शरणं प्रविवेश।।[82]

नैषधकार ने अर्चनानन्तर दिये गए दान के साथ-साथ पितृ श्राद्ध आदि कर्मों में भी दानीय को दान देने की चर्चा की है। ब्राह्मणों के हाथों में प्रचुर धन वर्षा करके

सत्पात्रों को पितरों के श्राद्ध से संबद्ध अन्नादि के उत्कृष्ट वस्तुओं अथवा स्नान, पूजा, दानादि में राजा नल सतत लीन रहता था।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने दान के (सात्त्विक, राजस एवं तामस) तीन प्रकार बतलाये हैं–

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु।।[83]

इन तीन प्रकार के दानों में सात्त्विक दान की ही श्रेष्ठता बतलायी गई है–

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्।।[84]

स्मृतियों में भी यथेष्ट व्यक्ति को दान देने का विधान बतलाया गया है–

दातॄन्प्रतिगृहीतॄंश्च कुरुते फलभागिनः।
विदुषे दक्षिणां दत्त्वा विधिवत्प्रेत्य चेह च।।[85]

विधिपूर्वक हव्य-काव्य को विद्वान् के लिए देने वाला व्यक्ति इस लोक में भी दाता (दान देने वाला) और प्रतिग्रहीता (दान लेने वाला) दोनों को फलभागी बनाता है।

महाराज भीम ने दयमन्ती के स्वयम्बर में आये नल के बारातियों को रत्नाभूषणादि देकर सम्मानित किया–

अमीषु तथ्यानृतरत्नजातयोर्विदर्भराट् चारुनितान्तचारुणोः।
स्वयं गृहाणैकमिहेत्युदीर्य तद्द्वयं ददौ शेषजिघृक्षवे हसन्।।[86]

विदर्भ नरेश भीम ने बारातियों को भेंट देने के निमित्त दो थालों में रत्नावलि सजा दी, एक तो सुन्दर थे और एक अत्यधिक सुन्दर थे। राजा ने बारातियों से जो उन्हें अच्छा प्रतीत हो वही लेने को कहा। जो अत्यधिक सुन्दर था बाराती ने वही लिया।

इतना हि नहीं अपने जामाता राजा नल को भी कन्यादान के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के राजकीय खजानों को भी दान स्वरूप में दिया–

सखा यदस्मै किल भीमसंज्ञया स यक्षसख्याधिगतं ददौ भवः।
ददौ तदेष श्वसुरः सुरोचितं नलाय चिन्तामणिदाम कामदम्।।[87]

भीमराज को शिव से चिन्तामणि माला प्राप्त हुई थी, जिसे शिव ने कुबेर से मैत्री होने के कारण पाया था। शिव का एक नाम भीम है 'व्योम केशो भवो भीमः' समान नाम के मैत्री के कारण 'भीम शिव' राजा भीम के मित्र हुए अतः इन्होंने अपने मित्र को दे दिया जिसे भीम ने अपने जामाता नल को दे दिया।

महाराज भीम ने देवी-देवताओं से वरदान स्वरूप प्राप्त उन अमूल्य वस्तुओं को भी अपने जामाता राजा नल को दान में दे दिया–

मयेन भीमं भगवन्तमर्चता नृपेऽपि पूजा प्रभुनाम्नि या कृता।
अदत्त भीमेऽपि स नैषधाय तां हरिन्मणेर्भोजनभाजनं महत्।।[88]

महर्षि दुर्वासा के शापवश स्वर्ग से भ्रष्ट हो धरती पर आये सदा मदधार बहाने वाले मेघवर्ण हाथी (ऐरावत) के तुल्य उत्तम गजराज को राजा भीम ने यौतक में दिया–

विरोध्य दुर्वाससमस्खलद्दिवः स्रजं त्यजन्नस्य किमिन्द्रसिन्धुरः?।
अदत्त तस्मै स मदच्छलात् सदा यमभ्रमातङ्गतयेव वर्षुकम्।।[89]

कवि ने यहाँ असीमित दान की परिकल्पना की है राजा भीम ने कन्यादान के साथ-साथ गज-तुरग-रथादिवाहन, सोने से परिपूर्ण स्वर्ण कुम्भ, मतवाले गजराज आदि असंख्य रत्नों का पुंज अपने जामाता नल को समर्पित किया–

न तेन वाहेषु विवाहदक्षिणीकृतेषु सङ्ख्यानुभवेऽभवत् क्षमः।
न शातकुम्भेषु न मत्तकुम्भिषु प्रयत्नवान् कोऽपि न रत्नराशिषु।।[90]

इस प्रकार महाकवि श्रीहर्ष ने दान के माहात्म्य का अत्यन्त शास्त्र सम्मत मनोरम वर्णन किया है।

दान की महत्ता का ऐसा वर्णन प्रायः संस्कृत साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ ही होगा क्योंकि महाकवि श्रीहर्ष ने तो त्रिदेवों की याचना पर नल का स्वात्म शरीर ही दान में देने का वर्णन कर दिया है–

अर्थिनामहृषिताखिललोमा स्वं नृपः स्फुटकदम्बकदम्बम्।
अर्चनार्थमिव तच्चरणानां स प्रणामकरणादुपनिन्ये।।[91]

राजा नल ऐसा सोचता है कि मैं तो पात्र-कुपात्र कैसा भी याचक हो अपना प्राण तक दान स्वरूप देने में तत्पर रहता हूँ अब जब ये इन्द्रादि देवगण ही स्वयं मेरे पास याचना कर रहे हैं तो इन्हें प्राण से भी प्रिय कौन-सा वस्तु दें, जिससे मेरा मन प्रसन्न हो? ऐसा विचार करते हुए दमयन्ती को दान में देने की परिकल्पना करते हैं जो (दमयन्ती) तुलना में पृथ्वी से सोलह गुना अधिक है किन्तु पुनः उनके मन में ऐसा विचार आता है कि यद्यपि यह (दमयन्ती) मेरे मन में विराजमान है किन्तु अभी पूर्ण रूप से मेरी हुई नहीं अतः इसका दान मेरे अधिकार में नहीं है–

जीवितावधि वनीपकमात्रैर्याच्यमानमखिलैः सुलभं यत्।
अर्थिने परिवृढाय सुराणां किं वितीर्य परितुष्यतु चेतः।।

भीमजा च हृदि मे परमास्ते जीवितादपि धनादपि गुर्वी।
न स्वमेव मम सार्हति यस्याः षोडशीमपि कलां किल नोर्वी।।[92]

अपने अधिकार में आने वाले वस्तु का दान करना ही दान है। ऐसा ही कुछ उदाहरण महाभारत में भी देखा जाता है। इस प्रकार महाकवि श्रीहर्ष ने काव्य में दान का समुचित वर्णन किया है।

विवाह

धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित षोडश संस्कारों में विवाह संस्कार एक अत्यधिक महत्वपूर्ण संस्कार है। जिससे मनुष्य चतुर्विध आश्रमों में श्रेष्ठ गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता है। विवाह शब्द वि उपसर्ग पूर्वक 'वह' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है।

संहिताओं एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में विवाह शब्द का उल्लेख मिलता है। लेकिन इसके लिए 'उद्वाह' (कन्या को उसके पितृगृह से उच्चता के साथ ले जाना), परिणय या परिणयन (अग्नि की प्रदक्षिणा करना) उपयम (सन्निकट ले जाना और अपना बना लेना) एवं पाणिग्रहण (कन्या का हाथ पकड़ना शब्द भी पर्याय रूप में धर्मशास्त्रों में मिलते हैं। जबकि ये शब्द विवाह संस्कार के केवल एक-एक अंगभूत तत्त्व हैं।

ऋग्वेद के मन्त्रों से यह ज्ञात होता है कि विवाह का मुख्य प्रयोजन गृहस्थ होकर धार्मिक कृत्यों को सम्पन्न करना एवं संतानोत्पत्ति करना था (ऋग्वेद 10/85/36, 5/3/2, 4/28/3, 3/53/4)। वेद पश्चात्कालीन-साहित्य ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषदादि भी विवाह प्रयोजन सन्दर्भ में पूर्णरूपेण वेदानुगामी दिखते हैं।

स्मृतियाँ विवाह प्रयोजन के सन्दर्भ में वेद-प्रतिपादित प्रयोजन के अतिरिक्त भी कुछ आवश्यक निर्देश प्रस्तुत करती हैं। स्मृतियों में विवाह के तीन उद्देश्य बतलाये गये है–

(1) धार्मिक कार्य सम्पादन (2) सन्तति रक्षण (3) रति या प्रणयानन्द।

संहिता एवं ब्राह्मण साहित्यों के अनुसार अविवाहित पुरुष को अपूर्ण मांना गया है, क्योंकि पत्नियों को अर्द्धाङ्गिनी की संज्ञा दी गई है–

आम्नाये स्मृतितन्त्रे च लोकाचारे च सूरिभिः।
शरीरार्धं स्मृता भार्या पुण्यापुण्यफले समा।।[93]
तस्मात् पुरुषो जाया वित्त्वा कृत्स्नतरमिवात्मानं मन्यते।[94]

महाभारत में भी ऐसा वर्णन मिलता है कि जब तक पुरुष का विवाह संस्कार नहीं हो जाता तब तक एकाकी अर्थात् बिना पत्नी वह अपूर्ण ही रहता है–

अर्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा।
भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यति।।[95]
न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते।[96]

आठ प्रकार के विवाह की गणना हमारे स्मृतियों धर्मशास्त्रादि ग्रन्थों में प्राप्त होती है। ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, गान्धर्व, आसुर, राक्षस एवं पैशाच।

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽसुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः।।[97]

याज्ञवल्क्यस्मृति में भी आठ प्रकार के विवाह एवं उनके फल का यथाक्रम उल्लेख प्राप्त होता है–ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस एवं पैशाच।[98]

वशिष्ठधर्मसूत्र[99] एवं आपस्तम्भधर्मसूत्र[100] में षड्विध विवाह की गणना मिलती है। इन दो धर्मसूत्रों में प्राजापत्य एवं पैशाच विवाह की मान्यता नहीं दी गई है–

मानव गृहसूत्र में केवल ब्राह्म एवं शौल्क (आसुर) विवाह का ही विवरण मिलता है। महाकवि श्रीहर्ष ने नैषधीयचरित महाकाव्य में विवाह संस्कार को धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित सिद्धान्तों का स्वरूप प्रदान करने में अपने अगाध पाण्डित्य, धर्मतत्त्वज्ञ का परिचय दिया है। षोडश संस्कारों में विवाह संस्कार नित्य होने वाले सांसारिक कार्यों की भूमिका या नियमबद्ध समाज का एक अंग है। जिससे सामाजिक व्यक्ति सद्मार्ग का आश्रय कर स्त्री पुरुषों के सम्बन्धों को वैधता प्रदान करता है। अब यहाँ प्रसंग प्राप्त विवाह के अष्ट-प्रकारों में से नैषधकार द्वारा वर्णित गान्धर्व एवं प्राजापत्य विवाह विधियों का विवेचन किया जा रहा है।

राजा नल के चंगुल से उन्मुक्त हंस प्रत्युपकार में दमयन्ती के अद्वितीय सौन्दर्य, कुल, गोत्र आदि का राजा के समक्ष भव्य वर्णन प्रस्तुत करता है–

भुवनत्रयसुभ्रुवामसौ दमयन्ती कमनीयतामदम्।
उदियाय यतस्तनुश्रिया दमयन्तीति ततोऽभिधां दधौ।।[101]

हंसमुखेन त्रैलोक्य सुन्दरी दमयन्ती के रूप गुण सौन्दर्यादि का सविस्तार वर्णन सुन राजा नल भी दमयन्ती से प्रणय करने लगते हैं–

अनेन भैमीं घटयिष्यतस्तथा विधेरबन्ध्येच्छतया व्यलासि तत्।
अभेदि तत्तादृगनङ्गमार्गणैर्यदस्य पौष्पैरपि धैर्यकञ्चुकम्।।[102]

तो उधर विदर्भ देश की राजकुमारी दमयन्ती भी बन्दीजनों सखियों के साथ-साथ निषध देश के गुणनिधि राजा नल के रूप, सौन्दर्य पराक्रमादि गुणों को हंस मुख से सुनकर मन ही मन राजा नल को पतित्वेन स्वीकार कर लेती है–

नृपेऽनुरूपे निजरूपसम्पदां दिदेश तस्मिन्बहुशः श्रुतिं गते।
विशिष्य सा भीमनरेन्द्रनन्दना मनोभवाज्ञैकवशंवदं मनः॥[103]

अब यहाँ नायक-नायिका की परस्पराशक्ति को दर्शाने के बाद अवस्था प्राप्त दमयन्ती का राजा भीम द्वारा स्वयंवर आयोजन का वर्णन प्रस्तुत है–

व्यतरदथ पिताशिषं सुतायै नतशिरसे मुहुरुन्नमय्य मौलिम्।
दयितमभिमतं स्वयंवरे त्वं गुणमयमाप्नुहि वासरैः कियद्भिः॥[104]

राजा भीम ने पुत्री दमयन्ती को स्वयंवर आयोजन का सन्देश सुनाया। दिग्दिगन्तर में व्याप्त राजाओं को स्वयंवर सभा में आवाहन का सन्देश गया। स्वयंवर में विभिन्न देशों के राजा एवं देवलोक के भी कुछ अधिपति आये। जहाँ निषधदेश के राजकुमार नल ने भीमनन्दना दमयन्ती के गले में वरमाला डाल कर स्वयंवर का आयोजन सम्पन्न किया। इसके पश्चात् महाकवि श्रीहर्ष ने धर्मशास्त्र प्रतिपादित विवाह के सभी नियमों का नल दमयन्ती परिणयावसर पर समुचित प्रयोग किया है।

महाकवि श्रीहर्ष द्वारा प्रतिपादित विवाह विधियों के आधार पर नल दमयन्ती विवाह को प्राजापत्य विवाह की संज्ञा दी जा सकती है। प्राजापत्य विवाह का लक्षण जैसा कि मनु ने प्रतिपादित किया है–

सहोभौ चरतां धर्ममिति वाचानुभाष्य च।
कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः॥[105]

यहाँ धर्मशास्त्रतत्त्वज्ञों के मध्य यह जिज्ञासा उत्पन्न होगी कि जब विदर्भ देश की राजकुमारी दमयन्ती एवं निषध के राजा नल दोनों क्षत्रियकुल के थे तथा क्षत्रियों के लिए गान्धर्व विवाह एवं राक्षस विवाह की मान्यता धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित है।

पृथक्पृथग्वा मिश्रौ वा विवाहौ पूर्वचोदितौ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव धर्म्यौ क्षत्रस्य तौ स्मृतौ॥[106]

तो यहाँ कवि ने प्राजापत्य विधि का विवरण क्यों दिया?

इस सन्दर्भ की पुष्टि में यहाँ दो मत देना आवश्यक है, प्रथम तो यह कि महाकवि के काव्य का आधार महाभारतीय आदिपर्व है। जहाँ महाभारत कर्त्ता ने गान्धर्व विवाह के पश्चात् भी विवाह विधियों का निर्देश दिया है।[107]

महाकवि कालिदास ने भी अज-इन्दुमती के स्वयंवर का वर्णन कर विवाह विधियों (मधुपर्क, होम, अग्निप्रदक्षिणा, पाणिग्रहण) का वर्णन किया है। सम्भव है श्रीहर्ष भी महाकवियों की परिपाटी में ऐसा वर्णन किये हों, किन्तु श्रीहर्ष तो स्वयं धर्मशास्त्र का अगाध पाण्डित्य रखने वाले शास्त्रवेत्ता हैं। चूँकि धर्मशास्त्रों का अपना एक

विशिष्ट सिद्धान्त है, जिसे कवि ने भलीभाँति अवगत कर ऐसा वर्णन किया है। नल-दमयन्ती के प्राजापत्य विवाह होने में जो दूसरा प्रमुख कारण है वह है धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित विवाह सन्दर्भ में आचार-व्यवहार का भेद।

गान्धर्व विवाह प्रायः कन्या-वर के परस्पर उद्रेक के साथ-साथ कामासक्तवश किया जाता है इसमें कन्या पिता के किसी आदेश का अनुगमन नहीं करती यहाँ तक कि कन्या पिता को उसके प्रमुख अधिकार (कन्यादान) से भी वंचित कर देती है।

स्त्रीकामा वै गन्धर्वाः।[108]

किन्तु प्राजापत्य विवाह-विधि में पिता कन्या एवं वर दोनों को साथ-साथ धार्मिक कृत्यों को करने का आशीर्वाद देता हुआ वर को मधुपर्क का प्राशन कराकर कन्यादान देता है।[109]

सम्भवतः यही कारण रहा होगा जिससे महाकवि श्रीहर्ष ने अपने काव्य के नायक-नायिका का विवाह वर्णन प्राजापत्य विधि से उपस्थापित करने का सफल प्रयास किया है।

धर्मशास्त्रों में विवाह संस्कार के निमित्त अनेक विधियों का विधान किया गया है।

जैसे–वरवधू का गुण मिलाप, कन्या के कुल, गृह, समाज आदि के निरीक्षण हेतु लोगों का जाना, विवाह तिथि का निश्चय, मण्डपविधान, वर का वधूगृहगमन, कन्याग्राम के सन्निकट बारात के पहुँचने पर बारातियों का सम्मान, कन्या के घर कन्या स्नान के लिये नया वस्त्र देना, उसकी कटिभाग में धागा व कुश की रस्सी बाँधना, वरवधू को उबटन या सुगन्धित द्रव्य लगाना, वधू के हाथ में कँगन बाँधना, वर-वधू का मण्डप में जाना, कंन्यादान, वर-वधू के वस्त्र के कोने में हल्दी-पान-सुपारी अक्षत आदि बाँधना, लाजा-होम, अग्नि प्रदक्षिणा, अश्मारोहण, सप्तपदी, इत्यादि।

विवांह के सन्दर्भ में दी इन विधियों का महाकवि श्रीहर्ष ने भी अपने महाकाव्य नैषध में यथेष्ट वर्णन किया है। महाकाव्य में धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित विवाह-विधियों का क्रमिक स्वरूप नहीं मिलता है, इसका एक प्रमुख कारण हो सकता है देश, काल, रीति का वातावरण। आजकल तो एक ही प्रान्त में अलग-अलग विधि-विधानों में मतभेद दिखलाई देता है। यही कारण हो सकता है नैषध में वर्णित विवाह विधियों का धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित विवाह-विधियों के क्रमिक अनुशीलन में।

यहाँ नैषध के प्रसिद्ध टीकाकार का भी ऐसा कुछ मत दृष्टिगत होता है–

अत्र क्वचित् क्वचित् विधिक्रमभंगो देशाचाराच्छाखाभेदात्।
कुलाचारविशेषाद्वा बोद्धव्यः। न पुनः श्रीहर्षकवेरज्ञानलेशोऽपि॥[110]

विवाह-विधियों में सर्वप्रथम कन्यावर-गुण मिलाप विधि का विधान है। यह विधि आज भी धर्मज्ञाताओं धर्मधारियों के यहाँ सभी प्रान्तों में दिखलायी देती है। यद्यपि आजकल वर-कन्या का गुण मिलाप जन्म-कुण्डली में ग्रह-मैत्री के आधार पर किया जाता है, किन्तु उसमें भी कन्या-पक्ष वर के कुल, स्वभाव वैभव एवं सद्‌गुण का निरीक्षण अवश्य करता है उसी प्रकार वर-पक्ष भी कन्या के शील, सौन्दर्य, शिक्षा, सद्‌गृहिणी आदि का लक्षण आलोडित करता है इस प्रकार एक-दूसरे के परस्पर गुण मैत्री के भावों को परख कर ही नवयुगल वर-वधू विवाह-बन्धन में बँधते हैं।

इस विधि का उल्लेख महाकवि श्रीहर्ष ने किया है। नल के गुणों का वर्णन उन्होंने विद्वान्, धार्मिक, योद्धा, महादानी, सौन्दर्य-प्रतिमूर्ति, दयालु, चक्रवर्ती राजा एवं सम्पूर्ण गुणों के खान रूप में उपस्थापित किया है–

अधीतिबोधाचरणप्रचारणैर्दशाश्चतस्त्रः प्रणयन्नुपाधिभिः।
चतुदर्शत्वं कृतवान्कुतः स्वयं न वेद्मि विद्यासु चतुर्दशस्वयम्।।[111]

इस प्रकार नैषध के प्रथमं सर्ग के आदि में 40श्लोकों में राजा के उपरोक्त गुणों का वर्णन है। वहीं कवि ने विदर्भनरेश की कन्या दमयन्ती को भी त्रैलोक्यसुन्दरी, सुशिक्षित, उत्तम कुल समुत्पन्ना एवं समस्त नारीगुणों के खान रूप में चित्रित किया है।[112] विभिन्न धार्मिकग्रन्थों में भी वर के अनेक गुणों का वर्णन मिलता है।

श्रेष्ठवर के 8 (आठ) उत्तमगुण जाति, विद्या, युवावस्था, बल, स्वास्थ्य अन्य लोगों का आलम्बन, अभिकांक्षा एवं धन बतलाये गये हैं।

कुछ धार्मिकग्रन्थ जैसे मनुस्मृति, आश्वलायनगृह्यसूत्र आदि में तो कुल को ही सर्वोपरि स्थान दिया गया है–

उत्तमैरुत्तमैर्नित्यं सम्बन्धानाचरेत्सह।
निनीषुः कुलमुत्कर्षमधमानधमांस्त्यजेत्।।[113]

श्रेष्ठकन्या के लक्षण में भारद्वाज का कहना है कि विवाह के समय में कन्या का धन, सौन्दर्य, बुद्धि एवं कुल देखना चाहिए तथा बुद्धि एवं कुल को प्रधानता देनी चाहिए।[114]

स्मृतियों, धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित वर-कन्या के सभी गुण धर्म नैषध के नायक-नायिका नल-दमयन्ती में महाकवि श्रीहर्ष ने दर्शाया है। वर-कन्या के कुछ दोष भी धर्मशास्त्रों में गिनाये गये हैं, जिनका लेश मात्र भी नल-दमयन्ती में दिखलायी नहीं देता।

वर-कन्या के गुण मिलाप के पश्चात् क्रम आता है वर प्रेषण का अर्थात् कन्या को देखने या बातचीत करने का, जिसे आजकल बोलचाल की भाषा में 'अगुवा' समुचित स्वरूप देता है। महाकवि श्रीहर्ष ने भी इस प्रसंग का आश्रय लिया है जहाँ

उन्होंने इस विधि को सम्पन्न कराने हेतु किसी सामान्य व्यक्ति को न चुनकर-एक दिव्य पक्षी नीरक्षीर विवेकी धर्मशास्त्रतत्त्वज्ञ हंस का चयन किया है। हंस ने दमयन्ती का चयन राजा नल के लिए सर्वथा उपयुक्त समझा उसका सम्यक् निरीक्षण किया उससे बातें की दोनों को सर्वथा विवाह योग्य माना–

निशाशशाङ्कं शिवया गिरीशं श्रिया हरिं योजयतः प्रतीतः।

विधेरपि स्वारसिकः प्रयासः परस्परं योग्यसमागमाय।।[115]

हंस यहाँ दो तथ्य प्रकट करना चाहता है। एक तो यह कि भाग्यविधाता ब्रह्मा सदा अनुरूप गुण-शील वालों का संयोग कराने में सफल दिखलायी देते हैं। जैसे–यहाँ तीन युगल, उदाहरण स्वरूप द्रष्टव्य हैं- निशा-शशाङ्क, शिवा-गिरीश और श्री-हरि। दूसरा तथ्य यह है कि दमयन्ती भी नल के योग्य ही है, सो योग्य से योग्य का संयोग उचित प्रतीत होगा।

महाकवि श्रीहर्ष ने नल-दमयन्ती के स्वयंवर वर्णन के साथ-साथ उनके सविध विवाह का भी उल्लेख किया है। अब प्रसंगवश अवसर है नल के बारात ले जाने से पूर्व वर के गृह मांगलिक कर्मों का जिसका जीवन्त उदहारण महाकवि श्रीहर्ष ने दर्शाया है।

राजा नल बारातियों के साथ विदर्भेश्वर की नगरी में जाने से पूर्व श्रृङ्गार रचना के प्रवीण अपने सेवकों के द्वारा तिलकादि से रञ्जित सुशोभित हुए।

तथैव तत्कालमथानुजीविभिः प्रसाधनासञ्जनशिल्पपारगैः।

निजस्य पाणिग्रहणक्षणोचिता कृता नलस्यापि विभोर्विभूषणा।।[116]

वररूप में सुसज्जित राजा नल ने दधि, अक्षत, पूर्ण कलश आदि मांगलिक वस्तुओं का अभिनन्दन एवं अपने कुलगुरु गौतम की विधिवत पूजा करके विदर्भ के लिए प्रस्थान किया।

वृतः प्रतस्थे स रथैरथो रथी गृहान्विदर्भाधिपतेर्धराधिपः।

पुरोधसं गौतममात्मवित्तमं द्विधा पुरस्कृत्य गृहीतमङ्गलः।।[117]

बारातियों संग पहुँचे वर नल का शास्त्रप्रतिपादित रीति से भीमपुत्र दम ने भव्यता से स्वागत किया–

निवेश्य बन्धूनित इत्युदीरितं दमेन गत्वाऽर्द्धपथे कृतार्हणम्।

विनीतमाद्वारत एव पद्‌गतां गतं तमैक्षिष्ट मुदा विदर्भराट्।।[118]

बारातियों के स्वागत के पश्चात् कन्या का पिता अपने योग्य जामाता को गले लगाता है जिसका अतीव मनोरम वर्णन महाकवि श्रीहर्ष ने किया है–

अथायमुत्त्थाय विसार्य दोर्युगं मुदा प्रतीयेष तमात्मजन्मनः।
सुरस्त्रवन्त्या इव पात्रमागतं धृताभितोवीचिगतिः सरित्पतिः।।[119]

धर्मशास्त्रों के अनुसार सर्वप्रथम द्वार पर आये वर को कन्या का पिता आसन पर बैठाता है। उसके बाद उसका पाद-प्रक्षालन कर उसके बाये हाथ में मन्त्रोच्चारण के साथ मधुपर्क देता है। आज भी इस विधि का विधान दिखलायी देता है किन्तु क्रम में अवश्य कुछ विभिन्नता दिखलायी देती हैं।

नैषधकार ने भी इस विधि का अत्यन्त सरस वर्णन सहृदयों के सम्मुख प्रस्तुत किया है–'राजा नल ने मधुपर्क का जो आस्वादन किया, इसका अनुमान दर्शकों ने यह लगाया मानो राजा नल भविष्य में जो राजकुमारी दमयन्ती का अधरपान करेंगे उसी का मंगलोपक्रम आज मधुमर्क पान से कर रहे हैं'–

असिस्वदद्यन्मधुपर्कमर्पितं स तद्व्यधात्तर्कमुदर्कदर्शिनाम्।
यदेषपास्यन्मधुभीमजाऽधरं मिषेण पुण्याहविधिं तदाऽकरोत्।।[120]

मधुपर्क पान के विषय में विभिन्न धर्मशास्त्रों का अपना-अपना विशिष्ट मत है। याज्ञवल्क्यस्मृति के अनुसार ऋत्विक, आचार्य, वर, राजा, स्नातक एवं जो अत्यधिक प्रिय हो ऐसे छः व्यक्तियों को मधुपर्क पान कराने का विधान मिलता है–

प्रतिसंवत्सरं त्वर्ध्याः स्नातकाचार्यपार्थिवाः।
प्रियो विवाह्यश्च तथा यज्ञं प्रत्यृत्विजः पुनः।।[121]

किन्तु आजकल धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित इन नियमों का एक देश में प्रयोग अर्थात् केवल विवाह-विधि में होने लगा है, लेकिन यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जिन पेय पदार्थों का मिश्रण होता था आज लगभग पचास साठ साल पूर्व तक तत्समान पेय पदार्थ अर्थात् चीनी या गुड़ में दधि मिश्रित कर घर पर आये अतिथियों को पान कराया जाता था।

धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित विवाह विधि के क्रम में मधुपर्क के बाद क्रम आता है कन्या के स्नान का। स्नान के बाद आभूषणादि से सुसज्जित कन्या मण्डप में आती है।[122]

महाकवि श्रीहर्ष ने इस विधि का आलंकारिक वर्णन नैषध में किया है– "दमयन्ती को अनेक सौभाग्यवती स्त्रियों ने सर्वतोभ्रद (अलपना) आदि निर्मित वेदी पर स्वर्णकलशों से मंगलगान करते हुए स्नान करवाया, उस कोमलाङ्गी के शरीर को अत्यन्त कोमलवस्त्रों से पोंछा, विभिन्नाभूषणों से सुसज्जित किया उसके बाद उसके बालों में सुगन्धित पुष्प, आँखों में अंजन, होठों एवं पैरों में आलक्तक, मस्तक पर एक स्वर्णालंकार (माँगटीका), कण्ठ में मोतियों की माला, हाथ में कंगन आदि विभिन्नाभूषणों से सुसज्जित कर रूपदर्शनार्थ दमयन्ती को दर्पण दिखलाकर उसे मण्डप में ले गयीं–

उदस्य कुम्भीरथ शातकुम्भजाश्चतुष्कचारूत्विषि वेदिकोदरे।
यथाकुलाचारमथावनीन्द्रजां पुरन्ध्रिवर्गः स्नपयाम्बभूव ताम्।।
विजित्य दास्यादिव वारिहारितामवापितास्तत्कुचयोर्द्वयेन ताः।
शिखामवाक्षुः सहकारशाखिनस्त्रपाभरम्लानिमिवानतैर्मुखैः।।[123]

इस प्रकार महाकवि ने शास्त्र सम्मत विवाह प्रकरणों में गान्धर्व विवाह की रीति से काव्य के नायक-नायिका का परस्पर युगलत्व सिद्ध किया है।

इस प्रकार श्रीहर्ष प्रतिपादित धार्मिक-सन्दर्भों का प्रतिपादन हुआ है, जिन्हें इस धार्मिक संदर्भ नामक अध्याय के माध्यम से दर्शाने का प्रयास किया गया।

संदर्भ सूची

1. तैत्तिरीयोपनिषद्, 1/11/1।
2. आतस्तम्ब. 2/8/20/22-23।
3. मनुस्मृति, 2/8।
4. मनुस्मृति, 8/15।
5. महाभारत, कर्णपर्व, 69/58।
6. मीमांसा सूत्र, 1/1/2।
7. मनुस्मृति, 2/6।
8. तैत्तरीयआरण्यक, 10/63।
9. कुमारसम्भवम्, 5/38।
10. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 5/4।
11. मालवि. 1/6।
12. रामायण, 3/3/15।
13. नैषध., 1/7।
14. नैषध., 17/141।
15. नैषध., 17/142-145।
16. नैषध., 17/147।
17. मनुस्मृति, 4/53।
18. नैषध., 1/97।
19. नैषध., 6/13।
20. मिताक्षरा आचाराध्याय, पृ.86 में उद्धृत हारितमत।
21. याज्ञवल्क्य आचाराध्याय, 77।
22. नैषध., 4/79।
23. नैषध., 17/100।

24. मनुस्मृति, 2/71।
25. नैषध., 17/180।
26. मनुस्मृति, 2/221।
27. नैषध., 17/194
28. नैषध., 14/8
29. नैषध., 21/21
30. नैषध., 21/22
31. नैषध., 21/27।
32. नैषध., 21/96।
33. नैषध., 21/15।
34. नैषध., 21/16।
35. नैषध., 17/158।
36. नैषध., 17/211।
37. नैषध., 17/143।
38. नैषध., 14/2।
39. नैषध., 20/10।
40. नैषध., 20/14।
41. नैषध., 14/3।
42. नैषध., 21/10।
43. भरद्वाजस्मृति., अध्याय 18, श्लोक 6।
44. नैषध., 21/12।
45. नैषध., 21/13।
46. नैषध., 21/18।
47. नैषध., 21/19।
48. नैषध., 17/163।
49. नैषध., 17/173।
50. शु.यजु.वा.सं.19/32।
51. श.ब्रा. 12/8/1/2।
52. नैषध., 17/179।
53. नैषध., 17/183।
54. नैषध., 17/186।
55. नैषध., 17/193।
56. नैषध., 17/199।
57. नैषध., 17/201।
58. वामन शिवरामआप्टे संस्कृत हिन्दी कोश, पृ.1051।

59. नैषध., 17/216।
60. नैषध., 17/177।
61. नैषध., 17/166।
62. नैषध., 17/171।
63. वृहद दैवज्ञरंजन, पृ.100।
64. नैषध., 21/8।
65. नैषध., 17/196।
66. नैषध., 15/54।
67. नैषध., 20/158।
68. नैषध., 21/7।
69. नैषध., 21/9।
70. गीता, 10/26।
71. नैषध., 17/217।
72. नैषध., 17/207।
73. नैषध., 17/126।
74. नैषध., 17/208।
75. नैषध., 17/185।
76. नैषध., 17/175।
77. नैषध., 17/181।
78. मिताक्षरा आचाराध्याय 203।
79. नैषध., 5/83।
80. नैषध., 1/15।
81. नैषध., 1/16
82. नैषध., 21/105
83. गीता 17/7
84. गीता 17/20
85. मनुस्मृति 3/143।
86. नैषध., 16/110।
87. नैषध., 16/16।
88. नैषध., 16/29।
89. नैषध., 16/31।
90. नैषध., 16/34।
91. नैषध., 5/79।
92. नैषध., 5/81-82।
93. बृहस्पति अपरार्क द्वारा उद्धृत, पृ.740

94. ऐतरेय ब्राह्मण 1/2/5
95. आदिपर्व 74/40
96. शान्तिपर्व, 144/66
97. मनुस्मृति 3/21।
98. याज्ञवल्क्य स्मृ. 1/58-61।
99. वशिष्ठ धर्म सूत्र 1/28-29।
100. आपस्तम्भधर्मसूत्र 2/5/11/17-20।
101. नैषधीयचरित, 2/18।
102. नैषधीयचरित, 1/46।
103. नैषधीयचरित, 1/33।
104. नैषधीयचरित, 4/119।
105. मनुस्मृति, 3/30।
106. मनुस्मृति, 3/26।
107. महा.आदिपर्व, 195/7।
108. तैत्तरीय सं.6/1/6/5।
109. आपस्तम्बधर्मसूत्र 2/6/12/16-18।
110. नैषधीयचरित, 16/35 व्याख्या भाग।
111. नैषधीयचरित, 1/4।
112. नैषधीयचरित, 1/34-44।
113. मनुस्मृति, 4/244।
114. भारद्वाजगृह्यसूत्र 1/11।
115. नैषधीयचरित, 3/48।
116. नैषधीयचरित, 15/57।
117. नैषधीयचरित, 16/1।
118. नैषधीयचरित, 16/10।
119. नैषध., 16/11।
120. नैषध., 16/13।
121. याज्ञवल्क्य, 1/110।
122. आपस्तम्ब सू.4/8, पारस्कर गृ.सू. 1/4।
123. नैषध., 15/19 एवं 20।

✦

तृतीय अध्याय

नैषधीयचरित महाकाव्य में सांस्कृतिक-सन्दर्भ

ईश्वर के इस निर्मिति रूप संसार में अपने विशिष्ट गुण 'संस्कार' के कारण अन्य प्राणियों की भांति मनुष्य सर्वथा भिन्न है। सम् उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय लगाकर सिद्ध किया हुआ 'संस्कृति' शब्द मानवीय कृतित्त्व के आदर्श रूप का उपस्थापन है। संस्कृति का तात्पर्य केवल बाह्य प्रदर्शन ही नहीं है अपितु आभ्यन्तर विचार प्रभाव, कल्पनाएँ तथा भावनाएँ ये सब संस्कृति के अंग हैं। समाज तथा संस्कृति का एक दूसरे से सीधा तथा अविच्छेद्य सम्बन्ध है। हम न तो समाज विहीन संस्कृति की कल्पना कर सकते हैं और नहीं संस्कृति विहीन समाज की। हम ऐसा भी कह सकते हैं कि ये दोनों 'अयुतसिद्ध' पदार्थ हैं। संस्कृति का सम्बन्ध समाज से है अतः इसे वैयक्तिक आधार पर भी नहीं स्वीकारा जा सकता। जैसे कोई भी व्यक्ति 'समाज' पदवी नहीं पा सकता ठीक वैसे ही संस्कृति न तो किसी व्यक्ति का 'अर्जन' है और नहीं किसी व्यक्ति की सम्पत्ति। संस्कृति एक सामाजिक धरोहर है जिसके 'अर्जन' में, जिसके निर्माण में तथा जिसके निर्धारण में समाज का प्रत्येक प्राणी यथाशक्ति अपना योगदान करता है। हाँ कुछ प्रभावोत्पादक व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो अपनी कर्मनिष्ठा से संस्कृति पर प्रभाव छोड़ जाते हैं तथा कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो विद्यमान संस्कृति के स्वरूप पर प्रहार करते हैं। अपने इन्हीं प्रयासों के आधार पर लोग संस्कृति को आगे बढ़ाते हैं। संस्कृति ही मानवों को अन्य प्राणियों से पृथक् पहचान कराती है। यदि मानव के पास संस्कृति न हो तो वह भी जीव-जन्तुओं के समान ही आचरण करे। किन्तु वह अपनी-अपनी संस्कृति के माध्यम से अपनी अलग छवि बनाये हुए है। संस्कृति का उद्भव मानव के बीच से ही होता है। इस संस्कृति को बनाने एवं इसे संयोजित रखने का मुख्य दायित्व भी मानव का ही है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि संस्कृति मानव की एक अमूल्य धरोहर है जो एक व्यक्ति को अन्य समूहों से एवं एक समाज को भिन्न समाज से सर्वथा पृथक् पहचान कराती है।

संस्कृति आचार-व्यवहार से लेकर विचारों भावनाओं तथा कल्पनाओं पर निर्भर होती है, अतएव इन्हीं आधारों पर अनेक संस्कृतियों की कल्पना की गई है। जैसे–भारतीय संस्कृति, यूनानी संस्कृति, मिस्त्री संस्कृति आदि। इन प्रत्येक संस्कृतियों का विभाजन विचारों

एवं संस्कारों के आधार पर ही किया गया है। सामान्यतया संस्कृति पीढ़ी-दर-पीढ़ी अवाप्त व्यवहारों की वह समग्रता है जिसमें किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व पलता, सुधरता एवं सामान्य से नित्य अग्रसर होता है और पशुस्तर से ऊँचा उठता है।

मानवशास्त्री श्रीटायलर के अनुसार "संस्कृति वह जटिल समग्रता है, जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, आचार, कानून, प्रथा तथा आदतों का समावेश रहता है जिन्हें मनुष्य समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है"।[1]

अवश्य ही ये सारी संस्कृतियाँ लोककृत दिखलायी पड़ती हैं। प्रत्येक सुसंस्कृत देश में जब-जब संस्कृतियों का उत्त्थान या विकास हुआ उनमें महान् व्यक्तियों द्वारा किया गया प्रयास ही प्रमुख कारण रहा इनका प्रयास मानव मात्र के लिए रहा।

हमारे पूर्वजों, ऋषि-महर्षियों ने इस संसार के प्रत्येक प्राणी के सुखमय जीवनयापनार्थ पुरुषार्थ चतुष्टय की परिकल्पना की है। प्रत्येक मनुष्य अपना-अपना कर्तव्य करते हुए अन्तिम पुरुषार्थ मोक्ष की सिद्धि कर पाता है।

पुरुषार्थचतुष्टय

भारतीय संस्कृति पुरुषार्थ युक्त मानवों की परिकल्पना करती है। पुरुषार्थ विहीन संस्कृति में स्थायित्व नहीं होता नहीं उससे आत्मकल्याण की कामना ही की जा सकती है। इसलिए सभी पुरातन संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति की अपनी एक विशिष्ट छवि है। सभी संस्कृतियों में भारतीय सनातन संस्कृति ही सर्वश्रेष्ठ एवं महत्त्वपूर्ण है। इस संस्कृति में स्थावर जंगम मात्र का प्राणियों के सुख की कामना लक्षित है–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्।।

सर्वविधसुख सर्वविधकल्याण की ऐसी कामना केवल कल्पनामात्र से प्रतिफलित नहीं होती। अपितु भारतीय संस्कृति में प्रतिपादित पुरुषार्थ के वागडोर पर खरी उतरती है। हमारी श्रुतियों, स्मृतियों में भी सर्वत्र कर्म की ही प्रधानता प्रदर्शित की गई है। हमारी संस्कृति सतत उपलब्धि में ही विश्वास रखती है इसलिए हमारी भारतीया संस्कृति बार-बार पुरुषार्थ का स्मरण कराती है। पुरुषार्थ के माध्यम से ही आत्मा पर विजय प्राप्त कर उसे परमात्मतत्त्व में विस्थापित किया जा सकता है। इस पुरुषार्थ को महर्षियों ने चार भागों में विभक्त किया है–

1. धर्म
2. अर्थ
3. काम
4. मोक्ष।

इन पुरुषार्थ चतुष्टय में धर्म एवं मोक्ष की हमारी संस्कृति में अत्यधिक ख्याति है। किन्तु अन्तिम पुरुषार्थ मोक्ष की सिद्धि में अर्थ एवं काम को भी नगण्य नहीं किया जा सकता। चारों पुरुषार्थो की सिद्धि अनिवार्य है। इन चारों संस्कृतियों का क्रम भी अत्यन्त मार्मिक है। हमारे ऋषि महर्षियों का उदात्त चिन्तन ही इसका प्रमुख कारण है। क्योंकि हम धर्मरूपी अर्थ से अपनी इच्छाओं की पूर्ति करते हुवे ही मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। यदि इन पुरुषार्थों का क्रम भंग हुआ तो मोक्ष की सिद्धि जो परम ध्येय है कथमपि सम्भव नहीं हो सकती।

अब यहाँ प्रसंगवशात् चारों पुरुषार्थों का यथाशास्त्र प्रतिपादित उल्लेख किया जाना अनिवार्य हैं अतः सर्वप्रथम इनमें सर्वप्रमुख धर्म का स्वरूप दिखलाया जा रहा है।

धर्म

भारतीय वाङ्मय में सर्वत्र धर्म की महिमा वर्णित है। धर्म की प्रतिष्ठा में ही हमारे सारे शास्त्र वेद, उपनिषद्, दर्शनशास्त्र, पुराण व्याकरणादि जगत् में अत्यन्त उपकारक हैं।

धर्म शब्द की निष्पत्ति "धृञ् धारणे" धातु से मन् प्रत्यय लगाने पर होती है इसकी व्युत्पत्ति आचार्यों ने तीन प्रकार से की है–

1. **ध्रियते लोकोऽनेनेति धर्मः।**
   अर्थात् जिससे लोक धारण किया जाए वह धर्म है।
2. **धरति धारयति वा लोकमिति धर्मः।**
   अर्थात् जो लोक को धारण करे वह धर्म है।
3. **ध्रियते यः स धर्मः।**
   अर्थात् जो धारण किया जाए वह धर्म है।

मनु ने धर्म के दश लक्षण बताये हैं।[2] इसके अतिरिक्त भी विभिन्न शास्त्रों में धर्म के लक्षण प्राप्त होते हैं। जैसे- **"चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः।"**[3] **"यतोऽभ्युदयनिः-श्रेयससिद्धिः स धर्मः।"**[4] इत्यादि।

शास्त्रों के गहनान्वेषण से तथा भारतीय संस्कृति की समीक्षा करने के पश्चात् धर्म के विषय में जो तत्त्व अवाप्त होता है वह यह है कि प्राचीनकाल से ही हमारे ऋषि महर्षियों ने जो शाश्वत आराधना की, अहर्निश चिन्तन किया उसी का प्रतिफल यह धर्म है।

मानव के अन्तर्निहित पशुता को दूर कर उसमें सद्गुणों का सन्धान कर उसे परमात्मतत्त्व में मिलाने की विशिष्ट योजना का नाम ही धर्म है। इसे ही ऋषियों ने धर्म की संज्ञा दी है। इसकी रक्षा से राजतन्त्र एवं प्रजातन्त्र में नित्य वृद्धि होती है। धर्म की

प्रतिष्ठा के लिए ही इस संसार में विविध मतावलम्बी साधु महापुरुष अवतरित होते हैं- गीता में भी भगवान् श्रीकृष्ण कहते है-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्त्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।[5]

धर्म से ही इस संसार में प्रत्येक प्राणी ऐहिक एवं पारलौकिक सुख का अनुभव करता है। चतुर्विध पुरुषार्थों में धर्म प्रथम है इस धर्म से उपार्जित अर्थ एवं काम ही पुरुषार्थ के अन्तिम लक्ष्य की सिद्धि में सहायक होता है अर्थात् अन्तिम पुरुषार्थ मोक्ष की सिद्धि में मूलकारण धर्म ही है। धर्म विरुद्ध अर्थ का संग्रह एवं धर्मविरुद्ध काम का उपभोग सदैव कलह एवं दुःख का साधक होता है।

अतः सदैव धर्म का अनुष्ठान करना चाहिए।

अर्थ

पुरुषार्थचतुष्टय में धर्म के बाद अर्थ की परिगणना की गयी है। यहाँ अर्थ का अभिप्राय उन सभी साध्यसाधनभूत पदार्थो से है जिन विविध पदार्थों को मानव धर्म से प्राप्त कर उसका सुखपुर्वक भोग करता है। अर्थ रूपी पुरुषार्थ से ही सर्वविध सुख की सम्प्राप्ति तथा शास्त्रों में वर्णित धर्म का सरलता से परिपालन सम्भव है।

महाभारत में अर्थ के सम्बन्ध में कहा गया है-

धनमाहुः परं धर्मं धने सर्वं प्रतिष्ठितम्।
जीवन्ति धनिनो लोके मृता ये त्वधना नराः।।[6]

अर्थ, विहीन पुरुषों का जीवन ग्रीष्मकालीन नदी के समान निरर्थक एवं सूखा हो जाता है।

अर्थेन हि विहीनस्य पुरुषस्याल्पमेधसः।
विच्छिद्यन्ते क्रियाः सर्वा ग्रीष्मे कुसरितो यथा।।[7]

भारतीय आर्ष मनीषा में अर्थ के स्वामी भगवान् विष्णु को माना गया है जो क्षीरसागर में लक्ष्मी के साथ वास करते हैं। जिनकी सेवा लक्ष्मी करती हैं क्योंकि विष्णु स्वयमेव पुरुषार्थ हैं और पुरुषार्थ सम्पन्न व्यक्ति को ही लक्ष्मी प्राप्त होती हैं। भारतीय आर्ष मनीषा के ये दो वाक्य पुरुषार्थी व्यक्ति की अर्थसम्पन्नता के द्योतक हैं-

''उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः ''तथा'' साहसे श्रीर्वसति।''

शेषनाग जैसे विकराल सर्प पर शयन का साहस जिसमें हो तथा विषयुक्त प्राणघाती समस्या के सम्मुख जो शान्तभाव से रहे एवं अपने कर्तव्यपथ पर आगे बढ़

सके वही विष्णु है और वही परमपुरुषार्थी भी है तथा उद्यमी भी है। वैसे ही व्यक्ति का वरण लक्ष्मी भी करती है।

हमारे शास्त्रों में लक्ष्मी को श्री, समृद्धि, ऐश्वर्य, धन, सम्पदा आदि के प्रतीक रूप में स्वीकार क्रिया गया है। भारतीय संस्कृति में अर्थ की अत्यन्त महत्ता प्रदर्शित है। ऋग्वेद में अविनाशी, स्थिर ऐश्वर्य की कल्पना की गई है–

न नो रास्व सहस्त्रवत् लोकवत् पुष्टियद् वसु।
घुमत् अग्ने सुवीर्य्यं वर्षिष्ठम् अनुपेक्षितम्।।[8]

हितोपदेश में अर्थ की प्रधानता में लिखा है–

अर्थागमो नित्यमरोगिता च प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च।[9]

अर्थात् अर्थ के बिना कुछ भी संभव नहीं है अर्थवान् व्यक्ति ही आरोग्य पूर्वक सकुशल जीवन-यापन कर सकता है अर्थ के अभाव में पत्नी भी प्रियवादिनी नहीं हो सकती। इस भौतिक संसार में जो भी अर्थ, सम्पत्ति तथा ऐश्वर्य है वह मानवमात्र के लिए सुखदायक एवं शान्तिदायक हो यही आदर्श हमारे भारतीय संस्कृति में वर्णित है।

मानवजीवन में अर्थ का अत्यन्त वैशिष्ट्य है परन्तु वह अर्थ धर्मोपार्जित होना अनिवार्य है। इसीलिए इस अर्थ रूपी पुरुषार्थ की गणना पुरुषार्थ चतुष्ट्य में द्वितीय स्थान पर किया गया है।

काम

हमारे भारतीय संस्कृति में काम को ब्रह्मा की विभूति रूप में वर्णित किया गया है। इस अव्यक्त ब्रह्म ने जब स्वयं को नानाविधरूप में प्रकटित करना चाहा तो सबसे पहले उसने काम की सर्जना की।

छान्दोग्योपनिषद् में भी काम के सन्दर्भ में एक कथा मिलती है। मानवजीवन में जितनी उपादेयता धर्म एवं अर्थ की है उतनी ही काम की भी है। इसके बिना सामान्य व्यक्ति का जीवन निर्वाह सम्भव नहीं है। कुछ लोगों ने काम को इच्छाकामना पदार्थ माना है। इस कामना विशेष के तीन रूप होते हैं–सात्त्विक, राजस, तामस।

सात्त्विक काम का सम्बन्ध धर्म से है राजस का इन्द्रियसुख एवं भौतिकसुख से है तथा तामस का साहचर्य निद्रा, आलस्य तन्द्रा आदि से है।

आचार्य मनु ने कहा है– धर्मार्थ काम से सन्तुष्ट मानव ही मोक्ष प्राप्त करता है। धर्मशास्त्र के समान ही काम के विस्तृत स्वरूप को प्रकट करने के लिए महर्षि वात्स्यायन ने कामशास्त्र की रचना की है।

गान्धर्वादि भी इसके सम्पोषक माने जाते हैं। भारतीय संस्कृति के पोषण एवं सम्बर्धन में इस तृतीय पुरुषार्थ का भी विशेष योगदान है। अर्थ के समान ही मोक्ष की सिद्धि में काम भी साधनभूत पुरुषार्थ है। महाभारत के अनुसार आनन्द वृत्ति ही काम है किन्तु धर्म विरुद्ध काम की सर्वत्र ही निन्दा की गयी है।

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः।।[10]

महाभारत में स्पष्टरूप से यह निर्दिष्ट है कि धर्म ही अर्थ का कारण है एवं काम अर्थ का फल है किन्तु इन तीनों में कारणभूत है संकल्प जो विषयात्मक है।

धर्ममूलः सदैवार्थः कामोऽर्थफलमुच्यते।
सङ्कल्पमूलास्ते सर्वे सङ्कल्पो विषयात्मकः।।[11]

अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने भी उसी काम की उपासना या सेवन बतलाया है जो धर्माविरुद्ध हो जिससे धर्म की कोई क्षति न हो। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने भी काम के अधमकोटि से नाश का उपदेश दिया है–

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात् सञ्जायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते।।
क्रोधाद् भवति संमोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।।[12]

अतः काम सर्वदा धर्मयुक्त होना चाहिए। धर्म विरुद्ध काम का सेवन सर्वदा निन्दनीय होता है। स्मृतिकार मनु ने लिखा है कि धर्मार्थकाम समष्टिभाव से सुख के साधन होते हैं–

धर्मार्थावुच्यते श्रेयः कामार्थौ धर्म एव च।
अर्थ एवेह वा श्रेयस्त्रिवर्ग इति तु स्थितिः।।[13]

यदि काम न होता तो सृष्टि की परिकल्पना ही असंभव थी और जब सृष्टि ना होती तो धर्मार्थ का औचित्य ही क्या होता अतः सृष्टि के मूल में काम ही मूल कारण है।

विधाता की इच्छा के विपरीत यह काम नहीं है। अपितु यह काम ही उस सर्वनियन्ता के अधीन है। इस काम का विधाता ने भी विधि पूर्वक ही अनुष्ठान किया है। जब तक काम पर व्यक्ति का अनुशासन होता है तब तक वह काम समृद्धिकारक, सृजनकारक होता है किन्तु जब वह अनुशासन विहीन हो जाता है तो भौतिकसुखसाधन

मात्र में तामसिकवासना से पर्यवसित होकर उन्मादभाव से प्रकटित होने लगता है। ऐसा ही कामनाभूत काम समस्त दुःखों में मूलभूत कारण होता है।

अतः काम सदैव अनुशासित हो ऐसा सफल प्रयास करना चाहिए।

मोक्ष

पुरुषार्थ का जो परमाभीष्ट लक्ष्य है वह है अन्तिम और श्रेयस्कर चतुर्थ पुरुषार्थ मोक्ष। जिसे प्राप्त करने के लिए प्रत्येक मानव अहर्निश प्रयत्नशील रहता है। जैसे धर्म को प्रतिपादित करने के लिए हमारी स्मृतियाँ हैं अर्थ के प्रतिपादक कौटिल्यादि नीति शास्त्र हैं तथा काम के प्रतिपादक गान्धर्ववात्स्यायनादिकामशास्त्र हैं उसी प्रकार मोक्ष प्राप्ति के उपायों को बतलाने के लिए हमारे ऋषि महर्षियों ने सांख्य-न्याय-वैशेषिक-मीमांसा-वेदान्त-वेदानुयायिक शास्त्रों की रचना की है। जिनकी सम्यक् उपासना से प्राप्त ज्ञान द्वारा हमें मोक्ष की गति मिलती है। इन सभी शास्त्रों में परमपुरुषार्थ के रूप में मोक्ष को ही अभिलक्षित किया गया है। सभी धर्मादि पुरुषार्थों का पर्यवसान मोक्ष में ही होता है।

मोक्ष के विषय में प्रायः सभी दार्शनिकों का मत-वैविध्य दिखलायी पड़ता है, कुछ लोग मरण को मोक्ष मानते हैं कुछ लोग सच्चिदानन्द की प्राप्ति को ही मोक्ष मानते हैं, तो कुछ लोग संसाररूपी बन्धनजाल से मुक्त होना ही मोक्ष मानते हैं। इस प्रकार मोक्ष की अनेक व्याख्यायें दार्शनिकों ने की हैं। मोक्ष की व्याख्या में षडास्तिकदर्शनशास्त्र ही प्रमाण हैं जिनमें मोक्ष की प्राप्ति कैसे की जा सकती है इसके उपाय विभिन्न माध्यमों से प्रदर्शित हैं।

नैषध में पुरुषार्थ

भारतीय संस्कृति के संपोषक पुरुषार्थचतुष्टय की जो कल्पना हमारे ऋषि-महर्षियों, स्मृतिकारों ने की है उससे कविवृन्द भी अछूता नहीं है। 12वीं शताब्दी के महाकवि श्रीहर्ष ने नैषधीयचरित महाकाव्य में धर्म, एवं काम में समन्वय की बात कही है क्योंकि इन्होंने अर्थ एवं काम पर धर्म की प्रभुता दर्शायी है। काव्य के इक्कीसवें सर्ग में नल द्वारा किये गये धार्मिक कृत्यों-स्नान, ध्यान, पूजा, तर्पण एवं देवार्चना तथा काव्य की नायिका दमयन्ती द्वारा चौदहवें सर्ग में देवार्चना से महाकवि श्रीहर्ष द्वारा इस तथ्य की पुष्टि दिखलाई देती है। कथा के पंचनली प्रसंग में नायिका दमयन्ती नायक राजा नल की प्राप्ति हेतु देवताओं की पूजार्चना करती है साथ ही उन्हें कल्पवृक्ष की उपमा से सुसज्जित करती है-

अथाधिगन्तुं निषधेश्वरं सा प्रसादनामाद्रियतामराणाम्।
यतः सुराणां सुरभिर्नृणान्तु सा वेधसाऽसृज्यत कामधेनुः।।
प्रदक्षिणप्रक्रमणालवालविलेपधूपावरणाम्बुसेवैः।
इष्टञ्च मृष्टञ्च फलं सुवाना देवा हि कल्पद्रुमकाननं नः।।[14]

उनका मानना है कि जिस प्रकार कल्पवृक्ष अभीष्ट संसाधनों को उपलब्ध कराने में समर्थ हैं वैसे ही देवगण ही मुझे मेरे प्रियतम राजा नल से मिलन करा सकते हैं।

पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति के निमित्त राजा नल भगवान् विष्णु की वन्दना में कहते हैं–"प्रभो! धर्म की बीज भूता पुण्यपावनसलिला भगवती गंगा आपकी चरण सेवा में है और अर्थ की मूल कारण भूता लक्ष्मी स्वयं आपके हृदय पर विराजमान रहती हैं तथा कामदेव भी कृष्णावतार में आपके पुत्र ही हैं एवं इन तीन पुरुषार्थों की सिद्धि मोक्ष तो आपके सेवन मात्र से हो ही जाना है"–

धर्मबीजसलिला सरिदङ्घ्रावर्थमूलमुरसि स्फुरति श्रीः।
कामदैवतमपि प्रसवस्ते ब्रह्म मुक्तिदमसि स्वयमेव।।[15]

महाकवि श्रीहर्ष चतुर्विध पुरुषार्थों में धर्म की अत्यधिक महत्ता प्रतिपादित करते हुवे कहते हैं–हे प्रिये! तुम अपनी सखियों के साथ कुछ काल तक आनन्द में निमग्न रहो ऐसा कहकर दमयन्ती के चित्त को उसकी सखियों में उन्मुख कर राजा नल सन्ध्याकालीन अपने नित्यकर्म सन्ध्यावन्दनादि में लग जाते हैं–

तदानन्दाय त्वत्परिहसितकन्दाय भवती
निजालीनां लीनां स्थितिमिह मुहूर्तं मृगयताम्।
इति व्याजात् कृत्वाऽऽलिषु वलितचित्तां सहचरीं
स्वयं सोऽयं सायन्तनविधिविधित्सुर्बहिरभूत्।।[16]

यहाँ अवसर है सद्योद्वाहित अद्वितीय सुन्दरी दमयन्ती के साथ राजा नल के सहवास के समय सन्ध्याकालीन बेला का, चूँकि राजा का धर्म परायण होना प्रजा एवं राज्य की उन्नति के लिए हितकर होता है और राजा को अपने इसी कर्म से मोक्ष की अवाप्ति सम्भव है। अतः कवि ने ऐसा वर्णन किया है।

वात्स्यायन ने पुरुषार्थों में समन्वय की चर्चा की है। वे कहते हैं यद्यपि धर्म, काम एवं अर्थ इन दोनों पुरुषार्थ से श्रेष्ठ है तथापि तीनों पुरुषार्थों का समान रूप से सेवन करता हुआ ही व्यक्ति मोक्ष प्राप्त करता है तथा शतंजीवी होता है। विलास प्रवृत्ता दमयन्ती को सन्तुष्ट करके राजा नल का तप की ओर उन्मुख होना एवं देवार्चना के बाद ही भोजन ग्रहण करना राजा नल के धर्म की श्रेष्ठता को प्रदर्शित करता है।

सम्यगस्य जपतः श्रुतिमन्त्राः सन्निधानमभजन्त कराब्जे।
शुद्धबीजविशदस्फुटवर्णाः स्फाटिकाक्षवलयच्छलभाजः॥[17]

नैषध में वर्णित इन सभी तथ्यों से यह अवगत होता है कि नल एवं दमयन्ती ने धर्मशास्त्र निर्दिष्ट पुरुषार्थों का सम्यक् निर्वाह किया है। महाकवि श्रीहर्ष प्रणीत नैषधीयचरित महाकाव्य एक शृंगार संवलित महाकाव्य है जिसमें कवि का मुख्य ध्येय नायक-नायिका के सम्बन्ध को शृंगार की अन्तिम दशा पर पहुँचाना अभीष्ट है।

अतः यह कहा जा सकता है कि कवि ने सभी पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का अत्यधिक वर्णन न करते हुए काम वर्णन में ही अपना श्रेय माना है।

महाकवि श्रीहर्ष ने तत्कालीन सांस्कृतिक रूप-रेखा का अत्यन्त मार्मिक ढंग से अपने काव्य में विवेचन किया है। संस्कृति के प्रायः सभी पहलुओं पर इन्होंने जोर दिया है।

संगीत

वैदिक काल से लेकर अब तक हमारे ऋषियों, मनीषियों, काव्यतत्त्ववेत्ताओं ने सांस्कृतिक तत्त्वों के अनुशीलन में विशेष ध्यान दिया है। क्योंकि कालिदास की यह सदुक्ति सार्वकालिक एवं सर्वप्रासंगिक सिद्ध है–"**उत्सवप्रियाः खलु मनुष्याः**"[18] उत्सवों में नृत्य संगीत का होना मुख्यतः अनिवार्य माना जाता है। संगीत के मुख्य स्रोत वेद हैं क्योंकि नृत्य का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद एवं गीत वादन सहित नृत्य का आलोक अथर्ववेद में दृष्टिगत होता है सामवेद संगीतशास्त्र का आदिम ग्रन्थ माना जाता है। संगीत शास्त्र का उद्भव प्रथम आदि दो देवों ब्रह्मा तथा शंकर से माना जाता है। नाट्यशास्त्रप्रणेता आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में इस प्रसंग को सविस्तृत उपस्थापित किया है। त्रेतायुग के प्रारम्भ में देवों ने ब्रह्मा से साग्रह अनुरोध किया कि हम सब दृश्य एवं श्रव्य क्रीडनीयक (नाटक) देखना चाहते हैं। इस प्रसंग में ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य, यजुर्वेद से अभिनय, सामवेद से गीत तथा अथर्ववेद से रस को लेकर सार्ववर्णिक पंचम नाट्य का प्रणयन किया जो सभी वर्गों के रसास्वादन में उपयुक्त हुआ।[19] इसके बाद ब्रह्मा ने स्वाति एवं उनके शिष्यों को वाद्य एवं गान्धर्व तथा नारद को गान कार्य के लिए अभिप्रेरित किया। तत्पश्चात् देव-गान्धर्वों ने मिलकर '**अमृतमन्थन**' एवं '**त्रिपुरदाह**' नामक नाट्य का मंचन किया जिसे देख नटराजराज भगवान् शिव ने हर्षित मन से कहा-- मैंने ही सन्ध्याकाल में नृत्य का आविर्भाव किया है जो विभिन्न प्रयोगों से अभिभूषित है। गीत को नाटक की शय्या माना गया है। क्योंकि गीत एवं वाद्य के प्रयोग से नाटक में अत्यधिक चारुता उत्पन्न होती है।[20] प्रसंगवशाद् पार्वती ने भी 'लास्य' नृत्य किया।[21]

इसके बाद उत्तरोत्तर संगीत विद्या की उन्नति होती रही। आज भी अनेक संगीतशास्त्र के अभिनव प्रयोग नाटकों के मंचन में दृष्टिगत होते हैं। मध्यकालीन संस्कृति में साहित्यशिरोमणि रसिकहृदय श्रीहर्ष ने अपनी प्रतिभा सौष्ठव से संगीतशास्त्र के अनेक पक्षों को सन्दर्भित किया है।

संगीतशास्त्र में संगीत कला का निरूपण मिलता है। संगीत शब्द "सम् + गै + क्त"[22] के संयोजन से निर्मित होता है, जिसका शाब्दिक अर्थ होता है मिलकर गाया हुआ सहगान।

भर्तृहरि ने संगीत के विषय में कहा है कि गायन वह विद्या है जो नृत्य तथा वाद्ययंत्रों से गाया जाये, अर्थात् त्रिताल को ही गायन कहा जाता है। त्रिताल में नृत्य गीत एवं वाद्य की परिगणना की गयी है। संगीत को ललितकला विज्ञान भी कहा गया है। कालिदास ने अपनी कृति मालविकाग्निमित्र में नृत्यकला को ललित विज्ञान से अभिहित किया है।[23]

नैषधकार प्राचीन इस संगीतशास्त्र की सम्पूर्ण विद्याओं से पूर्ण परिचित थे। इन्होंने संगीत के इन त्रिविध उपांगों के सन्दर्भ से यह भी बताया है कि 12वीं शताब्दी के समय में लोगों की संगीत के प्रति अत्यधिक अभिरुचि थी। संगीतशास्त्र का निदर्शन नैषध के प्रथम सर्ग से ही दृष्टिगत होता है जहाँ नल दमयन्ती की विरह वेदना से व्यथित अपनी पीड़ा छुपा रहे थे किन्तु राजमहल के सदस्य तो संगीत में ही मंत्रमुग्ध थे।[24] नल के राजभवन में स्त्री-पुरुष के सामूहिक नृत्य का वर्णन करते हुए महाकवि श्रीहर्ष लिखते है–"सौध में वीणा बज रही थी, वंशी के स्वर गुँज रहे थे, वाटिका में कोकिल कूक रहे थे और भ्रमर गुंजार कर रहे थे। विविध कंकणादि पहिने नर-नारी नाच रहे थे, जिनके आभूषण परस्पर टकरा कर शब्द कर रहे थे। नवदम्पती नलदमयन्ती जो कामालाप करते थे, वह इन सब की ध्वनियों में छिप जाता था और कोई सुन नहीं पाता था।"

यत्र वैणरववैणवस्वरैर्हूङ्कृतैरुपवनीपिकालिनाम्।
कङ्कणालिकलहैश्च नृत्यतां गोपितं सुरतकूजितं तयोः॥ [25]

महाकवि श्रीहर्ष ने तौर्यत्रिक अर्थात् वाद्य, नृत्य एवं गीत के सन्दर्भ में प्रकृति को नर्तकी के रूप में चित्रित किया है। नल की आराधना में क्रीडावापी के तटपर तरंगों की ध्वनियों, कोयलों एवं भौरों के गान तथा मयूरों के नृत्य ये तौर्यत्रिक मानो सन्नद्ध थें।[26]

नैषधीयचरित के उपर्युक्त इन उद्धरणों से संगीतशास्त्र के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि गीत, वाद्य एवं नृत्य ये तौर्यत्रिक इस शास्त्र के प्राणतत्त्व हैं। नैषध में

जितना संगीत का उद्धरण मिलता है वह कवि को एतद्विषयकशास्त्र का प्रमाणिक ज्ञाता सिद्ध करता है।

गीत

प्रत्येक व्यक्ति के सुखपूर्वक जीवन यापन का एक प्रमुख माध्यम है आनन्द, जिसे व्यक्ति अवसरानुकूल पर्वोत्सवादि में गीत, नृत्य वाद्यादि के माध्यम से अनुभूत करता है। स्त्री पुरुषों की भावनाओं की अभिव्यक्ति का एक प्रमुख संसाधन गीत भी है। संगीतशास्त्र में गीत की अत्यन्त महत्ता है। संगीत को धर्मार्थकाम मोक्ष का संसाधन भी माना गया है।[27] नाट्यशास्त्र के टीकाकार अभिनवगुप्त ने नाट्य के प्राणभूततत्त्व के रूप में गीत को स्वीकारा है।[28] नाट्यशास्त्र में आचार्य भरत ने गीत के अनेकों भेदोपभेदों की चर्चा की है। गीत में ताल, लय एवं यति का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है।

नैषधीयचरित महाकाव्य में अनेक स्थलों पर गीत का प्रयोग दृष्टिगत होता है। महाकवि श्रीहर्ष ने लिखा है कि जब दमयन्ती राजा नल के गले में वरमाला डालीं तो वहाँ की पुराङ्गनाएँ अत्यन्त गदगद हुयीं हर्षोद्रेक से उनके कण्ठ से अस्फुटित शब्द निःसृत हुए।

काऽपि प्रमोदास्फुटनिर्जिहानवर्णैव या मङ्गलगीतिरासाम्।
सैवाननेभ्यः पुरसुन्दरीणामुच्चैरुलूलुध्वनिरुच्चचार।।[29]

कण्ठ की सरसता एवं वाणी की कोमलता संगीत के लिए अत्यन्त महत्त्वधायक होती है। महाकवि श्रीहर्ष लिखते हैं कि–दमयन्ती की मृदुलवाणी सुकुमारता की अंतिम सीमा है क्योंकि इनकी वाणी तो कोयल की वाणी से भी अत्यधिक श्रोत्रपेय है।[30] श्रीहर्ष ने दमयन्ती की वाणी में अतिशयता लाने के लिए यह भी कह दिया कि मानो इस दमयन्ती के कण्ठ में निवास करती हुई सरस्वती अपनी मधुर वीणा बजा रहीं हैं।

कण्ठे वसन्ती .चतुरा यदस्याः सरस्वती वाढयते विपञ्चीम्।
तदेव वाग्भूय मुखे मृगाक्ष्याः श्रोतुः श्रुतौ याति सुधारसत्वम्।।[31]

कवि ने राजा नल को श्रेष्ठ गायक के रूप में चित्रित किया है नल के स्वर की प्रशंसा में कवि कहता है कि इसका स्वर स्वर्ग के गायकों से भी अत्यधिक प्रशंसनीय है।[32]

पुनः नल के माध्यम से कवि दमयन्ती के स्वर की प्रशंसा में लिखता है कि गायन में तो स्त्रियों का ही एकाधिकार होता है। नल दमयन्ती को अभिलक्षित कर कहता है–'हे दमयन्ती! अमृत-सागर की प्रवाहिणी-सी तेरी यह वाणी कोकिलाओं द्वारा भी ठीक से नहीं गायी जाती, वे तुम्हारे अनुकरण में मानों अपनी वाणी दो-दो तीन-तीन बार निकालते हैं।[33]

इस प्रकार शृंगार रस के प्रौढ़ इस काव्य में कवि ने संगीत शास्त्र के अंग गीत का अत्यन्त मनोहारी चित्रण किया है। जहाँ स्वर, रागादि के भेदोपभेदों का भी अत्यन्त मनोरम वर्णन समवाप्त होता है।

वाद्य तथा वाद्य के भेदोपभेद

संगीतशास्त्र में वाद्य का महित स्थान है, जिसके माध्यम से गायक एवं नर्तक अपने स्वर एवं भावभंगिमाओं को गति प्रदान करने में अत्यन्त सफल होते हैं। वे चाहें सुगम संगीत हो या लोक संगीत या पुनः राष्ट्रीय संगीत ही क्यों ना हो सर्वत्र वाद्य की विशेष आवश्यकता होती है। वाद्य ही इन सबके प्राणतत्त्व होते हैं। संगीत कितना भी मधुर स्वर से क्यों न गाया जाए जब तक उसमें वाद्य विशेष का स्फोरण नहीं होता उसकी मधुरिमा फीकी पड़ ही जायेगी। आचार्य भरतमुनि ने भी नाटक के सफल एवं शुभदायक होने के लिए वाद्य विशेष की सराहना की है, अन्य स्थानों पर भी जैसे उत्सव, पर्व आदि पर वाद्यों का प्रयोग शुभ एवं सफलता सूचक माना गया है।[34]

नैषधीयचरित में भी वाद्य को शुभसूचक तथा मंगलसूचक माना गया है। महाकवि श्रीहर्ष ने इस महाकाव्य में वाद्यों के मंगलसूचक में यह लिखा है कि महाराज भीम ने अपनी पुत्री के विवाहोत्सव पर मंगलवाद्य बजवाए। तथा नल दमयन्ती ने विरोधी राजाओं के दुर्वचनों की अवहेलना में मंगलध्वनिकारी वाद्य बजवाए एवं अपने शिविरों में जाते हुए राजाओं ने भी सहर्ष मंगलवाद्य बजवाए।[35]

मंगल-अवसरों पर वाद्य बजवाने की यह परम्परा अनादि काल से अबतक चली आ रही है। इस परम्परा से महाकवि श्रीहर्ष भी अछूते नहीं रहे हैं। वर के वधू के घर पधारने पर अर्थात् बारात के स्वागत सम्मान में विभिन्न प्रकार से वाद्यों की परम्परा आज भी दृष्टिगत होती है। राजा नल भी जब बारातियों संग राजा भीम के महल में पधारें तो उनके स्वागत सम्मान में घड़ी घण्टे उच्च ध्वनि में बजने लगे। वीणा, शहनाई आदि वाद्यों की ध्वनियाँ दिग्दिगन्तर में गुंजायमान होने लगीं, ढोल मृदङ्गों का अपार नादस्वर गूंजने लगा–

तदा निसस्वानतमां घनं घनं ननाद तस्मिन्नितरां ततं ततम्।
अवापुरुच्चैः सुषिराणि राणितामममानमानद्धमियत्तयाऽध्वनीत्।।[36]

आचार्य भरतमुनि ने चार प्रकार के वाद्यों का समुल्लेख किया है।[37] जिनका समुचित समुल्लेख महाकवि श्रीहर्ष ने अपने उपरोक्त श्लोक में किया है। इससे यह सर्वसम्मत सिद्ध होता है कि कवि संगीतशास्त्र में उपर्युक्त इन विविध वाद्यों का कुशल ज्ञाता है।

वाद्यों के प्रकार

मानवों के आनन्द के लिए हमारे ऋषियों-महर्षियों ने तथा संगीतशास्त्र वेत्ताओं ने वाद्यों के अनेक प्रकार की परिकल्पना की है। जिनमें तत वाद्य, अवनद्ध, मृदङ्ग, ढोलक, सुषिर, शहनाई, वंशी, तूर्य, शङ्ख, घनवाद्य, झर्झर, घुंघरू आदि प्रमुख हैं। नैषधकार ने इन प्रमुख वाद्यों पर प्रकाश डाला है।

तत वाद्य

तत वाद्य को तन्त्रीवाद्य की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। इस वाद्ययन्त्र में तन्त्री से संगीत के स्वर प्रस्फुटित होते हैं। इस वाद्य विशेष में सभी प्रकार के वीणा वाद्य समाहित हो जाते हैं किन्तु वीणा की इस वाद्य में अत्यधिक प्रतिष्ठा दिखलाई पड़ती है।

महाकवि श्रीहर्ष ने वीणाओं के समुल्लेख में इसके दो प्रकार बतलाये हैं (1) परिवादिनी वीणा (2) विपञ्ची वीणा।

परिवादिनी वीणा – इस वीणा में सात तार होते हैं इस वाद्य का नारद ने भी अपने सङ्गीतमकरन्द में उल्लेख किया है। इस वीणा के वर्णन में श्रीहर्ष लिखते हैं कि वीणा से भी मधुर स्वरयुक्त दमयन्ती का कण्ठ सात लड़ियों के मुक्ताहार से सुशोभित हो रहा है। परिवादिनी वीणा का नाम लेते हुए महाकवि श्रीहर्ष लिखते हैं कि वीणा का नाम परिवादिनी अतएव हो गया क्योंकि दमयन्ती तो समस्त कलाओं एवं गुणों में निपुण थीं किन्तु यह वीणा उनकी समता में अपना स्वर मिलाने लगी। इसी धृष्टता के कारण इसका नाम परिवादिनी पड़ गया।[38]

विपञ्ची वीणा – इस वाद्य के आद्याचार्य स्वाति हैं। जिन्होंने नाट्याभिनय के अवसर पर ब्रह्मा से इस वाद्य की शिक्षा ग्रहण की थी। इस वाद्य के वर्णन में महाकवि लिखते हैं कि राजा भीम के महल़ में नल की बारात के स्वागत एवं मंगल स्थापनावसर पर इस वाद्य का उपयोग हो रहा था।[39]

अवनद्ध वाद्य

इस वाद्य का प्रयोग प्राचीन काल में उत्सव पर्वादि में विशेषतया होता था। आचार्य भरतमुनि ने इसका उल्लेख अपने नाट्यशास्त्र में किया है। आचार्य भरत ने इस वाद्य के सौकड़ों भेद दर्शाये हैं। इस वाद्य कि विशेषता यह है कि यह भीतर से खोखला एवं चमड़े से मढा होता है तथा हाथ या किसी अन्य वस्तु से ताडन करने पर शब्द करता है।

महाकवि श्रीहर्ष ने भी इस अवनद्ध वाद्य का नैषधीयचरित महाकाव्य में उल्लेख किया है।[40]

अवनद्धवाद्य का भेद काहलवाद्य (बड़े ढोल) के वर्णन में श्रीहर्ष लिखते हैं कि नल ने सभी देवताओं के पूजार्चना के सन्दर्भ में भगवान् शिव की धतूर पुष्प से पूजा करके मानों अपने स्वामी शिव के प्रतिद्वन्दी मदन को जीत कर उसके कुसुमास्त्र तथा काहलवाद्य को छीन कर अपने स्वामी को अर्पित कर दिया।

हेमनामकतरुप्रसवेन त्र्यम्बकस्तदुपकल्पितपूजः।
आत्तया युधि विजित्य रतीशं राजितः कुसुमकाहलयेव॥[41]

मृदङ्ग वाद्य

जिस वाद्य को आज उत्तर भारत में मृदङ्ग अथवा पखावज नाम से जाना जाता है उसे ही दक्षिण भारत में मृदङ्ग शब्द से अभिहित किया जाता है। प्राचीन संगीतशास्त्र के ग्रन्थों में मृदंग, पणव तथा दर्दुर को पुष्कर वाद्य की संज्ञा से अभिहित किया गया है। इस वाद्य का विशेष रूप शास्त्रीय संगीत में प्रयोग होता है। यह लकड़ी से बना तथा चमड़े से मढ़ा होता है। इस वाद्य की प्राचीनता रामायण में इसके वर्णन से स्वतः सिद्ध हो जाती है–

नृत्तेन चापराः क्लान्ताः पान विप्राहतास्तथा।
मुरजेषु मृदङ्गेषु पीढिकासु च संस्थिताः॥[42]

महाकवि श्रीहर्ष ने भी इस वाद्य विशेष का मनोरम चित्रण अनेक अवसरों पर उपस्थापित किया है। स्वयम्वर वर्णन प्रसंग में नैषधकार ने मृदङ्ग वाद्य का प्रयोग करने का जीक्र किया है। वे लिखते हैं कि स्वयम्वर के समय भीम का महल मृदङ्ग वाद्य से गुञ्जायमान हो रहा था–

उत्तुङ्गमङ्गलमृदङ्गनिनादभङ्गीसर्वानुवादविधिबोधितसाधुमेधाः।
सौधस्त्रजः प्लुतपताकतयाऽभिनिन्युर्मन्ये जनेषु निजताण्डवपण्डितत्वम्॥[43]

ढोलक

इस वाद्य की अत्यधिक महत्ता है क्योंकि इसका प्रयोग शास्त्रीय संगीत एवं लोकसंगीत इन दोनों विद्याओं में होता है। इसका प्राचीन नाम पटह भी है। यह लकड़ी से बना तथा चमड़े से मड़ा होता है। नैषधकार ने इस वाद्य की पृथक् स्वतन्त्ररूप से चर्चा नहीं की है किन्तु इसका भी नामोल्लेख इनके काव्य में अवश्य हुआ है 'जब स्वयम्वर के अवसर पर विभिन्न प्रकार के वाद्य बज रहे थे और गायक भी द्रुत-मध्यादि मूर्च्छनापूर्वक उच्चस्वर में गा रहे थे। तब परस्पर एक दूसरे की ध्वनि आपस में न टकराती हुयी प्रत्येक वाद्य की अलग-अलग ध्वनि सुनाई दी–

विपञ्चिराच्छादि न वेणुभिर्न ते प्रणीतगीतैर्न च तेऽपि झर्झरैः।
न ते हुडुक्केन न सोऽपि ढक्कया न मर्दलैः साऽपि न तेऽपि ढक्कया।।[44]

स्वयम्बर में विभिन्न प्रकार के वाद्य बज रहे थे और गायक भी द्रुत-मध्यादि मूर्च्छनापूर्वक उच्चस्वर में गा रहे थे। परन्तु उन सबका इस कौशल से आयोजन हो रहा था कि वे एक-दूसरे को दबा नहीं रहे थे।

सुषिरवाद्य

जो वाद्य मुख से वायु प्रेरित करने पर अपनी विशिष्ट ध्वनि दे वह सुषिरवाद्य के नाम से जाना जाता है। इस वाद्य के भी अनेक प्रकार हैं। संगीतशास्त्र के प्राचीन ग्रन्थ 'संगीतपारिजात' 'सङ्गीतदामोदर', 'संगीतरत्नाकर' आदि में इस वाद्य के भिन्न-भिन्न नाम एवं भेद दर्शाये गये हैं। यथा–शहनाई, मुरली, पावा, शृङ्ग, नागसर, कहली, मुखवीणा, तूर्यवंशी, वक्री शंख, पत्रिका स्वर आदि।

महाकवि श्रीहर्ष वाद्यों के इस तृतीय भेद सुषिरवाद्य के भेदोपभेद से भी पूर्ण परिचित दिखलाई देते हैं। सुषिरवाद्य के अन्तर्गत तूर्य (तूरही) का वर्णन करते हुए श्रीहर्ष लिखते हैं कि "केले के दो स्तम्भों के लटके पत्तों के 'चण्डातक' नामक वस्त्र से सुसज्जित वह (द्वारभूमि) राजा नल के चित्त में स्थित रहने से उल्लसित सुखपूर्वक यात्रा सम्पन्न होने के प्रश्नरूप तूर्य आदि वाद्य से युक्त नल की प्रिया दमयन्ती की सखी के रूप में सुशोभित हो रही थी।[45]

इस प्रकार नैषधकार ने सुषिर वाद्यो में प्रमुख सुनादी (शहनाई), वंशी, तूर्य, एवं शंख का भी वर्णन किया है।

घनवाद्य

इस वाद्य का अत्यधिक प्रयोग मध्यकाल के ग्रन्थों में दिखलाई देता है। संस्कृत के कुछ ग्रन्थों में इसे झल्लरी, झर्झरी एवं झर्झर नाम से भी अभिहित किया गया हैं। झर्झर के अनेक रूपों का वर्णन मिलता है यथा–झाँझ, झालर, मजीरा आदि। आजकल जो मंदिरों में घड़ियाल का वादन होता है। उसे ही मध्यकाल में जयघण्टा एवं झालर आदि नामों से अभिहित किया जाता था। महाकवि श्रीहर्ष ने घनवाद्य के भेद में क्षुद्रघण्टा का वर्णन करते हुये लिखा है–

यत्र वैणरववैणवस्वरैर्हूङ्कृतैरुपवनीपिकालिनाम्।
कङ्कणालिकलहैश्च नृत्यतां गोपितं सुरतकूजितं तयोः।।[46]

इस प्रकार वाद्यों के भेदोपभेद में महाकवि श्रीहर्ष ने संगीतशास्त्र में वर्णित अनेक भेदों को प्रदर्शित कर वाद्य विषयक अपने ज्ञानराशि से पाठकों को अवगत कराया है।

नृत्य

संगीतशास्त्र के तीन विद्याओं (गीत, वाद्य, नृत्य) में गीत एवं वाद्य के निरूपण के पश्चात् समय है नैषधीयचरित महाकाव्य में वर्णित नृत्य के भेदोपभेद का जिसे महाकवि ने अपने काव्य में अनेक स्थलों पर दर्शाया है।

नृत्य शब्द की निष्पत्ति **नृत् + क्त या क्यप्** के संयोग से होती है। लय, ताल तथा रस के अनुसार गात्र विक्षेप अंगों के शारीरिक व्यापार को नृत्त या नृत्य कहा जाता है। इस नृत्य के दो भेद हैं–(1) लास्य एवं (2) ताण्डव। आदि शक्ति भगवती पार्वती द्वारा लास्य एवं नटराजाधिराज शिव के द्वारा ताण्डव के प्रथम प्रयोग से इन्हें नृत्य का आदि जनक माना जा सकता है।

महाकवि श्रीहर्ष ने नैषध के बाईसवें सर्ग में ताण्डव नृत्य का वर्णन किया है वे ताण्डव नृत्य के विषय में लिखते हैं कि 'नल ने दमयन्ती से कहा प्रिये! सन्ध्या समाप्ति के पश्चात् जब भगवान् भूतनाथ ताण्डव नृत्य में लीन होते हैं। उस समय उनके पाद प्रहार से कैलाश पर्वत की स्फटित शिलाएँ चूर्ण-चूर्ण हो जाती हैं तथा वही आकाश मण्डल में तारों के रूप में सुशोभित हो रही हैं–

संध्यावशेषे धृतताण्डवस्य चण्डीपतेः यत्पतनाभिघातात्।
कैलासशै लस्फटिकाश्मखण्डरमण्डि पश्योत्पतयालुभिर्द्यौः।।[47]

महाकवि श्रीहर्ष ने पार्वती के लास्य का वर्णन अपने महाकाव्य में कहीं शब्दशः नहीं किया है किन्तु हाँ लास्य नृत्य सुकुमार होता है जिसमें लज्जादि की भावना विशेष होती है। अतः नैषध के बाइसवें सर्ग में जहाँ सन्ध्याकाल में गन्धर्वराजकन्याओं द्वारा अनुपाठ करने पर पुनः यह विचार करने पर भी अभी सन्ध्याकाल है लज्जित होने पर जो भाव प्रकट हुआ वह लास्य का ही रूप था।[48]

संगीतशास्त्र के आचार्यों की मान्यता के अनुरूप ही महाकवि श्रीहर्ष ने भी मृदङ्गादि वाद्यों सहित नृत्य की चर्चा की है–

उत्तुङ्गमङ्गलमृदङ्गनिनादभङ्गीसर्वानुवादविधिबोधितसाधुमेधाः।
सौधस्त्रजः प्लुतपताकतयाऽमिनिन्युर्मन्ये जनेषु निजताण्डवपण्डितत्वम्।।[49]

महाकवि श्रीहर्ष ने 'लास्य' 'ताण्डव' नृत्य के अतिरिक्त सामूहिक नृत्य का भी अत्यन्त सौष्ठव वर्णन किया है।[50] इससे यह लक्षित होता है कि महाकवि श्रीहर्ष के समय सामूहिक नृत्य का भी अत्यधिक प्रचलन रहा होगा।

मनोरञ्जन / हास्य व्यङ्ग्य

नैषध श्रृंगाररस संवलित वह महाकाव्य हैं जिसमें पग पग पर हास्य-विनोद वर्णित है। महाकवि श्रीहर्ष ने नृत्य के साथ-साथ अभिनय के माध्यम से मनोविनोद का भी अवसरानुकूल समुचित प्रयोग किया है। महाकवि ने विनोद के प्रसंग में लिखा है कि जब राजा नल देवताओं के दूत रूप में कुण्डिनपुर के अन्तर्महलों में प्रवेश करते हैं तो वहाँ वे देखते हैं कि दमयन्ती अपनी सखियों संग सरस विलास में लगी हैं। नैषध के षष्ठ सर्ग के आदि के प्रथम 50 श्लोकों में दमयन्ती एवं उसकी सखियों द्वारा मनोविनोदार्थ एक लघु अभिनय किया गया है। जिसमें कोई सखी नल का रूप धारण कर रही है तो कोई दमयन्ती बनी हुई है–

यत्रैकयालीकनलीकृतालीकण्ठे मृषाभीमभवीभवन्त्या।
तद्दृक्पथे दौहदिकोपनीता शालीनमाधायि मधूकमाला।।[51]

श्रीहर्ष मनोविनोद प्रसंग में लिखते हैं कि इस नल-दमयन्ती रूप अभिनय के दौरान ही किसी सुन्दरी के हाथ पर मैना बैठी थी जिसे सखियों ने नल रूप का कुछ पाठ पढ़ाया था मैना उसी को सुना रही थी दमयन्ती यह देखो नल है। इस प्रसंग के अवसर पर बगल में विद्यमान राजा नल चौंक पड़े।[52]

भीमसुता दमयन्ती के मनोविनोदार्थ प्रसन्नता पूर्वक सखियों द्वारा (फर्श) पर बनी उस (नल) की आकृतियों के मध्य मणिवेदी पर स्पष्ट प्रकट होते भी उस (नल) के प्रतिबिम्ब की किसी को सम्भावना न पड़ी।[53]

नैषधकार ने काव्य के प्रारम्भ में ही शिक्षित व्यक्तियों के मनोविनोद में वर्णन किया है कि उस समय शिष्ट समाज में काव्यशास्त्र ही विनोद के कारण थे–

अजस्त्रमभ्यासमुपेयुषा समं मुदैव देवः कविना बुधेन च।
दधौ पटीयान् समयं नयन्नयं दिनेश्वरश्रीरुदयं 'दिने दिने।।[54]

कामपीड़ित दमयन्ती भी अपने मन के विनोदार्थ अपनी रहस्यविद् सखियों के साथ समस्यापूर्ति वाला वाक्य बोलने लगी अर्थात् काम क्लान्त दमयन्ती आधी बात कहती थी जिसे सखियाँ पूर्ण करती थीं। इस प्रकार अर्ध-समस्या भी मन बहलाने का कारण बनती थी–

प्रियसखीनिवहेन सहाथ सा व्यरचयद्गिरमर्धसमस्यया।
हृदयमर्मणि मन्मथसायकैः क्षततमां बहु भाषितुमक्षमा।।[55]

वृक्षों पर झुला झूलना भी मनोविनोद का प्रधान हेतु माना जाता है। अतएव कवि ने ऐसा वर्णन किया है कि दमयन्ती अपने मनोविनोद में प्लक्षद्वीप में पेड़ की

लहनियों पर झूला झूलकर अपने मन को शान्त कर रही थी–

प्लक्षे महीयसि महीवलयातपत्रे तत्रेक्षिते खलु तवापि मतिर्भवित्री।
खेलां विधातुमधिशाखविलम्बिदोलालोलाखिलाङ्गजनताजनितानुरागे।।[56]

कवि ने मनोविनोद के प्रसंग में लिखा है कि तत्कालीन समय में ऐन्द्रजालादि का खेल भी होता था। कवि कहता है कि–'जब अनेक देशों के राजा स्वयम्वर में पधारे थे तो उस समय कुछ राजाओं ने ऐन्द्रजालादि का खेल दिखा कर भी नायिका दमयन्ती को मुग्ध करना चाहा–

विलोकके नायकमेलकेऽस्मिन् रूपान्यथाकौतुकदर्शिभिस्तैः।
बाधा बतेन्द्रादिभिरिन्द्रजालविद्याविदां वृत्तिवधाद् व्यधायि।।[57]

मनोविनोद का अतिशय वर्णन नल के बारातियों एवं कुण्डिनपुर के नागरिकों के मध्य दिखलायी देता है जहाँ नल दमयन्ती के कोहबर में होने के कारण इधर बारातियों के भोजन मनोरंजन आदि के सुप्रबन्ध में राजकुमार दम स्वयं नागरिकों के साथ लगे हैं, अवसर प्राप्त दम के इशारे पर नागरिक जन बारातियों से हँसी मजाक कर रहे हैं–

कटाक्षणाज्जन्यजनैर्निजप्रजाः क्वचित् परीहासमचीकरत्तराम्।
धराऽप्सरोभिर्वरयात्रयाऽऽगतानभोजयत् भोजकुलाङ्कुरः क्वचित्।।[58]

भोजनोपरान्त विश्राम के समय राजा-रानी शुक सारिकाओं से मनोरञ्जन किया करते थे। यहाँ कवि कहता है कि नवदम्पती नल दमयन्ती के भोजनोपरान्त उनके मनोरञ्जनार्थ कोई सखी महल में हरे पंखों एवं लाल चोंच वाले तोते को लेकर पहुँची–

तामन्वगादशितबिम्बविपाकचञ्चोः स्पष्टं शलाटुपरिणत्युचितच्छदस्य।
कीरस्य काऽपि करवारिरुहे वहन्ती सौन्दर्यपुञ्जमिव पञ्जरमेक माली।।[59]

तत्कालीन श्रीहर्ष के समय में बच्चों के मनोविनोद के भी अनेक संसाधनों का काव्य में वर्णन दिखलायी पड़ता है। उस समय बच्चे खपड़ों के टुकड़े को यमुना में उझाल कर उसके तरङ्गो को देखकर आनन्दित होते थे–

बालकेलिषु तदा यदलावीः कर्परीभिरभिहत्य तरङ्गान्।
भाविबाणभुजभेदनलीलासूत्रपात इव पातु तदस्मान्।।[60]

बालकों के मनोविनोद प्रसंग में यहाँ कवि ने साहित्यिक वर्णन के द्वारा उपमा के माध्यम से बच्चों के मनोविनोदार्थ उपकरण 'लट्टू' का प्रयोग किया है–

बालेन नक्तंसमयेन मुक्तं रौप्यं लसड्डिम्बमिवेन्दुबिम्बम्।
भ्रमिक्रमादुज्झितपट्टसूत्रनेत्रावृतिं मुञ्चति शोणिमानम्।।[61]

इस प्रकार कवि ने इस काव्य में अनेक स्थलों पर मनोरञ्जन के अनेक उपकरणों हास्य विनोदादि का वर्णन किया है। जो आज भी प्रासंगिक हैं।

काम-विलास

नैषध महाकाव्य में तत्कालीन राजाओं की विलासिता का भी प्रचुर निदर्शन होता है। राजभवन विलासिता की सामग्रियों से पूर्ण था। भवनों का गर्भगृह सुगन्धित एवं शीतल था क्योंकि वहाँ निरन्त अगुरु की धूप दी जाती थी और खिड़कियों में तथा झरोखों में कपूरचन्दन का चूर्ण निरन्तर पर्याप्त मात्रा में रखा जाता था, तथा महल में जहाँ नल-दमयन्ती विराजमान थे, वहाँ अत्यन्त सुगन्धित तेल के दीप प्रकाश कर रहे थे।[62] कहीं सौध प्रसाद की वावडियों में एक ओर सुन्दर हंस-मिथुन मदनोत्सव मना रहा था, दूसरी ओर घर की पक्षी गौरेयों और सारिकाओं के जोड़े अन्धाधुन्ध अश्लील काम क्रीडा में रत थे। ऐसा लग रहा था कि ये चिड़ियाँ तथा हंस-युगल सुरत विलास की भद्दी नकल कर 'पुनरुक्ति' दोष उपस्थित कर रही थीं। यहाँ कामशास्त्र के अनुसार सुरतान्त में कामोद्दीपक तिर्यक् संभोग का नल एवं दमयन्ती दर्शन कर रहे थे–

यत्र मत्तकलविङ्कशारिकाश्लेष्यकेलिपुनरुक्तिवत्तयोः।

क्वापि दृष्टिभिरवापि वापिकोत्तंसहंसमिथुनस्मरोत्सवः।।[63]

कहीं कहीं अत्यन्त कोमल, रमणीय एवं सुगन्धिपूर्ण विलासप्रिय राजा की शय्या रत्नों से खचित राजमहल में दिखलाई पड़ रही थी–

नैषधाङ्गपरिमर्दमेदुरामोदमार्दवमनोज्ञवर्णया।

यद्भुवः क्वचन सूनशय्ययाऽभाजि भालतिलकप्रगल्भता।।[64]

वहीं कहीं प्रासाद के समीपवर्ती गृहोद्यान में खिलती कलियों के सुगन्ध की लहरों ने निरन्तर भीमसुता दमयन्ती के नासारन्ध्रों की कुटिया में कुटुम्ब-भाव धारण कर लिया था, अर्थात् दमयन्ती कलियों के मनोज्ञ सुगन्ध का आनन्द लेती हुई विहार का सुख भोग रहीं थी–

क्वापि यन्निकटनिष्कुटत्फुटत्कोरकप्रकरसौरभोर्मिभिः।

सान्द्रमध्रियत भीमनन्दिनीनासिकापुटकुटीकुटुम्बिता।।[65]

इसी प्रकार इस शृंगाररस पूर्ण महाकाव्य में अन्यत्र भी काम विलासिता के अनेक सन्दर्भ दृष्टिगत होते हैं।

कला, साज-सज्जा

कलातत्त्वज्ञों ने चौसठ प्रकार की कलाओं की मान्यता दी है। जिन्हें दो भागों में रखा गया है (1) ललितकला (2) यान्त्रिक कला।

कला के ये दोनों ही उपाङ्ग शिल्पशास्त्र ही कहलाते हैं। शिल्पशास्त्र में ही उन समस्त चौसठ कलाओं का पूर्ण विवेचन किया गया है।

नैषधीयचरित में भी चौसठ कलाओं में से कुछ कलाओं का वर्णन मिलता है। महाकवि श्रीहर्ष ने अपनी कला विषयक मर्मज्ञता को प्रकट करते हुए ऐसा वर्णन किया कि मलयवन-सी सुगन्धित श्वास, फूलों से सुकुमार अंग और कोकिल-स्वर-सी वाणी इसके प्रमाण है कि दमयन्ती का शिल्पी वसन्त के अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं हो सकता, क्योंकि ऐसा उपकरण सिर्फ कामदेव के पास ही है–

अस्याः स चारुमधुरेव कारुः श्वासं वितेने मलयानिलेन।

अमूनि पुष्पैर्विदधेऽङ्गकानि चकार वाचं पिकपञ्चमेन।।[66]

स्वर्ण-निर्मित, रत्नखचित चित्रशालाओं से सुसज्जित प्रासाद को विषमयकारी इन्द्रजाल के समान कहा गया है।

महाकवि नैषधकार ने ऐसा वर्णन अपने महाकाव्य में किया है–

कुत्रचित् कनकनिर्मिताखिलः क्वापि यो विमलरत्नजः किल।

कुत्रचिदचितचित्रशालिकः क्वापि चास्थिरविधैन्द्रजालिकः।।[67]

प्रस्तुत पद्य से नैषधकालीन समृद्धि एवं तत्कालीन शिल्पियों की कुशलता प्रकट होती है।

महाराज नल के सौध में महापुरुषों की ऐसी सजीव अनुकृतियाँ बनी हुई थी, जिन्हें देखकर उनके शिल्प की उत्कृष्टता पर हर्ष और विस्मय होता था। स्वयं शिल्पियों के राजा विश्वकर्मा के सिर हिलाने पर लोगों ने उन्हें बुढ़ापे में वातरोगी समझ लिया–

चित्रतत्तदनुकार्यविभ्रमाधायिनैकविधरूपरूपकम्।

वीक्ष्य यं बहु धुवन् शिरो जरावातको विधिरकल्पि शिल्पिराट्।।[68]

महाकवि श्रीहर्ष ने तत्कालीन स्त्रियों की कलाप्रियता के सम्बन्ध में उद्धरण देते हुवे लिखा है कि विवाह के समय कुछ स्त्रियाँ सुधालेंप-चित्रकर्मादि (चौक-पूरना, रंगोली बनाना) में निपुण हुयी तो कोई पुए बनाने में, ऐसी कुशल नारियाँ ऊँचे आसन पर बैठकर गौरव प्राप्त कर रही थीं–

काचित्तदाऽऽलेपनदानपण्डिता कमप्यहङ्कारमगात् पुरस्कृता।

अलम्भि तुङ्गासनसन्निवेशनादपूपनिर्माणविदग्धयाऽऽदरः।।[69]

कवि ने अपने काव्य में साज सज्जा का भी पर्याप्त निरूपण किया है। वे लिखते हैं–'कस्तूरी और कुंकुम के लेप से लिपी और सुगन्धित इत्रादि के जल से धोयी

गई नल के आने वाले मार्ग में सजाई गई शिलापुष्प की मालाओं से सुन्दर मणियों से भरपूर वहाँ की कुट्टिमभूमि सुशोभित हो रही थी–

कुङ्कुमैणमदपङ्कलेपिताः क्षालिताश्च हिमवालुकाऽम्बुभिः।
रेजुरध्वततशैलजस्रजो यस्य मुग्धमणिकुट्टिमा भुवः॥[70]

महाराज नल के नगर में अनेक महलों के दीवारों में रत्नजडे गये थे। जिनके किरणों से फूटता प्रकाश जब स्वर्ण रचित फर्श, छत आदि पर पड़ रहा था तो उसकी द्यूति द्विगुणित हो रही थी जिससे महलों में अँधेरी रातों में भी निर्मल चाँदनी का प्रकाश बना रहता था और गर्मियों के दिनों में भी जल यन्त्रों से ऐसी सिंचाई होती थी कि ताप कष्ट का अनुभव ही नहीं होता था। अर्थात् गर्मी में भी वहाँ शीतलता थी–

तामसीष्वपि तमीषु भित्तिगै रत्नरश्मिभिरमन्दचन्द्रिकः।
यस्तपेऽपि जलयन्त्रपातुकासारदूरधुततापतन्द्रिकः॥[71]

आजकल प्रकाश की आवश्यकता के लिए बड़े-बड़े बल्व आधुनिक ट्यूब-लाईट आदि का प्रयोग किया जाता है। जिससे महलों में ठण्डक नहीं मिलती।

निषधदेश के प्रासादों में यत्र तत्र गर्भगृहों में स्वर्णादि रचित रति-काम की प्रतिमाएँ प्रतिष्ठापित थी, जो नल-दमयन्ती के रतिकाल में सी-सी शब्द को अपने प्रभाव से रोक रहीं थीं।[72]

इस प्रकार महाकवि श्रीहर्ष ने अपने महाकाव्य नैषधीयचरित में तत्कालीन कला एवं साज-सज्जा का पर्याप्त उदाहरण दिया है।

पातिव्रत्य

भारतवर्ष को सांस्कृतिक राजधानी माना गया है। यहाँ का प्रत्येक प्राणी आस्थावान् होता है। सबकी आस्था धर्मशास्त्रों में होती है। यहाँ का प्रत्येक प्राणी धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित पर्वों, उत्सवों, संस्कारादि में अटूट श्रद्धा रखता है।

महाकवि श्रीहर्ष का नैषधीयचरित महाकाव्य एक शृंगार परक महाकाव्य है जिसमें कवि ने नायक नायिका के शृंगारिक चेष्टाओं पर ही अत्यधिक अपनी कवित्व शक्ति प्रकट की है। महाकवि श्रीहर्ष का मानना है कि स्त्रियों के लिए पातिव्रत से बढ़कर कोई दूसरा व्रत नहीं होता। दमयन्ती स्वयं कहती है कि मैं इन्द्र का ही वरण करूँगी लेकिन वह इन्द्र मानव रूप होगा। प्रजाओं का पालक राजा भी इन्द्र ही होता है। अतः मैं नलरूप इन्द्र का वरण करूँगी मैंने पातिव्रत रखा है–

शुश्रूषिताहे तदहं तमेव पतिं मुदेऽपि व्रतसम्पदेऽपि।
विशेषलेशोऽयमदेवदेहमंशागतं तु क्षितिभृत्तयेह।।[73]

व्रत का मुख्य प्रयोजन होता है ऐहिक एवं पारलौकिक सुख तथा पुण्याभिवृद्धि। दमयन्ती का मानना है कि स्त्री को पातिव्रत से ही ये सारे पुण्य मिल जाते हैं।

कवि ने नायक-नायिका के स्वयम्बर का ही उत्सव रूप में वर्णन किया है जिसे विवाह प्रसंग में दिखाया जा चुका है।

कवि ने अपने काव्य को शृङ्गार प्रधान बनाने के कारण धार्मिक, व्रत, पर्व, उत्सव आदि की अत्यल्प चर्चा की है।

इस प्रकार सांस्कृतिक-सन्दर्भ नामक इस अध्याय में धर्मार्थकाममोक्ष इस पुरुषार्थ चतुष्टय के विवेचन के साथ-साथ नैषधीयचरितमहाकाव्य में उनकी स्थिति को स्पष्ट किया गया है, साथ ही तत्कालीन समाज के मनोविनोदार्थ संगीत, गीत, वाद्य उनके प्रकार नृत्य, हास-परिहास, विलास, कला, साज-सज्जा, व्रतपर्वोत्सव आदि विषय क्वचित् विस्तार से क्वचित संक्षेप में विवेचित हैं।

संदर्भ सूची

1. **E. B. Tylorprimitive Culture, 1974, p.1**
2. धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
   धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।। मनु.6/92।
3. पूर्वमीमांसा सूत्र, 1/1/2।
4. वैशेषिक दर्शन, 1/1।
5. श्रीमद्भगवद्गीता 4/7।
6. महा.उ.प.7/13
7. महा.उ.प.7/15
8. ऋग्वेद, 3/13/7।
9. हितोपदेश, कथामुख, 21।
10. म.भा. शा.प.।
11. म.भा. शा.प.।
12. गीता, 2/62-63।
13 मनुस्मृति, 2/224।

14. नैषध, 14/1-2।
15. नैषध, 21/96।
16. नैषध, 21/148।
17. नैषध, 21/18।
18. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, षष्ठ अङ्क।
19. जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
    यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि॥ नाट्यशास्त्र, 1/17।
20. गीत प्रयत्नः प्रथमस्तु कार्यः शय्यां हि नाट्यस्य वदन्ति गीतम्।
    गीतेऽपि वाद्येऽपि च सम्प्रयुक्ते नाट्यप्रयोगो न विपत्तिमेति॥ नाट्यशास्त्र, 32/436।
21. यत्तु शृङ्गारसम्बद्धं गानं स्त्रीपुरुषाश्रयम्।
    देवीकृतैरङ्गहारैर्ललितैस्तत्प्रयोजयेत्। नाट्यशास्त्र, 4/318।
22. वामन आप्टे संस्कृत शब्दकोश, पृ.1058।
23. मालविकाग्निमित्र, 2/13।
24. शशांक विह्वोतुमनेन तत्प्रियामयं बभाषे यदलीकवीक्षिताम्।
    समाज एवालपितासु वैणिकैर्मुमूर्च्छ यत्पञ्चममूर्च्छनासु च॥ नैषध., 1/52।
25. नैषध., 18/17।
26. विलासवापीतटवीचिवादनात् पिकालिगीतेः शिखिलास्यलाघवात्।
    वनेऽपि तौर्य्यत्रिकमारराध तं क्व भोगमाप्नोति न भाग्यभाग्जनः॥ नैषध., 1/102।
27. तस्य गीतस्य माहात्म्यं के प्रशंसितुमीशते।
    धर्मार्थकाममोक्षाणां इदमेवैकसाधनम्॥ सं.र. 1/1/30।
28. प्राणभूतं तावद् ध्रुवागानं प्रयोगस्य। अभिनवभारती तृतीयखण्ड, पृ.386।
29. नैषध., 14/49।
30. शिरीषकोषादपि कोमलाया वेधा विधायाङ्गमशेषमस्याः।
    प्राप्तप्रकर्षः सुकुमारसर्गे समापयद्वाचि मृदुत्वमुद्राम्।
    प्रसूनबाणाद्वयवादिनी सा कापि द्विजेनोपनिषत्पिकेन।
    अस्याः किमास्यद्विजराजतो वा नाधीयते भैक्षभुजा तरुभ्यः॥ नैषध., 7/47-48।
31. नैषध., 7/50।
32. स्वर्लोकमस्माभिरितः प्रयातैः केलीषु तद्गानगुणान्निपीय।
    हा हेति गायन् यदशोचितेन नान्नैव हा हा हरिगायनोऽभूत्॥ नैषध., 3/27।
33. त्वद्वाचः स्तुतये वयं न पटवः पीयूषमेव स्तुम-
    स्तस्यार्थे गरुडामरेन्द्रसमरः स्थाने स जानेऽजनि।
    द्राक्षापानकमानमर्दनसृजा क्षीरे दृढावज्ञया
    यस्मिन्नाम धृतोऽनया निजपदप्रक्षालनानुग्रहः॥ नैषध., 21/146।

34. उत्सवे चैव याने च नृपाणां मङ्गलेषु च।
शुभकल्याणयोगे च संग्रामे पुत्रजन्मनि॥
उत्पाते सम्भ्रमे चैव संग्रामे पुत्रजन्मनि।
ईदृशेषु च कार्येषु सर्वतोद्यानि वादयेत्॥
स्वभावगृहवार्तायामल्पभाण्डं प्रयोजयेत्।
उत्त्थानकाव्यबन्धेषु सर्वतोद्यानि वादयेत्॥ नाट्यशास्त्र, 34/18.20।
35. सानन्दं तनुजाविवाहनमहे भीमः स भूमीपतिर्वैदर्भीनिषधाक्षपौ नृपजनानिष्टोक्तिसम्पृष्ट्ये। स्वानि स्वानि धराधिपाश्च शिविराण्युद्दिश्य यान्तः क्रमा-देको द्वौ बहवश्चकार सृजतः स्मातेनिरे मङ्गलम्, नैषध., 14/97।
36. नैषध., 15/16।
37. ततं चैवावनद्धं च घनं सुषिरमेव च।
चतुर्विधं तु विज्ञेयमातोद्यं लक्षणान्वितम्॥ नाट्यशास्त्र, 28/1।
38. स्वरेण वीणेत्यविशेषणं पुराऽस्फुरत्तदीया खलु कण्ठकन्दली।
अवाप्य तन्त्रीरथ सप्त मौक्तिकासरानराजत् परिवादिनी स्फुटम्॥ नैषध., 15/44।
सा यद्धृताऽखिलकलागुणभूमभूमीभैमीतुलाऽधिगतये स्वरसङ्गताऽऽसीत्।
तं प्रागसावविनयं परिवादमेत्य लोकेऽधुनापि विहिता परिवादिनीति॥ नैषध., 21/112।
39. विपञ्चिराच्छादि न वेणुभिर्न ते प्रणीतगीतैर्न च तेऽपि झर्झरैः।
न ते हुडुक्केन न सोऽपि ढक्कया न मर्दलैः साऽपि न तेऽपि ढक्कया॥ नैषध. 15/17।
40. नैषध., 15/16।
41. नैषध., 21/31 इसे कुछ टीकाकारों ने प्रक्षिप्त माना है।
42. रामायण सुन्दरकाण्ड, 11/596।
43. नैषध., 11/6।
44. नैषध., 15/17।
45. नैषध., 16/8।
46. नैषध., 18/17।
47. नैषध., 22/15।
48. इति पठति शुके मृषा ययुस्ता बहुनृपकृत्यमवेत्य सान्धिवेलम्।
कुपितनिजसखीदृशाऽर्द्धदृष्टाः कमलतयेव तदा निकोचवत्यः॥ नैषध., 21/127।
49. नैषध., 11/6।
50. विलासवापीतटवीचिवादनात् पिकालिगीतेः शिखिलास्यलाघवात्।
वनेऽपि तौर्य्यत्रिकमारराध तं क्व भोगमाप्नोति न भाग्यभाग्जनः॥ नैषध., 1/102।
51. नैषध., 6/61।
52. एतं नलं तं दमयन्ति! पश्य त्यजार्तिमित्यालिकुलप्रबोधान्।
श्रुत्वा स नारीकरवर्तिशारीमुखात् स्वमाशङ्कत यत्र दृष्टम्॥ नैषध., 6/60।

53. भैमीविनोदाय मुदा सखीभिस्तदाकृतीनां भुवि कल्पितानाम्।
नातर्कि मध्ये स्फुटमप्युदीतं यस्यानुबिम्बं मणिवेदिकायाम्॥ नैषध., 6/74।
54. नैषध., 1/17।
55. नैषध., 4/101।
56. नैषध., 11/74।
57. नैषध., 14/67।
58. नैषध., 16/48।
59. नैषध., 21/108।
60. नैषध., 21/76।
61. नैषध., 22/51।
62. धूपितं यदुदराम्बरं चिरं मेचकैरगुरुसारदारुभिः।
जालजालधृतचन्द्रचन्दनक्षोदमेदुरसमीरशीतलम्॥ नैषध., 18/5।
63. नैषध., 18/16।
64. नैषध., 18/8।
65. नैषध., 18/9।
66. नैषध., 10/130।
67. नैषध., 18/11।
68. नैषध., 18/12।
69. नैषध., 15/12।
70. नैषध., 18/7।
71. नैषध., 18/14।
72. सीत्कृतान्यशृणुतां विशङ्कयोर्यत्प्रतिष्ठितरतिस्मरार्चयोः।
जालकैरपवरान्तरेऽपि तौ त्याजिनैः कपटकुड्यतां निशि॥ नैषध., 18/18।
73. नैषध., 6/94।

चतुर्थ अध्याय

नैषधीयचरित महाकाव्य में सामाजिक-सन्दर्भ

क्षुधापूर्ति के पश्चात् मानव की अनिवार्य आवश्यकता समाज है। मानव समाज का एक प्रमुख अङ्ग माना गया है। समाज के बिना मानव का कोई अपना अस्तित्व नहीं होता। मानव का समाज से अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। वह समाज के बिना जीवित नहीं रह सकता। वह जहाँ कहीं भी जाता है, अपने समाज का पूर्ण प्रतिनिधित्व करने में सामर्थ्यवान् दिखलायी पड़ता है। समाज में पला बढ़ा कवि भी काव्यक्षेत्र में अपने सामयिक समाज का प्रतिनिधि होता है। वह अपनी काव्यमयी रचना के माध्यम से तत्कालीन समाज का उपस्थापन करता है। कवि की लेखनी उसके समाज की ईर्द-गीर्द दिखलायी देती है। कवि अपने समाज को वर्णित किये बिना नहीं रह सकता। इसीलिए साहित्य को समाज का दर्पण माना गया है।

महाकवि श्रीहर्ष विरचित नैषधीयचरित महाकाव्य पर भी सामाजिक प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। महाकवि श्रीहर्ष 12वीं शताब्दी के कवि माने जाते हैं। कवि की रचना से यह प्रतीत होता है कि उस समय तक भारतवर्ष पर मुगलों का साम्राज्य अभी नहीं हुआ था। कवि का समय पूर्णरूपेण हिन्दूकालीन था। नैषध में वर्णित वर्णव्यवस्था, प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा पौराणिक कथायें इसके प्रमाण हैं।

समाज को सुव्यवस्थित व सुगठित बनाने के लिए कुछ सामाजिक मर्यादाओं की बागडोर में ऋषि महर्षियों ने समाज को बाँध रखा है, जिनके अनुपालन से व्यक्ति समाज में सुखपूर्वक जीवन यापन करता है।

वर्णाश्रम-व्यवस्था

हमारे ऋषि-मुनियों ने प्रत्येक वर्गों के लिए चार आश्रमों की परिकल्पना की है। प्राचीन काल में भारतीय समाज जाति प्रथा के अनुसार चार भागों में विभक्त था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र। इन चारों वर्णों के बुद्धि एवं सामर्थ्य के अनुसार अलग-अलग कार्य भी बतलाये गये हैं। स्मृतियों में ऐसा कहा गया है कि मत्याधिक्य के कारण ब्राह्मण पठन-पाठन का कार्य करता था, क्षत्रिय अत्यधिक शौर्य के कारण देश की रक्षा करता था, वैश्य धनयुक्त होने के कारण व्यापार करता था तथा शूद्र अल्पधी होने के कारण निम्न कोटि का कार्य करता था। मनुस्मृतिकार ने नामोल्लेख प्रसंग में ऐसा विभाजन किया है[1]–

इसी प्रकार भारतीय संस्कृति में चार आश्रमों की भी मान्यता है–ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास। **'जीवेम शरदः शतम्'** इस मान्यता के आधार पर प्रत्येक मनुष्य की आयु की कल्पना 100 वर्षों तक की गयी है, जिसे प्रत्येक आश्रमों के पालन हेतु समभाव में विभक्त किया गया है। अर्थात् प्रत्येक आश्रमों का समय 25-25 वर्षों तक निर्धारित किया गया है। इन वर्णाश्रमों की सुव्यवस्था महाकवि श्रीहर्ष के समय में भी सुचारु रूप से थी। श्रीहर्ष कुण्डिनपुर के वर्णन में लिखते हैं कि–

जिस नगरी में अपने अपने आचार का परिपालन करते हुये ब्राह्मणादि चारों वर्ण सुशोभित हों, ऐसा भाव धारण करती नगरी आश्चर्यमयी क्यों न हो?

स्थितिशालिसमस्तवर्णतां न कथं चित्रमयी बिभर्तु या?।
स्वरभेदमुपैतु या कथं कलितानल्पमुखारवा न वा?॥[2]

अर्थात् प्रत्येक वर्ण धर्मार्थकाममोक्ष चतुर्विध पुरुषार्थ की सिद्धि में चारों आश्रमों में अपने-अपने सत्कर्तव्यों का सम्यक् निर्वाह करता था।

ब्रह्मचर्याश्रम

ब्रह्मचर्याश्रम में जो आयु की प्रारम्भिक 25 वर्षों की अवस्था होती है, उसमें बालक त्यागभाव से गुरु के पास जाकर ज्ञान के निमित्त भिक्षाटन करके विद्याध्ययन करते हैं।

मानवीय जीवन लीला को सफल बनाने में इस आश्रम का प्रथम वर्णन हुआ है। ब्रह्मचर्य आश्रम के प्रमुख बिन्दुओं पर आचार्य मनु ने अपना मत प्रस्तुत किया है। यथा–

उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेत्छौचमादितः।
आचारमग्निकार्यं च सन्ध्योपासनमेव च॥[3]

अर्थात् गुरु शिष्य का यज्ञोपवीत संस्कार कर उसे शौच-पवित्रता आचार-स्नान-क्रिया आदि, अग्निकार्य और सन्ध्योपासना कर्म को सिखलावें।

मनु के इस कथन से यह सिद्ध होता है कि विद्यार्थी गुरु के आश्रम में विद्या ग्रहणार्थ जाता था तो वहाँ गुरु उसका यज्ञोपवीत संस्कार करके उसे पवित्रता, आचार, स्नान, क्रिया आदि के विषय में अवगत कराकर उसे अग्नि कार्य एवं सन्ध्योपासन विधि में प्रवृत्त करता था। ब्रह्मचर्य आश्रम का मुख्य केन्द्र बिन्दु संयम है। अर्थात् इन्द्रिय-निग्रह। गुरु आज्ञा का पालन करना ब्रह्मचारी का मुख्य कर्त्तव्य है। यही ब्रह्मचारी का धर्म भी है कि गुरु के समीप गुरु से नीचे आसन पर ही बैठे।[4]

कवि भी शास्त्र प्रतिपादित इन सामाजिक नियमों से अछूते नहीं होते। हाँ चूँकि कवि को अपने काव्य में चरुता का भी आधान करना होता है। अतः कविता के माध्यम से इन नियमों को प्रकारान्तर से अभिव्यक्त कर देते हैं। शृंङ्गार रस संवलित नैषधीयचरित में भी इन नियमों का पर्याप्त उल्लेख देखने को मिलता है।

महाकवि श्रीहर्ष ब्रह्मचर्याश्रम का वर्णन करते हुवे लिखते हैं कि–वृक्षों से भीख लेकर खाने वाला कोकिल रूप ब्राह्मण कामदेव का अद्वैत प्रतिपादन करने वाली उस दमयन्ती से मानो अध्ययन करता है–

प्रसूनवाणाद्वयवादिनी सा कापि द्विजेनोपनिषत्पिकेन।
अस्याः किमास्यद्विजराजतो वा नाधीयते भैक्षभुजा तरुभ्यः॥[5]

प्राचीन काल में गुरुकुल में रहकर ब्रह्मचारी विद्यार्थी श्रेष्ठ गुरु से वेदादि का अध्ययन करता था और भिक्षावृत्ति से जीवन-यापन करता था। इस पद्य के माध्यम से पिक को ऐसा ही ब्रह्मविद्याध्येता विद्यार्थी बताया गया है। जो रसालादि वृक्षों से पंजरी आदि की भिक्षा पाकर जीवन यापन करता है और दमयन्ती के चन्द्रमुख-रूप द्विजराज से 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' के समान 'एक एषाद्वितीयः कामः' इस कामाद्वैतवाद का पाठ पढ़ता है।

भले ही ऐसे कार्यों को करने में आजकल के विद्यार्थियों को निन्दा लग रही हो, लेकिन नैषधकार ने लिखा है कि भगवान् शिव ने चन्द्रमा को शिलोञ्छवृत्ति वाला जान कर याज्ञिकों में श्रेष्ठ उसे अपने मस्तक पर धारण कर लिया–

त्वया जगत्युच्चितकान्तिसारे यदिन्दुनाऽशीलि शिलोञ्छवृत्तिः।
आरोपि तन्माणवकोऽपि मौलौ स यज्वराज्येऽपि महेश्वरेण॥[6]

ब्रह्मचर्याश्रम की चर्चा में आगे नैषधकार लिखते हैं कि उस समय ब्रह्मचारी मूंज की बनी मेखला पहनते थे और हाथ में दण्ड धारण करते थे–

मौञ्जीभृतो धृताषाढानाशशंके स वर्णितः।
रज्ज्वामी बद्धुमायान्ति हन्तुं दण्डेन मां ततः॥[7]

अर्थात् मूँज की बनी मेखलाधारी और पलाशदण्ड लिए ब्रह्मचारियों को देखकर इस (कलि) ने आशंका की कि ये ब्रह्मचारी मुझे (कलि को) रस्सी से बाँधने तत्पश्चात् दण्ड से मारने आ रहे हैं।

इस तरह प्रकारान्तर से साहित्यिक शैली में कवि श्रीहर्ष ने ब्रह्मचर्य आश्रम का स्वरूप अपने काव्य नैषधीयचरित में प्रस्फुटित किया है, जो सामाजिक सन्दर्भ का उपांग है।

गृहस्थाश्रम

प्रायः सभी प्राचीन आचार्यो ने गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता स्वीकार की है। बह्मचर्य आश्रम के पश्चात् उपयुक्त कन्या से विवाहपूर्वक गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का शास्त्रकारों ने विधान किया है। गृहस्थाश्रम का सफल निर्वाह उचित ज्ञान से ही सम्भव है अतः इसे द्वितीय आश्रम के रूप में रखा गया है। इस आश्रम पर व्यक्ति के परिवार

की, समाज तथा राष्ट्र की चौमुखी उन्नति निर्भर होती है। गृहस्थाश्रम की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए मनुस्मृति में कहा गया है कि सभी आश्रम गृहस्थाश्रम पर ही अवलम्बित हैं।

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यन्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्।।[8]

जिस प्रकार सभी नदी और नद समुद्र में स्थिति को पाते हैं अर्थात् समुद्र में अवलम्बित होते हैं। उसी प्रकार सभी आश्रम वाले (ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासी) गृहस्थ में ही स्थिति पाते हैं।

नैषधकार भी अपने पूर्ववर्त्ती ऋषियों का अनुगमन करते हुए लिखते हैं–

वर्षेषु यद्भारतमार्यधुर्याः स्तुवन्ति गार्हस्थ्यमिवाश्रमेषु।
तत्रास्मि पत्युर्वरिवस्ययाहं शर्मोर्मिकिर्मीरितधर्मलिप्सुः।।[9]

दमयन्ती ने स्पष्ट कर दिया कि वह इलावृतादि खंडों के मध्य श्रेष्ठ जम्बूद्वीप के नवमांश भारतखण्ड में ही रहना चाहती है, जिसे मनु आदि विचारकों ने सब वर्षों के मध्य उसी प्रकार उत्तम बनाया है, जिस प्रकार कि चारों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास) आश्रमों के मध्य गृहस्थाश्रम को। इस प्रकार कवि ने स्मृतिवचन का अनुगमन करते हुवे गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता स्वीकार की है।

स्मृतियों में अतिथि को भगवान् का स्वरूप बतलाया गया है–"अतिथि देवो भव"। इसीलिए अतिथियों की पूजा का चिरकाल से माहात्म्य है। चूँकी गृहस्थाश्रम में अतिथि सत्कार का अत्यधिक माहात्म्य है अतएव नैषधकार ने भी अपने काव्य में तत्कालीन समाज में इस प्रथा या व्यवहार की महत्ता को बहुशः वर्णित किया है।

अतिथिं सेवा में कवि वर्णित करता है कि–गृहस्थाश्रमी समागत अतिथियों को झुककर प्रणाम करता था तथा मीठे वचनों से कुशलक्षेम पूछकर उसे पादप्रक्षालनार्थ जल देता था–

नत्वा शिरोरत्नरुचापि पाद्यं सम्पाद्यमाचारविदातिथिभ्यः।
प्रियाक्षरालीरसधारयापि वैधी विधेया मधुपर्कतृप्तिः।।[10]

महाकवि श्रीहर्ष ने अपने महाकाव्य में ऐसे अनेक लोक-व्यवहार की बातें बतलायी हैं।

नैषधकार ने तो अतिथि सेवा के वर्णन में अतिशयता ही प्रकट कर दी है–वे लिखते हैं कि अतिथियों के पादप्रक्षालन से गृहस्थों के आँगन सर्वदा आर्द्र रहते थे–

अतिथीनां पदाम्भोभिरिमं प्रत्यतिपिच्छिले।
अङ्गणे गृहिणामत्र खलेनानेन चस्खले।।[11]

इस प्रकार गृहस्थाश्रम का मुख्यकार्य अतिथियों की सेवा शुश्रूषा ही होता था।

अतिथि सत्कार की शिक्षा में कवि वर्णन करता है कि मान्य अतिथि का स्वागत हुआ ही करता है, किसी आश्रम में पहुँचने पर जिस प्रकार वृद्ध महर्षि राजा का आतिथ्य करते हैं वैसे ही फल-फूलों से सम्पन्न पल्लव-करों द्वारा पुराने वृक्ष कर रहे हैं-

फलानि पुष्पाणि च पल्लवे करे वयोऽतिपातोद्गतवातवेपिते।
स्थितैः समाधाय महर्षिवार्द्धकाद्वने तदातिथ्यमशिक्षिशाखिभिः।।[12]

महाकवि श्रीहर्ष ने गृहस्थाश्रम के प्रधान कर्म अतिथि सेवा का अत्यन्त सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्रण अपने नैषधीयचरित महाकाव्य में किया है।

वानप्रस्थाश्रम

वानप्रस्थ तृतीय आश्रम है। जिसमें व्यक्ति गृहस्थाश्रम के अपने सम्पूर्ण दायित्त्वों का सम्यक् परिपालन करके पारिवारिक दायित्वों को अपने ज्येष्ठ पुत्रों को देकर गाँव के किनारे किसी नदी या तालाब पर डेरा डाल कर रहता था। इस आश्रम के सन्दर्भ में आचार्य मनु का अपना मत है कि पुरुष को वानप्रस्थ आश्रम के प्रतिपालन हेतु तपोवन जाना आवश्यक है। तपोवन जाते समय वह अपनी भार्या को साथ लेकर भी जा सकता है, अथवा पुत्रों के साथ उसे छोड़कर भी जा सकता है। लेकिन उसको इस आश्रम के पालन के लिए ग्राम्याहार त्यागना एवं जितेन्द्रिय बनना आवश्यक है-

सन्त्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम्।
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा।।[13]

नैषधकार ने भी वानप्रस्थाश्रम के इन्हीं नियमों का परिपालन अपने काव्यवर्णन में किया है-

तत्रानुतीरवनवासितपस्विविप्रा सिप्रा तवोर्मिभुजया जलकेलिकाले।
आलिङ्गनानि दधती भविता वयस्या हास्यानुबन्धरमणीयसरोरुहाऽऽस्या।।[14]

संन्यासाश्रम

सांसारिक पुरुष अपने सभी कार्यों की निवृत्ति के पश्चात् इस चतुर्थाश्रम संन्यासाश्रम का आश्रयण लेता है। शास्त्रों में आयु के शेष भाग को (अर्थात् पूर्वोक्त तीन आश्रमों की पूर्ति के पश्चात्) संन्यासाश्रम में व्यतीत करने का विधान बतलाया गया है। आचार्य मनु ने इस आश्रम की स्थिरता में यह बतलाया है कि-व्यक्ति को पवित्र कमण्डलु, दण्ड आदि से युक्त होकर मौन धारण करके घर से निकलकर दूसरों के लाये गये सुस्वादु भोज्य पदार्थों में निःस्पृह होकर संन्यास ग्रहण करना चाहिए।

अगारादभिनिष्क्रान्तः पवित्रोपचितो मुनिः।
समुपोढेषु कामेषु निरपेक्षः परिव्रजेत्।।[15]

श्रीहर्ष इस चतुर्थाश्रम के वर्णन में लिखते हैं कि मनुष्य इस आश्रम में आकर भगवा वस्त्र पहनते थे, कमण्डलु लेकर भिक्षार्चन करते थे तथा उनके पास सदैव वेणुदण्ड रहता था–

यतिहस्तस्थितैस्तस्य राम्भैरारम्भि तर्जना।[16]

संन्यास आश्रम में अपनी तपस्या एवं संयम के कारण उस समय योगी ब्रह्म से साक्षात्कार करते थे। कवि कहता है कि– अवाङ्मनोगोचर उद्योगी व्यक्ति तो ब्रह्मा को भी पा सकता है–

अर्थाप्यते वा किमियद्भवत्या चित्तैकपद्यामपि वर्त्तते यः।
यत्रान्धकारः खलु चेतसोऽपि जिह्मेतरैर्ब्रह्म तदप्यवाप्यम्।।[17]

संन्यास आश्रम में ब्रह्म से साक्षात्कार मात्र ही नहीं अपितु विविध सिद्धियों को भी प्राप्त कर लेता था।[18]

इस प्रकार चतुर्थाश्रम जिसमें व्यक्ति संयम एवं तपस्या से मोक्ष की प्राप्ति में तन्मय रहता था। श्रीहर्ष ने इसका अत्यन्त ही मार्मिक वर्णन अपने नैषधीयचरित महाकाव्य में किया है।

जन–जीवन

महाकवि श्रीहर्ष लिखते हैं कि तत्कालीन समय में चारो वर्णों में विभक्त समाज अपने-अपने कार्यों का सम्यक् निर्वाह करता था। जिससे जन-जीवन अच्छी तरह से व्यतीत हो रहा था।

महाकवि नैषधकार लिखते हैं–ब्राह्मण अध्यापन का कार्य करते थे। तत्कालीन समय में विद्या की चतुर्धा उपयोगिता होती थी–अध्ययन, बोध, आचरण तथा प्रचार। इन चार प्रकारों से राजा नल ने क्यों शास्त्रों में प्रतिपादित चारों वेद, षड् वेदाङ्ग, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र तथा पुराण इन चौदह विद्याओं को 'चतुर्दशत्व' ही बनाया-- चौदह विद्याओं को चौदह ही रहने दिया–यह मैं स्वयं नहीं समझ पाता–

अधीतिबोधाचरणप्रचारणैर्दशाश्चतस्त्रः प्रणयन्नुपाधिभिः।
चतुर्दशत्वं कृतवान् कुतस्स्वयं न वेद्मि विद्यासु चतुर्दशस्वयम्।।[19]

महाकवि श्रीहर्ष ने आगे अध्ययन सामग्री की चर्चा में लिखा कि उस समय अध्ययनार्थी लेखन कार्य के निमित्त खरिया का उपयोग करते थे। राजा नल के गुणों की गणना-प्रसंग में इसका वर्णन सम्प्राप्त होता है–

एतद्यशः क्षीरधिपूरगाहि पतत्यगाधे वचनं कवीनाम्।
एतद्गुणानां गणनाङ्कपातः प्रत्यर्थिकीर्तीः खटिकाः क्षिणोति।।[20]

राजाओं के वर्णन प्रसंग में कवि लिखता है कि अयोध्या नरेश के कीर्तिरूप

दुग्धसागर के प्रवाह का अवगाहन करने वाला कवियों का वचन अतलस्पर्शी गहरे स्थान में जा गिरता है और इसके शौर्यादि गुणों की गणना के निमित्त अंक लिखना वैरियों की कीर्तिरूप खरिया का क्षय करता है।

तत्कालीन समय में समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने आप को पूर्ण सुरक्षित मानता था। इनकी सुरक्षा का कार्यभार राजा के वागडोर में होता था। राजकुमार अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा गुरु-कुल में ग्रहण करते थे।[21] राजा के प्रधान दो गुण माने गये हैं- 1. दान 2. पराक्रम। श्रीहर्ष के समय में दान का अत्यधिक प्रचलन था–

विभज्य मेरुर्न यदर्थिसात्कृतो न सिन्धूरुत्सर्गजलव्ययैर्मरुः।
अमानि तत्तेन निजायशोयुगं द्विफालबद्धाश्चिकुराशिशरस्स्थितम्।।[22]

तत्कालीन जनता धर्म-परायण थी। राजा नल ने अपने शौर्य पराक्रम से विधाता द्वारा निर्मित द्रारिद्र्य के लक्षण को ही दरिद्र बनाकर नियति के नियम का उल्लंघन नहीं किया–

अयं दरिद्रो भवितेति वैधसीं लिपिं ललाटेऽर्थिजनस्य जाग्रतीम्।
मृषा न चक्रेऽल्पितकल्पपादपः प्रणीय दारिद्र्यदरिद्रतां नृपः।।[23]

राजा नल अपने द्वितीयगुण पराक्रम से भी अपने राज्य की प्रजा का सर्वदा हित करता था।

नैषधकार कहते हैं क्षत्रिय राजा रणभूमि में अपने शत्रुओं के साथ मर कर ही स्वर्ग में इन्द्र द्वारा सत्कार प्राप्त करते थे–

पार्थिवं हि निजमाजिषु वीरा दूरमूर्ध्वगमनस्य विरोधि।
गौरवाद्वपुरपास्य भजन्ते मत्कृतामतिथिगौरवऋद्धिम्।।[24]

राजा नल का राज्य अक्षय कोष से भरा था। राजा नल युवावस्था में ही अपने राज्य में अक्षयकोष का भण्डार बना दिये थे।[25] इससे यह प्रतीत होता है कि उस समय के लोगों का जन-जीवन आर्थिक सम्पन्नता युक्त था एवं सुखपूर्वक व्यतीत होता था। राज्य में व्यापार उद्योग का साम्राज्य अतिविस्तृत था। कवि ने व्यापारोद्योग की चर्चा में लिखा है कि–'अनेक शंखों, मणि-मुक्तादि से परिपूर्ण, कोडियों की गणना हेतु घूमते हाथ स्वरूप कर्कटसमूह से नगरी व्याप्त थी। इस प्रकार वहाँ के बाजारों में अत्यधिक गर्जना हो रही थी–

बहुकम्बुमणिर्वराटिकागणनाटत्करकर्कटोत्करः।
हिमबालुकयाऽच्छबालुकः पटु दध्वान यदापणार्णवः।।[26]

कुछ निम्नवर्ग के लोग थे जो धनुषादि के निर्माण से अपना जीवन-यापन करते थे। क्योंकि महाकवि श्रीहर्ष ने नल-दमयन्ती वार्तालाप प्रसंग में बाण के निर्माता कामदेव को चाण्डाल कहा है।[27] इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय बाण का निर्माण निम्न वर्ग के लोग करते थे–

इस प्रकार श्रीहर्ष के काल में जनता अपने-अपने धर्म में तल्लीन थी एवं राजा अपनी प्रजा की सुख-समृद्धि के प्रबन्ध में उद्यत था। सारी प्रजायें सुखी थी। जन-जीवन प्रणाली शास्त्रोचित दृष्टि से चलती थी।

खान-पान

पाकशास्त्र की महत्ता वैदिककाल से ही सिद्ध है। वैदिक मंत्रों में पुरोडाश के पकाने की प्रकृति वर्णित हैं। उसके बाद मनुस्मृति, महाभारत पुराणादि में इस शास्त्र के अनेकों सन्दर्भ मिलते हैं। भोजन निर्माण में जिस प्रक्रिया का उपयोग होता है उसे ही पाकशास्त्र के नाम से जाना जाता है। पच् धातु में घञ् प्रत्यय के संयोजन से पाक शब्द की निष्पत्ति होती है। भोजन किस विधि से निर्मित किया जाए कि वह सुस्वादु बनें, इसके निर्माण की सारी प्रक्रिया का वर्णन पाकशास्त्र का मुख्य विषय है। इस शास्त्र के अधिष्ठातृदेव अग्नि हैं। अग्नि को 'सूपायन' नाम से भी जाना जाता है। इसीलिए भोजन क्रिया को सूप नाम से भी अभिहित किया गया है। नैषधीयचरित में पाकशास्त्र के सन्दर्भ में वर्णन आया है कि–जब सारे देवगण राजा नल को आशीर्वाद दे रहे थे, तो उसी में अग्नि देव ने राजा को आशीर्वाद दिया कि–भस्म करना तथा अन्नादि को पका देना ये दो मेरा प्रमुख कार्य है जो आज से तुम्हारे (नल के) अधीन होगा–

या दाहपाकौपयिकी तनुर्मे भूयात्त्वदिच्छावशवर्त्तिनी सा।
तया पराभूततनोरनङ्गात्तस्याः प्रभुः सन्नधिकस्त्वमेधि।।[28]

कवि ने ऐसा वर्णन किया है कि राजा नल की स्वयं अत्यधिक अभिरुचि पाकशास्त्र में थी। जिसकी जिस कार्य में अत्यधिक अभिरुचि हो उसका वह कार्य निश्चित ही सफल होता है। इस प्रसंग में कवि कहता है कि 'तुम्हारे (नल के) द्वारा तण्डुलादि अन्न, मछली, दुग्ध से बनाया हुआ पेय पदार्थ सब कुछ अमृत को भी तिरस्कृत करेगा–

अस्तु त्वया साधितमन्नमीनरसादि पीयूषरसातिशायि।
तद्भूप! विद्मस्तव सूपकारक्रियासु कौतूहलशालि शीलम्।।[29]

इस वर्णन से यह प्रतीत होता है कि उस समय माँस भी भोज्यपदार्थ होता था। कवि की काव्यकल्पना उसकी इच्छा एवं परिवेष पर निर्भर रहती है। महाकवि श्रीहर्ष ने अपने काव्य में भोजन के नियमों एवं प्रकारों का जैसा वर्णन किया है उससे यह सिद्ध होता है कि वे उत्तर भारत से सम्बन्धित थे। नैषधीयचरित महाकाव्य में भोजन एवं उसके अनेकों प्रकार का जैसा वर्णन उपलब्ध होता है, वह सम्पूर्ण आजकल उत्तर भारतीयों में दृष्टिगत होता है। यद्यपि समय के परिवर्तन से आज कल कुछ भिन्न रीतियाँ सम्मिलित हो गयी हैं। जैसे चायपान आदि का विशेष प्रचार सम्प्रति दृष्टिगत होता है जिसका उल्लेख प्राचीन साहित्यों में नहीं दिखता।

कवि द्वारा काव्य में व्यञ्जनों की विविधता के ऐसे अनेक उदाहरण दिये गये हैं, जिससे यह प्रतीत होता है कि कवि पाकशास्त्र में निपुण एवं इस शास्त्र का प्रामाणिक पण्डित था।

इस काव्य में पाक के वर्णन प्रसंग में सत्तु से लेकर उत्तमोत्तम मिष्ट्टान का वर्णन समुपलब्ध है।

भारतीय संस्कृति में पाँच यज्ञों की परिकल्पना है[30]। जिनमें नृयज्ञ में पाक-क्रिया का अत्यधिक योगदान होता है, क्योंकि इस यज्ञ में अतिथियों की सेवा-शुश्रूषा के अतिरिक्त उन्हें सुस्वादु भोजन कराने का भी विधान वर्णित है। इस सन्दर्भ में कवि ने वर्णन किया है कि–महाराज भीम ने सभी बारातियों की सेवा की, साथ ही सभी बारातियों को सुस्वादु व्यञ्जन भी चखाया।

अमी लसद्बाष्पमखण्डिताखिलं वियुक्तमन्योऽन्यममुक्तमार्दवम्।
रसोत्तरं गौरमपीवरं रसादभुञ्जतामोदनमोदनं जनाः।।[31]

भात वही अच्छा होता है जो खाने योग्य गरम हो, दाने टूटे न हों, उसमें कंकड़ इत्यादि न हो तथा जो शुभ्र, महीन और सुगन्धि युक्त हो। महाराज भीम के दरबार में ऐसा ही भात बारातियों को खिलाया गया।

भोजन को अन्नदेव का प्रसाद माना गया है। जिसमें धार्मिकता एवं पवित्रता की अत्यधिक महत्ता स्वीकृत है। इस प्रसंग में कवि लिखता है कि–नल के बारात में गाँव के कुछ उच्छृंखल स्वभाव के लोग भी पहुँचे थे। एक सुन्दरी किसी बाराती को पीने के लिए अथवा चरण-प्रक्षालन के लिए जल दे रही थी। वह बाराती अत्यधिक दुःसाहसी था। उसने ऐसा चाहा कि जल देने को झुकी उस सुन्दरी का झुका मुख भारी भीड़ में ही चूम ले। इस प्रक्रिया में अन्यथा वृत्ति उस बाराती के हाथों की अंगुलियाँ छितर गयीं और सारा जल पैर पर गिर गया। जिससे भोजन पूर्व हाथ-पैर धुलने की धार्मिक प्रक्रिया पूर्ण हुयी। चूँकि कवि का श्रृंगारिक वर्णन काव्य का अभीष्ट है अतः कवि ने ऐसा वर्णन किया है–

जलं ददत्याः कलितानतेर्मुखं व्यवस्यता साहसिकेन चुम्बितुम्।
पदे पतद्वारिणि मन्दपाणिना प्रतीक्षितोऽन्येक्षणवञ्चनक्षणः।।[32]

आज भी विवाहादि उत्सवों में ऐसे कुछ उच्छृंखलित स्वभाव वाले लोग दिख जाते हैं।

भोज्यपदार्थ में उत्तम दही की विशेषता में कवि वर्णन करता है–

अमीभिराकण्ठमभोजि तद्गृहे तुषारधारामृदितेव शर्करा।
वाहद्विषद्बष्कयणीपयःस्रुतं सुधाह्रदात् पङ्कमिवोद्धृतं दधि।।[33]

शुभ्र शर्करा-मिश्रित भैंस का गाढ़ा चक्क दही का आस्वादन भीम के दरबार में सभी बारातियों ने लिया। दही की उत्तमता प्रसंग में एक श्लोक वृत्तरत्नाकर के प्रथम

अध्याय में वर्णित है जहां किसी नायिका से नगर एवं ग्रामीण वर में से किसी एक को चुनने की चर्चा में नायिका ने दही चावल एवं साग के मिश्रण युक्त भोजन की उपलब्धता को देखते हुवे ग्रामीण वर का चयन किया है–

तरुणं सर्षपशाकं नवौदनं पिच्छिलानि च दधीनि।
अल्पव्ययेन सुन्दरि! ग्राम्यजनो मिष्टमश्नाति।।

दही का उपयोग विभिन्न व्यञ्जनों में होता था। कवि कहता है कि भीम राजा के यहाँ पधारे बारातियों के भोजन में दही से बने रायते का भी प्रबन्ध था। उसके स्वाद में प्रायः सभी बारातियों ने जिह्वा के स्वाद में 'सी' 'सी' शब्द निकाला–

न राजिकाराद्धमभोजि तत्र कैर्मुखेन सीत्कारकृता दधद्दधि।
धुतोत्तमाङ्गैः कटुभावपाटवादकाण्डकण्डूयितमूर्द्धतालुभिः?।।[34]

खीर (पायस) के सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है कि तत्काल खीर को अत्यधिक सुस्वादु बनाने के लिए उसमें घी डाला जाता था–

यदादिहेतुः सुरभिः समुद्भवे भवेत्तदाज्यं सुरभिध्रुवं ततः।
वधूभिरेभ्यः प्रवितीर्य पायसं तदोघकुल्यातटसैकतं कृतम्।।[35]

भोजन में सामिष-निरामिष दोनों प्रकार के भोजनों का वर्णन मिलता है। कवि कहता है कि सामिष तथा निरामिष दोनों प्रकार के भोज्यपदार्थ ऐसे बनाये जाते थे कि सामिष निरामिष सा तथा निरामिष सामिष सा प्रतीत होता था। सामिष भोजन मांसाहारियों के लिए होता है तथा निरामिष शाकाहारियों के लिए होता है। कवि ने मांसाहार का भी अतिशय वर्णन किया है। उस समय मत्स्य, मृग, बकरे और पक्षियों आदि के मांस का खाने में प्रयोग होता था। माँस के भी तरह-तरह के भोज्य पदार्थ बनते थे–

यथाऽऽमिषे जग्मुरनामिषभ्रमं निरामिषे चामिषमोहमूहिरे।
तथा विदग्धैः परिकर्मनिर्मितं विचित्रमेव परिहस्य भोजिताः।।[36]

पाचनकला में प्रवीण पाचकों ने परिहास की स्थिति उत्पन्न करने के लिए ऐसी आश्चर्यपूर्ण भोज्य सामग्री सम्पन्न की थी कि भोक्ता बारातियों को मांसाहार में शाकाहार की और शाकाहार में मांसाहार की भ्रांति हो गई।

नखेन कृत्वाऽधरसन्निभां निभाद्युवा मृदुव्यञ्जनमांसफालिकम्।
ददंश दन्तैः प्रशशंस तद्रसं विहस्य पश्यन् परिवेषिकाऽधरम्।।[37]

एक व्यक्ति ने तो कोमल मांस खण्ड को नख द्वारा ब्याज से अधर तुल्य करके (ओष्ठाधर तुल्य दो भागों में करके) दाँतों से काटा और परोसने वाली तरुणी के अधर को लक्ष्य करके, हंसकर उसके अधर तुल्य किये मांसखण्ड की प्रशसा की।

कवि भोजन के षड्रस-युक्त होने की परिचर्या में लिखता है कि यद्यपि व्यक्तियों के भोजन में षड्रस विद्यमान थे किन्तु उन षड्रसों से कामी जनों की उतनी तृप्ति नहीं होती थी जितनी की युवतियों के विलास चेष्टाओं से होती थी–

न षड्विधः षिङ्गजनस्य भोजने तथा यथा यौवतविभ्रमोद्भवः।
अपारशृङ्गारमयः समुन्मिषन् भृशं रसस्तोषमधत्त सप्तमः।।[38]

'भोजनान्ते मिष्टान्नम्' इसकी परिपाटी थी। सभी लोग भोजन करने के पश्चात् मिष्टान्न ग्रहण करते थे। कोई पायस पान करता था, तो कोई दही से बने रायते का आस्वाद लेता था, तो कुछ लोग लड्डू को ही मिठाई के रूप में ग्रहण करते थे। कवि कहता है कि मिठाई के रूप में एक दो लड्डू ही नहीं अपितु मानो बारातियों के भोजन में लड्डुओं की बारिश हो रही थी–

घनैरमीषां परिवेषकैर्जनैरिवर्षि वर्षोपलगोलकावली।
चलद्भुजाभूषणरत्नरोचिषा धृतेन्द्रचापैः श्रितचान्द्रसौरभा।।[39]

यद्यपि आयुर्वेदशास्त्र का भोजन के सम्बन्ध में ऐसा मानना है कि – **''याममध्ये न भुञ्जीत यामयुग्मं न लंघयेत्''** तथापि जैसा कि आज कल भी देखा जाता है उस समय भी दो बार ही भोजन होता था–

इति द्विकृत्वः शुचिमिष्टभोजिनां दिनानि तेषां कतिचिन्मुदा ययुः।
द्विरष्टसंवत्सरवारसुन्दरीपरीष्टिभिस्तुष्टिमुपेयुषां निशि।।[40]

'भोजनान्ते मुखशुद्ध्यर्थम् एलादिलवंगसहितताम्बूलम्' का भी परिचलन था। राजा भीम के यहाँ पधारें सभी बारातियों को भोजनोपरान्त दमयन्ती के भाई राजकुमार दम ने मुख शुद्धि हेतु ताम्बूल खिलाया–

मुखे निधाय क्रमुकं नलानुगैरथौज्झि पर्णालिरवेक्ष्य वृश्चिकम्।
दमार्पितान्तर्मुखवासनिर्मितं भयाविलैः स्वभ्रमहासिताखिलैः।।[41]

अर्थात् भोजनोपरान्त नल के अनुयायी बारातियों ने सुपारी मुख में रख (दमयन्ती के भ्राता) दम द्वारा मुख को सुगन्धित करने वाले मसालों से बनाये गये बिच्छू को देखकर भययुक्त हो अपने भ्रम के कारण सबको हँसाते हुवे पान के बीड़े को छोड़ दिया।

इस प्रकार महाकवि श्रीहर्ष ने अपने काव्य में शास्त्रोचित विधि से एवं धार्मिकता से परिपूर्ण भोजन का सर्वाङ्गपूर्ण वर्णन किया है। जिसमें सामिष निरामिष दोनों प्रकार के भोजनों का निरूपण हुआ है।

ग्रामीण, नगरीय-व्यवस्था

सामाजिक सन्दर्भों के प्रसंग में कवि ने नगरीय व्यवस्था का पर्याप्त उल्लेख किया है। चूँकि एक समृद्ध राज्य के नायक-नायिका का इस महाकाव्य में वर्णन है,

अतः इस महाकाव्य में ग्रामीण लोगों का प्रसंग अत्यल्प मिलता है। राजा नल के बारात में पधारे बारातियों के व्यवहार से एवं उनके ज्ञान से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि निषध देश की नगरी के अगल-बगल कुछ गाँव होगें जहाँ कि निम्न एवं अल्पज्ञ कोटि के कुछ लोग निवास करते होगें।

श्रीहर्ष काल में शहरी नगरीय व्यवस्था सुदृढ़ एवं परिपक्व थी। कुण्डिनपुर के वर्णन-प्रसंग में कवि ने तत्कालीन राजधानियों का परिचय दिया है। प्रत्येक नगर के मध्य में एक बाजार होता था जहाँ व्यक्ति वस्तुओं का क्रय-विक्रय करता था–

विततं वणिजापणेऽखिलं पणितुं यत्र जनेन वीक्ष्यते।
मुनिनेव मृकण्डुसूनुना जगतीवस्तु पुरोदरे हरेः।।[42]

अर्थात् जहाँ व्यापारियों द्वारा विक्रयार्थ हाट में फैलाये समस्त सांसारिक वस्तुजात (सामान) को प्राचीनकाल में विष्णु के उदर में (समाया विश्व) मृकण्डु के पुत्र मार्कण्डेय के समान लोक जन देखा करते हैं।

नगरीय व्यवस्था वर्णन में कवि आगे लिखता है कि कुण्डिनपुर की नगरीय व्यवस्था ऐसी थी कि शिशिर ऋतु की ठंडी भी कष्ट नहीं दे पाती थी–

रविकान्तमयेन सेतुना सकलाहं ज्वलनाहितोष्मणा।
शिशिरे निशि गच्छतां पुरा चरणौ यत्र दुनोति नो हिमम्।।[43]

धूप से दिन में सेतु की सूर्यकान्तमणियाँ इतनी गर्म हो जाती थी कि उष्णता रातभर बनी रहती थी।

नगर के जन सुन्दर अवयवों से युक्त थे। इस प्रसंग में कवि कहता है कि दमयन्ती का मुख, हाथ, पैर तथा नयन कमलों, चम्पक पुष्पों आदि से बनायें गये थे। इससे यह सिद्ध होता है कि नगरों के लोगों में अत्यधिक सौन्दर्य भी था–

मुखपाणिपदाक्ष्णि पङ्कजै रचिताङ्गेष्वपरेषु चम्पकैः।
स्वयमादित यत्र भीमजा स्मरपूजाकुसुमस्त्रजः श्रियम्।।[44]

नगर में प्रत्येक वर्ग के लोग रहते थे, अपने-अपने आचरणों का प्रतिपालन भी करते थे। ब्राह्मण उदात्त, अनुदात्त, स्वरित भेद से वेद पाठ करते थे। अर्थात् कहीं किसी के साथ किसी का मतभेद नहीं था। ऐसी नगरीय व्यवस्था थी–

स्थितिशालिसमस्तवर्णतां न कथं चित्रमयी बिभर्तु या?।
स्वरभेदमुपैतु या कथं कलितानल्पमुखारवा न वा?।।[45]

नगर पहरेदारों से सुरक्षित रहता था।[46] एक नगर से भिन्न दूसरे नगरों में आने जाने की सुचारु व्यवस्था होती थी। आवागमन राज मार्ग से होता था। इससे यह सिद्ध होता है की नगरों की सड़के चौड़ी एवं पक्की तथा व्यवस्थित थीं। जिसके वर्णन में कवि लिखता है–

तलं यथेयुर्न तिला विकीर्णाः सैन्यैस्तथा राजपथा बभूवुः।
भैमीं स लब्धामिव तत्र मेने यः प्राप भूभृद्भवितुं पुरस्तात्।।[47]

शुभावसरों पर नगर के राजपथों एवं भवनों की सजावट की जाती थी। आज भी यह बड़े शहरों में देखा जाता है कि मार्गों के किनारे चूना आदि का लेप एवं भवनों को सामर्थ्यानुसार फूलों, यन्त्रादि से लोग सुसज्जित करते हैं–

मसारमालावलितोरणां पुरीं निजाद्वियोगादिव लम्बितालकाम्।
ददर्श पश्यामिव नैषधः पथामथाश्रितोद्ग्रीविकमुन्नतैर्गृहैः।।[48]

नगरों में जीवन-यापन हेतु आज भी प्रकाश की अत्यधिक आवश्यकता होती है। विना प्रकाश तो आपस में सड़कों पर वाहन टकरा जाएँ, अपने ही घर में खुद रखी वस्तु आवश्यकता पड़ने पर न मिले। अतः प्रकाश की महत्ता नगरों की दृष्टि से अत्यावश्यक है। इस सन्दर्भ में कवि कहता है कि 'शिवकृपा से शिवभक्त बाणासुर की नगरी शोणितपुरी चारों ओर अग्नि से प्रकाशमान रहती है। वैसी ही प्रमगणिकता नल नगरी के विषय में है–

अनलैः परिवेषमेत्य या ज्वलदर्कोपलवप्रजन्मभिः।
उदयं लयमन्तरा रवेरवहद्वाणपुरीपराद्ध्र्यताम्।।[49]

शिवकृपासे शिवभक्त बाणासुर की नगरी शोणितपुरी चारों ओर अग्नि से घिरी रहती है कुण्डिन नगरी की भी श्रेष्ठता यहाँ वैसी ही प्रमाणित की गयी है। कुण्डिनपुरी के प्रकार में सूर्यकान्त मणियाँ भी पर्याप्त थीं। सूर्योदयास्तकाल में ऊँचे प्रकार की ये मणियाँ दमकने लगती थीं, जिससे पुरी परिविष्ट हो अग्निपरिविष्टा बाण-नगरी सी लगती थी।

इस प्रकार महाकवि श्रीहर्ष ने नगरीय व्यवस्था के ऐसे और अनेक उदाहरण दिये हैं। जिससे तत्कालीन नगरों की प्रधानता, उनका वैभव वहाँ के लोगों में परस्पर रागद्वेषविरहित भावना तथा नगरों की समृद्धि का पूर्ण परिचय मिलता है।

नगरों की समृद्धि एवं उनके सौन्दर्य वर्णन में कवि लिखता है कि उस समय दीवारों में जड़े रत्नों की किरणों से फूटता प्रकाश जब स्वर्णरचित फर्श, छत आदि पर पड़ता था, तो प्रकाश और भी द्विगुणित हो जाता था। महलों में अँधेरी रातों में भी प्रकाश रहता था और गर्मियों के दिनों में भी जलयन्त्रों से ऐसी सिंचाई होती थी कि ताप-कष्ट का अनुभव ही नहीं होता था–

तामसीष्वपि तमीषु भित्तिगै रत्नरश्मिभिरमन्दचन्द्रिकः।
यस्तपेऽपि जलयन्त्रपातुकासारदूरधुततापतन्द्रिकः।।[50]

आज भी नगरीय व्यवस्थाओं में ये सारे उपकरण उपलब्ध होते हैं। विकास के रूप में प्रकाश की स्थिति बिजली इत्यादि से पूर्ण हो जाती है, तथा नगरों में यथासम्भव प्रत्येक चतुष्पथों पर जलयन्त्रों से जल की फुहारें गिरती हैं।

भवन

शास्त्रों की रचना ऋषि मुनियों ने मानव को विकास, प्रकाश तथा उन्नत के पथ पर चलने के निमित्त ही की है। प्रत्येक शास्त्र का अपना अलग-अलग विषय होता है। वास्तुशास्त्र का मुख्य विषय है- भूमि संशोधन, भवन निर्माण-विधि तथा पूजालय, भोजनालय, स्नानघर आदि का स्थान कहाँ होना चाहिए इस विषय में दिशा निर्देश देना।

'वास्तु' शब्द का पर्याय अमरकोशकार ने 'वेश्मभूर्वास्तुरस्त्रियाम्'[51] इस पंक्ति से बतलाया है। वास्तु शब्द की निष्पत्ति 'वस्+तुन्' के संयोग से होती है। कतिपय शास्त्रज्ञों ने वास्तु शब्द का अर्थ **वसन्ति प्राणिनो यत्र** इस प्रकार से किया है। अर्थात् वह स्थान जहाँ प्राणी रहते हों, उसे वास्तु कहा जाता है।

नैषध में सम्प्राप्त वास्तुशास्त्र के नियमों से यह सर्वसिद्ध होता है कि कवि वास्तुशास्त्र से भी पूर्ण परिचित है। कविवर ने नैषधीयचरित महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में 35 श्लोकों के माध्यम से महाराज भीम के महल का एवं 18वें सर्ग में 3 से 34 कुल 32 श्लोकों के माध्यम से निषधाधिपति राजा नल के महलों का अतीव सुन्दर चित्रण चित्रित किया है।

भवन विन्यास मानव की सभ्यता, उसकी संस्कृति एवं वैभव का द्योतक होता है। वास्तुकला का निर्माण भारत वर्ष में प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध है। इस कला का उद्धरण सर्वप्रथम अथर्ववेद में समुपलब्ध होता है। जहाँ इसे स्थापत्य विद्या के रूप में बतलाया गया है। भागवत् पुराण में ऐसा वर्णन मिलता है कि अथर्ववेद से उद्भूत स्थापत्य वास्तुशास्त्र का उपजीव्य है।[52]

भवन निर्माण में शिल्पियों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। नैषध में शिल्पी की चर्चा में कहा गया है कि अलौकिक सुन्दरी दिव्य दमयन्ती के रूप सौन्दर्य का निर्माण वसन्त ने किया। मलयवन से उसने दमयन्ती की साँसे बनायी, फूलों से सुकुमार अंग, तथा कोकिल के पंचम स्वर से वाणी को उद्भावित किया–

अस्याः स चारुमधुरेव कारुः श्वासं वितेने मलयानिलेन।

अमूनि पुष्पैर्विदधेऽङ्गकानि चकार वाचं पिकपञ्चमेन॥[53]

नैषध एक शृंगार परक महाकाव्य है। जिसमें कवि ने नायिका दमयन्ती के शरीरावयव के निर्माता (वसन्त) को ही शिल्पी के रूप में वर्णित कर दिया है। आज भी भवन निर्माणादि में शिल्पी की आवश्यकता होती है। जिसे आजकल बोलचाल की भाषा में मिस्त्री कहा जाता है। इस पद्य से यह भी अनुमान लगाया जा सकता है तत्कालीन भवन अत्यन्त ही हृदयाह्लादक होगें क्योंकि दमयन्ती तो स्वयं सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति है जिसका वर्णन शिल्पी वसन्त के द्वारा बनाये गये भवन के रूप में किया गया है।

नैषधकार ने अपने महाकाव्य में कहीं भी ऐसा वर्णन नहीं किया है कि राजा भीम या राजा नल के महल शिल्प शास्त्र में प्रतिपादित शुभाशुभ के विचार से निर्मित

हैं। भवन निर्माण के लिए सर्वप्रथम उत्तमभूमि की शास्त्रकारों ने चर्चा की है। मत्स्य पुराण में उत्तमभूमि के सन्दर्भ में महामुनि व्यास लिखते हैं–

शुभदः सर्ववर्णानां प्रासादेषु गृहेषु च।
रत्निमात्रमधोगर्त्ते परीक्ष्यं खातपूरणे।।
अधिके श्रियमाप्नोति न्यूने हानिं समे समम्।
फालकृष्टेऽथवा देशे सर्वबीजानि वापयेत्।।[54]

पुराणों की मान्यता धार्मिक ग्रन्थों के रूप में है। अग्निपुराण में प्रासादों की सुरक्षा हेतु दीवार बनाने का उल्लेख मिलता है।[55]

महाकवि श्रीहर्ष ने भी महलों के वर्णन प्रसंग में इन पौराणिक सन्दर्भों का समादर किया है। वे लिखते हैं–

"कुण्डिनपुरी के अनेक प्रासादों में स्तस्भादि बनाये गये थे। उन स्तम्भों पर पुत्तलियाँ भी चित्रित थीं।

बहुरुपकशालभञ्जिकामुखचन्द्रेषु कलङ्करङ्कवः।
यदनेककसौधकन्धराहरिभिः कुक्षिगतीकृता इव।।[56]

प्राचीन काल से ही गगनचुम्बी महलों का उल्लेख होता रहा है। अग्निपुराण में भी महल या प्रासाद के ऊँचे-ऊँचे शिखरों का वर्णन मिलता है।[57]

नैषध में भी प्रासादों या भवनों की ऊँचाई वर्णन में ऐसा प्रसंग मिलता है। कुंडिनपुरी के राजप्रासादों के वर्णन में कवि लिखता है–राजमहल बहुत ऊँचा है जिससे घिरे बादलों के कारण उसका ऊपरी भाग नीला दिखलाई पड़ता है और ऐसा लगता है कि चन्द्रमा जैसे उसके शिखर पर ही टँगा है–

दधदम्बुदनीलकण्ठतां वहदत्यच्छसुधोज्ज्वलं वपुः।
कथमृच्छतु यत्र नाम न क्षितिभृन्मन्दिरमिन्दुमौलिताम्।।[58]

शिव से इन प्रासादों की कवि ने तुलना की है। शिव नीलकण्ठ, कर्पूर गौर और चन्द्रमौली हैं। ये तीनों विशेषताएँ तत्कालीन राज-प्रासादों में भी होती थी।

उस समय भी प्रत्येक कार्य के लिए अलग-अलग भवन होते थे। जैसे आजकल क्रीडा के लिए अलग भवन, पूजा के लिए पूजाभवन एवं व्यापारोद्योग के लिए अलग-अलग भवनों का निर्माण दिखलायी पड़ता है वैसे ही महाकवि श्रीहर्ष ने तत्कालीन भवनों के निर्माण में इन सबका उदाहरण दर्शाया है। राजा भीम ने राजकुमारी दमयन्ती के लिए क्रीडागृह का निर्माण करवाया था, जिसके वर्णन में कवि लिखता है–

वैदर्भीकेलिशैले मरकतशिखरादुत्थितैरंशुदर्भै-
र्ब्रह्माण्डाघातभग्नस्यदजमदतया ह्रीधृतावाङ्मुखत्वैः।

कस्या नोत्तानगाया दिवि सुरसुरभेरास्यदेशं गताग्रै-
र्यद्गोग्रासप्रदानव्रतसुकृतमविश्रान्तमुज्जृम्भते स्म॥[59]

विदर्भकुमारी (दमयन्ती) के क्रीडापर्वत पर मरकतमणिनिर्मित शिखरों से उठी ब्रह्मांड के संघटन से वेगजात अभिमान के टूट जाने के कारण लज्जा से नीचे मुख किये स्वर्ग में ऊपर मुख करके जाने वाली किसी देवगौ के मुख में जिनके अग्रभाग चले जाते हैं, ऐसी किरणों के अग्रभागों द्वारा जिस नगरी में गोग्रास-प्रदानरूप व्रत हमेशा बढ़ रहा था।

इस श्लोक में कवि ने वैदर्भी के केलि-शैल की उच्चता द्योतित की है जो मरकत का बना है।

राजा नल के राजप्रसाद के वर्णन में कवि लिखता है कि राजा नल का प्रासाद सुमेरु पर्वत से भी ऊँचाई तथा सम्पदा में श्रेष्ठ था–

वीरसेनसुतकण्ठभूषणीभूतदिव्यमणिपंक्तिशक्तिभिः।
कामनोपनमदर्थतागुणाद् यस्तृणीकृतसुपर्वपर्वतः ॥[60]

महाकवि श्रीहर्ष नल के प्रासाद वर्णन में आगे लिखते हैं कि अत्यन्त ऊँचे और मनोहर उन प्रासादों में असंख्य कबूतर उड़-उड़कर सर्वत्र शुभ्रता का प्रसार कर रहे थे। अपनी ऊँचाई एवं सुन्दरता के कारण नल का प्रासाद इन्द्र के वैजयन्त प्रासाद से भी भव्य था। इन्द्र का प्रासाद भी उसके सम्मुख पराभूत था–

उच्चलत्कलरवालिकैतवाद् वैजयन्तविजयार्जिता जगत्।
यस्य कीर्तिरवदायति स्म सा कार्तिकीतिथिनिशीथिनीस्वसा॥[61]

उपवन

नैषधीयचरित महाकाव्य में महाकवि श्रीहर्ष ने राजा भीम एवं नल के भवनों के साथ-साथ उपवनों का भी पर्याप्त उद्धरण दिया है।

नैषध के द्वितीय सर्ग के अन्त में कवि उपवन का वर्णन करते हुवे कहता है कि दमयन्ती की वाटिका में वृक्षों के आलबाल (वृक्ष के सुरक्षार्थ कियारियाँ) चन्द्रकान्त मणि से बनाये गये थे। चन्द्रमा की किरणों से मणियाँ पसीज जाती थीं जिससे सम्पूर्ण उपवन की सिंचाई हो जाती थी। ऐसे विशिष्ट भीमसुता दमयन्ती के उपवन पर हंस आकृष्टचित्त हो गया–

विधुकरपरिरम्भादात्तनिष्यन्दपूर्णैः,
शशिदृषदुपक्लृप्तैरालवालैस्तरूणाम्।
विफलितजलसेकप्रक्रियागौरवेण,
व्यरचि स हृतचित्तस्तत्र भैमीवनेन॥[62]

राजा नल की गृहवाटिका के सन्दर्भ में कवि लिखता है–'गृहवाटिका में सभी ऋतुओं के सदा विद्यमान रहने से सभी ऋतुओं के फलफूल सदा फला-फूला करते थे। आम्र आदि फलों को तोते कुतरा करते थे। जिसका रस पवन में मिलता था और उसे सुगन्धित बना देता था, अर्थात् उस उपवन वाटिका में सुगन्धित आम्र के वृक्ष भी थे। इस सुगन्ध का अनुभव वहाँ नल-दमयन्ती अन्य क्रीडाराम आदि सभी करते थे–

रुद्धसर्वऋतुवृक्षवाटिकाकीरकृत्तसहकारशीकरैः।
यज्जुषः स्म कुलमुख्यमाशुगा घ्राणवातमुपदाभिरञ्चति।।[63]

नल की गृहवाटिका प्रसंग में एक श्लोक और दर्शनीय है–

स तं नैषधसौधस्य निकटं निष्कुटध्वजम्।
बहु मेने निजं तस्मिन् कलिरालम्बनं वने।।[64]

राजा नल के महल के सन्निकट वाटिका में कुछ वृक्ष ऐसे भी थे जिनका फल-फूल की दृष्टि से कोई विशेष औचित्य नहीं था किन्तु उसकी ऊँचाई और घने पत्तों से शीतल मन्द सुगन्ध वायु सदा प्रवहमान होती रहती थी।

राजा नल के उपवन में अनेक प्रकार की सुगन्धित कलियाँ सर्वदा खिली रहती थीं। कवि इसके वर्णन में कहता है कि मानो कलि के नेत्र राजदम्पती के दोषों को ढूँढने के लिए दिन रात पेड़ पौधों की कलियों के समान खुले रहते थे–

यथाऽऽसीत् कानने तत्र विनिद्रकलिका लता।
तथा नलच्छलासक्तिविनिद्रकलिकालता।।[65]

इस प्रकार महाकवि श्रीहर्ष विरचित नैषधीयचरित महाकाव्य में भवनों के आकार-प्रकार, उपवन, वाटिकाओं का सौन्दर्य आकर्षण आदि अत्यन्त चित्ताह्लादक है जो सार्वभौकिक, सार्वकालिक सिद्ध हैं। आज भी समृद्ध नगरों में ऐसे अनेक भवन, उपवन आदि दिखलायी पड़ते हैं।

वेशभूषा/अलंकरणादि

भारतीय संस्कृति के नियमों पर आधारित श्रीहर्ष का नैषधीयचरित सौन्दर्य प्रधान श्रृंगार परक महाकाव्य है। जिसमें समाज के अनुरूप प्रत्येक सौन्दर्यवर्धक साधनों का वर्णन हुआ है।

कवि का वर्ण्य विषय राजदरबार की नायक-नायिका का श्रृंगार है। अतः इस महाकाव्य में राजसी वेशभूषा का ही परिचय नल-दमयन्ती के माध्यम से कवि ने दिया है। तत्कालीन राजा प्रायः क्षौमवस्त्र धारण करते थे तथा उनके सुकोमल पैरों की अत्यधिक सुरक्षा हेतु मार्ग में रेश्मी वस्त्र बिछाया जाता था। जिसका वर्णन करते हुवे कवि लिखता है कि राजा नल की प्रतीक्षा में राजाओं ने मार्ग पर चीन के कोमल वस्त्र

बिछाए हुवे थे–

तस्य चीनसिचयैरपि बद्धा पद्धतिः पदयुगात् कठिनेति।
तां प्यधत्त शिरसां खलु माल्यै राजराजिरभितः प्रणमन्ती।।[66]

वस्त्रों के वर्णन प्रसंग में एक और उदाहरण द्रष्टव्य है प्रतीक्षारत राजाओं ने चीनवस्त्रावृत्त मार्ग पर चरण धर चलते नल को सब ओर से झुककर प्रणति निवेदन किया, जिससे उनके शिरों की मालाएँ नल-गमन मार्ग पर गिरकर बिछ गयीं। जहाँ राजा नल पूजा के अवसर पर उज्ज्वल एवं झालरयुक्त वस्त्र पहनने के पश्चात् दुकूलवस्त्र (उत्तरीयवस्त्र) भी धारण किये हुवे हैं। कवि इस प्रसंग में साहित्यिक वर्णन करते हुवे लिखता है कि मन की गति चञ्चल है जिसे काम की ओर से उन्मुख करने के लिए मानो राजा ने इस दुकूलवस्त्र से अपना वक्षस्थल इसीलिए बाँधा हो–

भीमजामनु चलत् प्रतिवेलं संयियंसुरिव राजऋषीन्द्रः।
प्राववार हृदयं स समन्तादुत्तरीयपरिवेषमिषेण।।[67]

तत्कालीन राजाओं के परिचायकों की वेशभूषा भी ऐसी थी कि व्यवहार नासमझ सरल व्यक्तियों, बालकों और स्त्रियों के मन में भ्रम हो जाता था, जिसके कारण उन परिचायकों को भी ये लोग सामन्त सरदार ही समझ लेते थे–

विलासवैदग्ध्यविभूषणश्रीस्तेषां तथाऽभूत् परिचारकेऽपि।
अज्ञासिषुः स्त्रीशिशुबालिशास्तं यथागतं नायकमेव कञ्चित्।।[68]

आखेटक क्रिया के अवसरों पर राजा पैरों में जूता पहनते थे। जिसके वर्णन में कवि लिखता है–

कृतावरोहस्य हयादुपानहौ ततः पदे रेजतुरस्य बिभ्रती।
तयोः प्रबालैर्वनयोस्तथाऽम्बुजैर्नियोद्धुकामे किमु बद्धवर्मणी?।।[69]

घोड़े से उतरे इस (नल) के जूता पहिने पैर दोनों वनों (जंगल और जल) के पल्लव और कमलों से युद्ध करने के लिए कवच धारण किए सुशोभित हो रहे थे।

पुरुष भी विवाहादि अवसरों पर अपने अनुकूल सुसज्जित होता था। नैषधकार लिखते हैं कि जब राजा लोग विवाह मण्डप में जाते थे, तो साधारण साज-सज्जा के अतिरिक्त उनके बालों को संवारकर उसमें फूलों की कलियाँ गुंथी जाती थीं और सिर पर अनेक रत्नजडित मुकुट पहनाया जाता था। दोनों भौंहों के मध्य गोलाकार चन्दन लगाया जाता था। हाथों में कंगन एवं भुजाओं में मणिबन्ध बाँधा जाता था जिसका वर्णन कवि ने नैषध के पन्द्रहवें सर्ग में श्लोक संख्या 57 से 71 तक 14 श्लोकों में किया है–

अचुम्बि या चन्दनबिन्दुमण्डली नलीयवक्त्रेण सरोजतर्जिना।
श्रियं श्रिता काचन तारका सखी कृता शशाङ्कस्य तयाङ्कवर्तिनी।।[70]

कमल को धिक्करणीय बनाने वाले नल के मुख ने जो चन्दन की गोल बिन्दी (तिलक) लगायी, उसने शशांक (चन्द्र) के अंक में विद्यमान शोभायुक्त किसी तारा को सखी बना लिया।

पुरुष प्रसाधन, वस्त्राभूषणादि के वर्णन के साथ-साथ कवि ने नारी प्रसाधन (वस्त्राभूषणालंकरणादि) का भी अतीव मनोरम चित्रण उपस्थापित किया है। यद्यपि तत्कालीन नायिकाओं के सौन्दर्य का अतिशय वर्णन कवि ने किया है तथापि जिस प्रकार कविता में अलङ्कार के समायोजन से काव्य और अत्यधिक चमत्कृत हो जाता है वैसे की कवि ने अपने काव्य की नायिका के सौन्दर्य को और अत्यधिक चमत्कृत करने के लिए प्रसाधनों का वर्णन किया है–

असौ मुहुर्जातजलाभिषेचना क्रमाद्दुकूलेन सितांशुनोज्ज्वला।
द्वयस्य वर्षाशरदां सदातनीं सनाभितां साधु बबन्ध सन्धया।।[71]

दमयन्ती ने स्नान किया, उसके बाद स्वच्छ दुकूल धारण कर सुसज्जित हुई। स्नान करके वह स्वच्छ वर्षाकाल के सदृश लग रही थी, जल से भीगी, जब स्वच्छ शुभ्र चन्दन सदृश दुपट्टा ओढ़ लीं, तो शरद् काल सी लगने लगी।

इन दो वस्त्रों के अतिरिक्त भी दुकूल भाग के नीचे भी स्त्रियाँ एक विशेष वस्त्र पहना करती थीं, जिसका वर्णन करते हुवे कवि ने उस वस्त्र का नाम 'चण्डातक' बतलाया है। इस वस्त्र का उपयोग आज भी स्त्री समाज में होता है जिसका आजकल नाम "घाघरा" अंग्रेजी नाम 'स्कर्ट' है।

उस समय स्त्रियाँ शृंगार के प्रसाधन में कुंकुम, कस्तूरी, चन्दनादि का अपने विभिन्न अंगों पर लेप करती थीं–

विलेपनामोदमुदागतेन तत्कर्णपूरोत्पलसर्पिणा च।
रतीशदूतेन मधुव्रतेन कर्णे रहः किञ्चिदिवोच्यमानाम्।।[72]

तत्कालीन स्त्रियों के आभूषण में कवि लिखता है कि स्त्रियों के आभूषणों की चमक इतनी अधिक होती थी कि वस्त्र भी चुंधिया जाते थे।

विरोधिवर्णाभरणाश्मभासां मल्लाजिकौतूहलमीक्षमाणाम्।
स्मरस्वचापभ्रमचालिते नु भ्रुवौ विलासात् वलिते वहन्तीम्।।[73]

दमयन्ती जो आभूषण पहिनी थी, उनमें विरोधी शुभ्र, नील, कृष्ण आदि वर्णों के रत्न जड़े हुए थे। उन रत्नों की परस्पर विरोधिनी दीप्ति एक दूसरी पर पड़ती ऐसी प्रतीत हो रही थी, मानो पहलवान कुश्ती लड़ रहे हो।

स्त्रियाँ अपने शृंगार में प्राकृतिक सौन्दर्य प्रसाधन का अत्यधिक उपयोग करती थीं। नैषधकार लिखते हैं कि उस समय स्त्रियाँ कामशर आदि धूप से बालों को

सुवासित कर पुनः उन्हें गूंथने (चोटी बनाने) के पश्चात् उनमें पुष्पों की कलियों की सजावट करती थीं–

महीमघोनां मदनान्धतातमीतमःपटारम्भणतन्तुसन्ततिः।
अबन्धि तन्मूर्द्धजपाशमञ्जरी कयापि धूपग्रहधूमकोमला।।[74]
बलस्य कृष्टेव हलेन भाति या कलिन्दकन्या घनभङ्गभङ्गुरा।
तदार्पितैस्तां करुणस्य कुड्मलैर्जहास तस्याः कुटिला कचच्छटा।।[75]

प्राचीनकाल में स्त्रियों के नयन शृंगार के विषय में ऐसा वर्णन मिलता है कि वे नेत्र प्रान्त से कानों तक छूती अंजन रेखा बनाती थीं। महाकवि श्रीहर्ष इस सौन्दर्य प्रसाधन के सन्दर्भ में वर्णन करते हैं–

अनङ्गलीलाभिरपाङ्गधाविनः कनीनिकानीलमणेः पुनः पुनः।
तमिस्त्रवंशप्रभवेण रश्मिना स्वपद्धतिः सा किमरञ्जिनाञ्जनैः?।।[76]

दमयन्ती के नेत्र अत्यन्त सुन्दर थे कानों तक उसके विशाल नेत्र फैले हुवे थे, जिसे वह अञ्जन से और शोभायमान बना रही थी।

नायिका के कर्णाभूषण वर्णन में कवि लिखता है–किसी सखी ने कुण्डलों को पहिना कर भीमसुता (दमयन्ती) से कहा–तेरे मुखचन्द्र के दोनों ओर इन कुण्डलों से योग प्रिय नल के रत्यभिलाषा की उत्पत्ति में दुरघरा नामक महायोग से सम्बद्धभार को निश्चयतः धारण करता है–

अवादि भैमी परिधाप्य कुण्डले वयस्ययाऽऽभ्यामभितः समन्वयः।
त्वदाननेन्दोः प्रियकामजन्मनि श्रयत्ययं दौरधुरीं धुरं ध्रुवम्।।[77]

इस प्रकार नैषधकार महाकवि श्रीहर्ष ने नायक-नायिका के अनेक सौन्दर्य प्रसाधन वस्त्र-आभूषण-अलंकरणादि का काव्य में पर्याप्त वर्णन किया है। चूँकि काव्य का मुख्य वण्य-विषय ही शृंगार है अतः शृंगार प्रसाधन के अनेक उदात्त उदाहरण काव्य में सर्वत्र प्रस्तुत हैं। आज भी पुरुष-स्त्रियों के प्रसाधन में काव्य में वर्णित इन समस्त उपकरणों का प्रयोग देखा जाता है, हाँ समय की भिन्नता के कारण उनके नाम, आकार स्वरूप आदि में कुछ परिवर्तन अवश्य दिखलायी पड़ता है।

अतिथि-सत्कार

समाज का अभिन्न अङ्ग अतिथि-सत्कार है। यह परम्परा वैदिक काल से अब तक निरन्तर अविच्छिन्न गति से प्रवहमान है। हमारे स्मृतिकारों, धर्मशास्त्रज्ञों, ऋषि-मुनियों आदि ने अतिथि के प्रकार, आतिथ्य के उपक्रम आदि के विषय में अत्यन्त गूढ चिन्तन-मनन किया है। पंच महायज्ञों की परिकल्पना में नृयज्ञ में अतिथि सत्कार की चर्चा हुई है।

अतिथि शब्द की व्युत्पत्ति (अतति गच्छति, न तिष्ठति–अत् + इथिन्)[78] शब्दकोश में मिलती हैं। जिसका अर्थ 'मनु' के अनुसार 'यात्री' है। तैत्तिरीय संहिता में वर्णन मिलता है। जब अतिथि का पदार्पण होता है तो उसे आतिथ्य में विविध प्रकार के व्यञ्जनों में अत्यधिक घी दिया जाता है। आगे इसी क्रम में तैत्तिरीयसंहिताकार लिखते हैं कि जो रथ या गाड़ी से आवे ऐसा अतिथि और अत्यधिक सम्माननीय होता है।[79] आतिथ्य का यह विधि-विधान आज भी विवाहादि, उत्सवों, सभा, गोष्ठियों में देखने को मिल ही जाता है।

शतपथ ब्राह्मण में ऐसा प्रसंग मिलता है कि "राजा या ब्राह्मण के अतिथि रूप में रहने पर एक बैल या बकरा पकाया जाता है।[80]

आज भी प्रायः उत्तरभारत में यह प्रथा प्रचलित है कि जो विशिष्ट अतिथि आते हैं उनके आतिथ्य में भिन्न-भिन्न प्रकार के मांस परोसे जाते हैं।

कठोपनिषद् में अतिथि को अग्नि (वैश्वानर की संज्ञा दी गई है-

वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान्।
तस्यैतां शान्तिं कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम्॥[81]

याज्ञवल्क्यस्मृति में ऐसा वर्णन मिलता है कि- देवयज्ञ (वैदिक यज्ञ) में आतिथ्य के लिए एक बड़ा बैल या बकरा रखा जाता था।[82] किन्तु याज्ञवल्क्यस्मृति की टीका आह्निकप्रकाश में इसकी व्याख्या के क्रम में लिखा गया है कि इसका क्रम कलियुग में असम्भव है।[83]

मनुस्मृतिकार ने अतिथि के सम्बन्ध में अपना मत निम्नलिखित रूप में समुपस्थापित किया है- 'अतिथि' उसे कहा जाता है जो किसी के घर पूरे दिन नहीं रुकता या अतिथि ऐसा ब्राह्मण होता है, जो एक रात्रि पर्यन्त मात्र रुके-

एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः।
अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते॥[84]

कुछ अन्य स्मृतिकारों के भी अतिथि वर्णन के मत मनुस्मृतिकार से मिलते हैं। इस प्रकार नृयज्ञ में गृहस्थाश्रमी अतिथियों की सेवा-शुश्रूषा करे ऐसा हमारे धर्मशास्त्रकारों ने प्रतिपादित किया है।

कवि समुदाय ने भी आतिथ्य सम्बन्धी अपने ज्ञान को उद्भावित किया है। महाकवि श्रीहर्ष ने याज्ञवल्क्य प्रोक्त श्रोत्रिय अतिथि के विधान का अनुकरण करते हुवे लिखा है कि "कलि कहीं गोवध होता देखकर प्रसन्नमनसा उस क्षेत्र की ओर दौड़ा किन्तु जब उसे यह ज्ञात हुआ कि यहाँ तो अतिथियों के लिए गोवध हुआ है तब उसे अत्यन्त खेद हुआ।"

अधावत् क्वापि गां वीक्ष्य हन्यमानामयं मुदा।
अतिथिभ्यस्तु तां बुद्ध्वा मन्दं मन्दो न्यवर्तत।।[85]

स्मृतिकारों के अतिथि विषयक मत का अनुपालन करते हुवे महाकवि श्रीहर्ष लिखते हैं- आचार व्यवहार के सद्ज्ञानी (गृहस्थ) को उचित साधन-सामग्री के अभाव में भी अतिथि का समुचित सत्कार करना चाहिए। अतिथियों के पाद्य प्रक्षालनार्थ जल अर्पित करना चाहिए तथा मीठे वचनों से उनका स्वागत करना चाहिये-

नत्वा शिरोरत्नरुचापि पाद्यं सम्पाद्यमाचारविदातिथिभ्यः।
प्रियाक्षरालीरसधारयापि वैधी विधेया मधुपर्कतृप्तिः।।[86]

आज भी प्रायः गाँवों में आतिथ्य-सामग्री के अभाव में सदाचार-सद्व्यवहारज्ञों के घर नैषध में वर्णित इस आतिथ्य ज्ञान का अवलोकन होता है।

तैत्तिरीय संहिता में वर्णन मिलता है कि राजा के साथ जो आवे उसका भी आतिथ्य होना चाहिए।[87]

महाकवि श्रीहर्ष इस प्रसंग का आश्रय लेते हुए आतिथ्य वर्णन करते है-

भूयोऽपि बाला नलसुन्दरं तं मत्वाऽमरं रक्षिजनाक्षिबन्धात्।
आतिथ्यचाटून्यपदिश्य तत्स्थां श्रियं प्रियस्यास्तुत वस्तुतः सा।।[88]

नल प्रहरियों के नेत्रों से अदृष्ट रहकर अन्तःपुर में आ गया था। यह मानुषी कार्य नहीं है। नल ने भी देव वर के बल पर ऐसा किया था। इसलिए दमयन्ती उसे मानव-नल न मान सकी। उसने समझा कि यह नल के सदृश रमणीय कोई देव है एवं उनका सत्कार वचनों से किया।

स्मृतिकारों के पूर्वोक्त निर्देशानुसार कुमारी दिव्य दमयन्ती दूत रूप में पधारे नल से निवेदन करती है-

स्वात्मापि शीलेन तृणं विधेयं देया विहायासनभूर्निजापि।
आनन्दबाष्पैरपि कल्प्यमम्भः पृच्छा विधेया मधुभिर्वचोभिः।।[89]

अतिथि के अभ्यागत होने पर सब कुछ त्याग कर उसकी सेवा में तल्लीन हो जाना चाहिए। जलाभाव में आनन्दभरित नयनों के जल से उसका पाद प्रक्षालन कर आसन देकर उससे मीठे-मीठे वचन बोलना चाहिए।

समागत अतिथियों के पाद प्रक्षालन में यदि विलम्ब हो तो उसे दोष माना गया है। इस दोष-निवारणार्थ कवि कहता है कि अतिथि के सम्मुख हाथ जोड़कर विनय पूर्वक आतिथ्य प्रकट करना चाहिए-

पदोपहारेऽनुपनम्रतापि सम्भाव्यतेऽपां त्वरयापराधः।
तत्कर्तुमर्हाञ्जलिसञ्जनेन स्वसंभृतिप्राञ्जलतापि तावत्।।[90]

स्मृतियों में ऐसा निर्देश है कि जैसा अतिथि हो तदनुसार स्वागत भी होना चाहिये। ऐसा न करने से दोष होता है। इस प्रसंग में कवि कहता है कि-नारद जी के इन्द्रावास पधारने पर उनका उच्च से उच्चतर आतिथ्य हुआ-

अर्चनाभिरुचितोच्चतराभिश्चारु तं सदकृतातिथिमिन्द्रः।
यावदर्हकरणं किल साधोः प्रत्यवायधुतये न गुणाय।।[91]

महाकवि श्रीहर्ष आतिथ्य वर्णन प्रसंग में आगे कहते हैं कि 'राजा नल की राजधानी में अतिथि-देवों के पादप्रक्षालन के निमित्त गिरे जंल से मिट्टी में फिसलन हो गया थी।

अतिथीनां पदाम्भोभिरिमं प्रत्यतिपिच्छिले।
आङ्गणे गृहिणामत्र खलेनानेन चस्खले।।[92]

सम्प्रति भी आतिथ्य के ये सारे उपक्रम समाज में दिखते हैं। विशिष्ट व्यक्ति के पधारने पर उसका कुछ सामान्य से ज्यादा सेवा सत्कार देखने को मिलता है।

जैसा कि स्पष्ट है यह अध्याय नैषधीयचरित महाकाव्य में सामाजिक सन्दर्भों को दर्शाता है। इस विवेचन में ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम एवं सन्यासाश्रम विषय समाहित हैं इसके अतिरिक्त नैषधीयचरित में प्रतिपादित सामान्य जन-जीवन, खान-पान, रहन-सहन, ग्रामीण एवं नगरीय व्यवस्था, भवन, उपवन, वेशभूषा, अतिथि सत्कार इत्यादि विषयों की संक्षिप्त चर्चा की गयी है।

संदर्भ सूची

1. शर्मवद्ब्राह्मणस्य स्याद्राज्ञो रक्षासमन्वितः।
   वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम्। मनु.2/32।
2. नैषध., 2/98।
3. मनुस्मृति, 2/69।
4. नित्यमुद्धृतपाणिः स्यात् साध्वाचारः सुसंयतः।
   आस्यतामिति चोक्तः सन्नासीताभिमुखं गुरोः।। मनुस्मृति, 2/193।
5. नैषधीयचरित, 7/48।
6. नैषधीयचरित, 8/42।
7. नैषधीयचरित, 17/177।
8. मनुस्मृति, 6/90।
9. नैषधीयचरित, 6/97।
10. नैषधीयचरित, 8/20।
11. नैषधीयचरित, 17/164।

12. नैषध 1/77।
13. मनुस्मृति, 6/3।
14. नैषधीयचरित, 11/89।
15. मनुस्मृति, 6/41।
16. नैषधीयचरित, 17/184।
17. नैषधीयचरित, 3/63।
18. गच्छता पथि विनैव विमानं व्योम तेन मुनिना विजगाहे।
    साधने हि नियमोऽन्यजनानां योगिनां तु तपसाऽखिलसिद्धिः॥ नैषधीयचरित, 5/3।
19. नैषधीयचरित, 1/4।
20. नैषधीयचरित, 12/9।
21. अस्त्रशस्त्रखुरलीषु विनिन्ये शैष्यकोपनमितानमितौजाः। नैषधीयचरित, 21/5 उत्तरार्द्ध।
22. नैषधीयचरित, 1/16।
23. नैषधीयचरित, 1/15।
24. नैषधीयचरित, 5/15।
25. जगज्जयं तेन च कोशमक्षयं प्रणीतवान् शैशवशेषवानयम्।
    सखा रतीशस्य ऋतुर्यथा वनं वपुस्तथालिङ्गदथास्य यौवनम्॥ नैषधीयचरित, 1/19।
26. नैषधीयचरित, 2/88।
27. तवास्मि मां घातुकमप्युपेक्षसे मृषामरं हामरगौरवात्स्मरम्।
    अवेहि चण्डालमनङ्गमङ्ग! तं स्वकाण्डकारस्य मघोः सखा हि सः॥ नैषधीयचरित, 9/151।
28. नैषधीयचरित, 14/74।
29. नैषधीयचरित, 14/75।
30. अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
    होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥ मनुस्मृति, 3/70।
31. नैषधीयचरित, 16/68।
32. नैषधीयचरित, 16/58।
33. नैषधीयचरित, 16/92।
34. नैषधीयचरित, 16/73।
35. नैषधीयचरित, 16/70।
36. नैषधीयचरित, 16/80।
37. नैषधीयचरित, 16/81।
38. नैषधीयचरित, 16/108।
39. नैषधीयचरित, 16/99।

40. नैषधीयचरित, 16/111।
41. नैषधीयचरित, 16/109।
42. नैषधीयचरित, 2/91।
43. नैषधीयचरित, 2/93।
44. नैषधीयचरित, 2/96।
45. नैषधीयचरित, 2/98।
46. लीनश्चरामीति हृदा ललज्जे हेलां दधौ रक्षिजनेऽस्त्रसज्जे।
द्रक्ष्यामि भैमीमिति संतुतोष दूत्यं विचिन्त्य स्वमसौ शुशोच॥ नैषधीयचरित, 6/10।
47. नैषधीयचरित, 10/5।
47. नैषधीयचरित, 16/121।
49. नैषधीयचरित, 2/87।
50. नैषधीयचरित, 18/14।
51. अमरकोश, 2/2/19। 'वसेस्नुन्नगारे णिच्च उ.सू. 1/75।
52. आयुर्वेद धनुर्वेदं गान्धर्वं वेदमात्मनः।
स्थापत्यं चासृजद् वेदं क्रमात्पूर्वादिभिर्मुखैः॥ श्रीमद्भागवत, 3/12/38।
53. नैषधीयचरित, 10/130।
54. मत्स्यपुराण, 253/16-17।
55. नेमिः पादोनविस्तीर्णा प्रासादस्य समन्ततः।
परिधिस्त्रंयको मध्ये रथकांस्तत्र कारयेत्॥ अग्निपुराण, 104/7
56. नैषधीयचरित, 2/83।
57. शिखरेण समं कार्यमग्रे जगति विस्तरम्।
द्विगुणेनापि कर्तव्यं यथाशोभानुरूपतः॥ अग्निपुराण, 42/5।
58. नैषधीयचरित, 2/82।
59. नैषधीयचरित, 2/105।
60. नैषधीयचरित, 18/4।
61. नैषधीयचरित, 18/21।
62. नैषधीयचरित, 2/106।
63. नैषधीयचरित, 18/10।
64. नैषधीयचरित, 17/209।
65. नैषधीयचरित, 17/215।
66. नैषधीयचरित, 21/2।
67. नैषधीयचरित, 21/15।

68. नैषधीयचरित, 10/32।
69. नैषधीयचरित, 1/123।
70. नैषधीयचरित, 15/63।
71. नैषधीयचरित, 15/21।
72. नैषधीयचरित, 10/95।
73. नैषधीयचरित, 10/96।
74. नैषधीयचरित, 15/29।
75. नैषधीयचरित, 15/31।
76. नैषधीयचरित, 15/35।
77. नैषधीयचरित, 15/42।
78. वामनशिवराम आप्टे कोश, पृ.17।
79. तैत्तिरीसंहिता, 5/2/2/4।
80. शतपथब्राह्मण, 3/4/1/2।
81. कठोपनिषद् 1/1/7।
82. महोक्षं वा महाजं वा श्रोत्रियायोपकल्पयेत्।
सत्क्रियाऽन्वासनं स्वादु भोजनं सूनृतं वचः॥ याज्ञवल्क्य., 1/109।
83. अह्निकप्रकाश, पृ.451।
84. मनुस्मृति, 3/102।
85. नैषधीयचरित, 17/197।
86. नैषधीयचरित, 8/20।
87. तैत्तिरीयसंहिता, 6/2/1/2।
88. नैषधीयचरित, 8/31।
89. नैषधीयचरित, 8/21।
90. नैषधीयचरित, 8/22।
91. नैषधीयचरित, 5/9।
92. नैषधीयचरित, 17/164।

✦

पंचम अध्याय

नैषधीयचरित महाकाव्य में राजनैतिक-सन्दर्भ

राजधर्म

सनातन धर्म की अवधारणा वेदों एवं स्मृतियों पर अवलम्बित है। सम्प्रति उपलब्ध स्मृतियों में मनुस्मृति सबसे प्राचीन राजशास्त्र एवं अर्थशास्त्र का प्रतिपादक सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है। आचार्य मनु ने राज्य की स्थिरता, सम्पन्नता तथा प्रजाजनों के कल्याणार्थ जिन नियमों का विधान किया है उन्हें 'राजधर्म' की संज्ञा से अभिहित किया गया है, जिसका पालन करके राजा अपने राज्य की चरम प्रगति कर सकता है।

राजधर्मान्प्रवक्ष्यामि यथावृत्तो भवेन्नृपः।

संभवश्च यथा तस्य सिद्धिश्च परमा यथा।।[1]

राजधर्म के अन्तर्गत 'अर्थशास्त्र' शब्द को 'दण्डनीति' का पर्याय बतलाया गया है। प्राचीन धर्मशास्त्रों में ऐसा निर्देश मिलता है कि धर्म एवं अर्थ में कुशल ब्राह्मण को राजा द्वारा पुरोहित पद पर नियुक्त करना चाहिए।[2]

इससे स्पष्ट है कि आपस्तम्बकार ने धर्मशास्त्र एवं अर्थशास्त्र का साहचर्य सम्बन्ध सिद्ध किया है। कौटिल्य ने लिखा कि 'अर्थ सम्पूर्ण मानवों का जीवन या वृत्ति है।'[3] अर्थात् पूरी पृथ्वी ही अर्थ है तथा जो पृथ्वी की प्राप्ति एवं संरक्षण का साधन है वही अर्थशास्त्र है।

मनुस्मृति में राजा की सृष्टि ब्रह्मा द्वारा समस्त चराचर जगत् की रक्षा के लिए की गई है। जिससे निर्बलों को बलवानों से भय न हो।

अराजके हि लोकेऽस्मिन्सर्वतो विद्रुते भयात्।

रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः।।[4]

अर्थात् राजा का सर्वप्रथम धर्म प्रजा की रक्षा है। राजा को अपने राज्य के शास्त्रज्ञ विद्वान् ब्राह्मणों की सेवा शुश्रूषा करनी चाहिये तथा प्रत्येक कार्य में उनका परामर्श लेना चाहिये।

ब्राह्मणान्पर्युपासीत प्रातरुत्थाय पार्थिवः।

त्रैविद्यवृद्धान्विदुषस्तिष्ठेत्तेषां च शासने।।[5]

आचार्य मनु ने राजा के लिये त्रयी, आन्विक्षिकी, दण्डनीति एवं वार्ता का ज्ञान अनिवार्य माना है।

त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम्।
आन्वीक्षिकीं चात्मविद्यां वार्तारम्भाश्च लोकतः।।[6]

राजा द्वारा स्थापित नियमों के उल्लंघन करने पर 'दण्ड' का प्रयोग किया जाता है। यह भी राजा का एक महत्वपूर्ण धर्म है कि राज्य में अशान्ति फैलाने वालों, नियमों को तोड़ने वालों तथा दुराचारी मनुष्यों को दण्ड के द्वारा नियन्त्रित करे। क्योंकि दण्ड के भय से ही समस्त प्राणी अपने-अपने पथ से विचलित नहीं होते हैं।

तस्य सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च।
भयाद्भोगाय कल्पन्ते स्वधर्मान्न चलन्ति च।।[7]

किन्तु राजा को दण्ड का प्रयोग करते समय उचित-अनुचित का सम्यक् विचार कर लेना चाहिये। अनुचित दण्ड प्रयोग राजा को समूल नष्ट कर देता है।

दण्डो हि सुमहत्तेजो दुर्धरश्चाकृतात्मभिः।
धर्माद्विचलितं हन्ति नृपमेव सबान्धवम्।।[8]

मनु ने राज्य का विस्तार करने तथा प्रजा पर अपना शासन बनाये रखने हेतु साम, दाम, दण्ड तथा भेद रूप चार उपायों का समर्थन किया है। किन्तु विजिगीषु राजा के लिये इन्होंने 'साम' को सर्वश्रेष्ठ माना है।

एवं विजयमानस्य येऽस्य स्युः परिपन्थिनः।
तानानयेद्वशं सर्वान्सामादिभिरुपक्रमैः।।[9]

इन्होंने साम के अतिरिक्त 'दण्ड' का भी समर्थन किया है। इनके मतानुसार जिस प्रकार कृषक धान की बालियों की रक्षा करता है तथा तृणों को उखाड़ फेंकता है उसी प्रकार राजा को साम व दण्ड नीति से राज्य-सञ्चालन करना चाहिये।

यथोद्धरति निर्दाता कक्षं धान्यं च रक्षति।
तथा रक्षेन्नृपो राष्ट्रं हन्याच्च परिपन्थिनः।।[10]

मनुस्मृति में राजधर्म के अन्तर्गत राज्य के कुशल सञ्चालन के लिये राजा के परामर्शक मन्त्रियों की नियुक्ति का भी वर्णन किया है। राजा को वंशक्रमागत, शास्त्र-ज्ञाता, शूरवीर, अस्त्र चलाने में निपुण, उत्तम वंश में उत्पन्न सात-आठ मन्त्रियों की नियुक्ति करनी चाहिये।

मौलाञ्छास्त्रविदः शूराँल्लब्धलक्षान्कुलोद्भवान्।
सचिवान्सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान्।।[11]

वास्तव में एक व्यक्ति द्वारा समस्त राज्यभार का वहन करना एकाकी संभव नहीं है। अतः विचार-विमर्श हेतु श्रेष्ठ, विश्वसनीय मन्त्रियों की नितान्त आवश्यकता होती है। मनु ने मन्त्रियों के वार्तालाप को गोपनीय रखने पर पर्याप्त बल दिया है। अन्यथा शत्रु राजा हमारे राज्य की गोपनीय बातों को जानकर हमें हानि पहुँचा सकते हैं।

सर्वेषां तु विशिष्टेन ब्राह्मणेन विपश्चिता।
मन्त्रयेत्परमं मन्त्रं राजा षाड्गुण्यसंयुतम्।।[12]

राजा का परम धर्म है कि उसे अपने मन्त्रिमण्डल से सन्धि-विग्रह, स्थान, समुदाय तथा गुप्ति आदि पर विचार-विमर्श करना चाहिये।

तैः सार्धं चिन्तयेन्नित्यं सामान्यं सन्धिविग्रहम्।
स्थानं समुदयं गुप्तिं लब्धप्रशमनानि च।।[13]

मनुस्मृति में राजधर्म के अन्तर्गत समीपस्थ राज्य से मैत्री करने हेतु तथा शत्रु राष्ट्र का भेद जानने के लिये दूत की नियुक्ति पर पर्याप्त विचार किया गया है। मनु ने अनुरक्त शुद्ध, चतुर, स्मृतिवान्, देश-काल का जानकार सुरूप, निर्भय और वाग्मी दूत को श्रेष्ठ माना है।

दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम्।
इङ्गिताकारचेष्टज्ञं शुचिं दक्षं कुलोद्गतम्।।
अनुरक्तः शुचिर्दक्षः स्मृतिमान्देशकालवित्।
वपुष्मान्वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशस्यते।।[14]

दूत को ही सन्धि एवं विग्रह कराने वाला माना है। इसलिये दूत का चयन विचारपूर्वक करना चाहिये।

दूत एव हि संधत्ते भिनत्त्येव च संहतान्।
दूतस्तत्कुरुते कर्म भिद्यन्ते येन मानवाः।।[15]

मनु ने राज्य के विकास एवं समृद्धि के लिये धन सञ्चय करने के लिये विभिन्न 'कर' लगाने का विधान किया है।

प्रजा द्वारा अपनी आय का षष्ठ अंश कर रूप में राजा को देने का निर्देश है। किन्तु कर लेने के लिये राजा द्वारा विश्वासपात्र व्यक्तियों को नियुक्त करना चाहिये, जो कि कर ग्रहण करते समय प्रजा से न्यायपूर्ण व्यवहार करें।

सांवत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेद्बलिम्।
स्याच्चाम्नायपरो लोको वर्तेत पितृवन्नृषु।।[16]

मनु राजा के सर्वश्रेष्ठ धर्म का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि राजा को युद्ध का अवसर उपस्थित होने पर सदैव उसका सामना करना चाहिये। युद्ध में मृत्यु भी हो जाये तो उससे स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

यजेत राजा क्रतुभिर्विविधैराप्तदक्षिणैः।
धर्मार्थं चैव विप्रेभ्यो दद्याद्भोगान्धनानि च॥[17]

राजा को चाहिये कि दो-दो, तीन-तीन अथवा पांच-पांच गाँवों का एक समूह बनाकर वहाँ एक रक्षक तथा प्रधान नियुक्त कर दे। इस प्रकार सर्वविध राज्य की रक्षा की व्यवस्था करके स्नान, सन्ध्योपासना आदि कार्य से निवृत्त होकर भोजन हेतु अन्तःपुर में प्रवेश करना चाहिये।

एवं सर्वमिदं राजा सह संमन्त्र्य मन्त्रिभिः।
व्यायम्याप्लुत्य मध्याह्ने भोक्तुमन्तःपुरं विशेत्॥[18]

भोजनोपरान्त रानियों के साथ विहार करना चाहिये तथा समय-समय पर मन्त्रिमण्डल के साथ राजकार्यों पर विचार करना चाहिये।

नैषध में राजधर्म

नैषधीयचरितमहाकाव्य में राजधर्म के उन सभी प्रकारों का वर्णन महाकवि श्रीहर्ष ने किया है जिससे एक सुसंस्कारित, समृद्ध राजा नल का राजधर्म समुपस्थित होता है। राजधर्म का प्रमुख अंग राजा होता है जिसे पराक्रमी, विनयवान्, उद्यमी एवं शिक्षित होना आवश्यक होता है। महाकवि श्रीहर्ष के काव्य का नायक राजा नल भी इन समस्त गुणों से आप्लावित है–

प्रतीपभूपैरिव किं ततो भिया विरुद्धधर्मैरपि भेत्तृतोज्झिता।
अमित्रजिन्मित्रजिदोजसा स यद्विचारदृक्चारदृगप्यवर्तत॥[19]

प्रस्तुत श्लोक से यह भी सिद्ध होता है कि राजा गुप्तचरों द्वारा प्राप्त समाचार के आधार पर ही अपनी क्रिया कलाप करता था।

राजधर्म का एक यह भी बहुत बड़ा सिद्धान्त राजनीतिज्ञों ने बतलाया है कि छोटे राज्यों को सबल (अपने से अधिक बलशाली) राज्यों के साथ युद्ध नहीं करना चाहिए इस सन्दर्भ की व्यञ्जना में कवि द्वारा युद्ध के विरोध में कहा गया है कि युद्ध तो फूलों से भी नहीं करना चाहिए, तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रों की तो बात दूर है-लगता है यह भय की नीति, मूर्ख कामदेव ने जो शिव पर फूलों से प्रहार कर मूर्खता की, जिसके फल स्वरूप भस्म होना पड़ा, उसी के कारण बन गई है।

फलमलभ्यत यत्कुसुमैस्त्वया विषमनेत्रमनङ्ग? निगृह्णता।
अहह नीतिरवाप्तभया ततो न कुसुमैरपि विग्रहमिच्छति।।[20]

राजधर्म के सन्दर्भ में ऐसा निर्देश दिया गया है कि यदि दो प्रबल राज्यों के मध्य कोई छोटा दुर्बल राज्य हो तो उसपर कोई सामर्थ्यवान् राज्य आक्रमण नहीं कर सकता। इस आशय की व्यञ्जना में कवि ने दमयन्ती के उदर-सौन्दर्य में राजनीति दर्शायी है–

क्षीणेन मध्येऽपि सतोदरेण यत्प्राप्यते नाक्रमणं वलिभ्यः।
सर्वाङ्गशुद्धौ तदनङ्गराज्ये विजृम्भितं भीमभुवीह चित्रम्।।[21]

भीमसुता दमयन्ती के उदर वैचित्र्य के वर्णन में कवि का मत है कि नायिका का उदरभाग कमजोर होता है। **''मुष्टिग्राह्यमध्यमाम्'', स्तोकनम्रास्तनाभ्याम्'', शोणीभारादलसगमना''** इन साहित्यिक उद्धरणों से यह सर्व सिद्ध है कि नायिका का मध्यभाग कमजोर होता है जिस पर सबल अंग अपना विशेष प्रभाव नहीं दिखलाते अपितु उसके सौन्दर्य में मध्यभाग की भी अधिक महत्ता होती है जो सौन्दर्य उसके स्तनों एवं शोणी से मिलता है उससे कम मध्यभाग (उदर) का नहीं होता।

राजधर्म में साम, दाम, दण्ड, भेद आदि का भी पर्याप्त निरूपण राजनीतिज्ञों द्वारा हुआ है। महाकवि श्रीहर्ष ने भी राजधर्म के रूप में इनका वर्णन किया है। कवि ने हंस को राजनीतिज्ञ के रूप में चित्रित किया है। जहाँ हंस साम-भेद से राजा नल के गुणों का अत्यधिक बखान करता है।[22] उधर भीमसुता दमयन्ती को भी विभिन्न तथ्य युक्त बातों से आश्वस्त करता है–

निशा शशाङ्कं शिवया गिरीशं श्रिया हरिं योजयतः प्रतीतः।
विधेरपि स्वारसिकः प्रयासः परस्परं योग्यसमागमाय।।[23]

हंस यहाँ दो तथ्य प्रकट करना चाहता है- एक तो यह कि भाग्यविधाता ब्रह्मा सदा समान रूप गुण-शील वालों का संयोग कराने के लिए विख्यात है, स्वेच्छाचारी होने पर भी अरसिक नहीं है, इसके प्रमाण तीन हैं युगल-निशा-शशांक, शिवा-गिरीश और श्री-हरि। दमयन्ती-नल का जोड़ा भी ऐसा ही रहेगा। दूसरा तथ्य यह है कि दमयन्ती भी नल के योग्य ही है, सो योग्य से योग्य संयोग होगा।

कवि के निम्नपद्य से यह भी ज्ञात होता है कि हंस सामनीति का भी सम्यक् ज्ञाता था। जहाँ करुण स्वर में अपना जीवन दान माँगते हुवे हंस कहता है–

मदेकपुत्रा जननी जरातुरा नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी।
गतिस्तयोरेष जनस्तमर्दयन्नहो विधे! त्वां करुणा रुणद्धिनो।।[24]

राजधर्म का एक बहुत बड़ा पक्ष यह भी राजनीतिज्ञों ने निर्दिष्ट किया है कि– ''शत्रुओं का शत्रु भी मित्र होता है।''

इस प्रसंग का वर्णन भी महाकवि श्रीहर्ष ने अपने काव्य में किया है–

हित्वा दैत्यरिपोरुरः स्वभवनं शून्यत्वदोषस्फुटा-
सीदन्मर्कटकीटकृत्रिमसितच्छत्रीभवत्कौस्तुभम्।
उज्झित्वा निजसद्म पद्ममपि तद्व्यक्तावनद्धीकृतं
लूतातन्तुभिरन्तरद्य भुजयोः श्रीरस्य विश्राम्यति।।[25]

स्वयंवर सभा में काञ्चीश्वर राजा के वर्णन प्रसंग में कवि कहता है कि यह राजा समग्रतया 'श्री' सम्पन्नता से युक्त है। आज लक्ष्मी इसकी भुजाओं में निवास करती है क्योंकि लक्ष्मी का इसके पहले दो निवास स्थान था। एक तो भगवान् विष्णु का वक्षस्थल और दूसरा कमल। जिन दोनों की बीच की दूरी से लक्ष्मी थक जाती थीं। अतः काञ्चीनरेश के भुजाओं को अपनी आश्रय बना लीं।

राजधर्म के सिद्धान्त में शुक्राचार्य का मत है कि अपने सम्बन्ध में सबकुछ जानने वाले व्यक्ति के साथ दुर्व्यवहार नहीं करना चाहिए, नहीं उसका विरोध ही करना चाहिए।

नैषधकार इस मत का उल्लेख करते हुवे कहते हैं–'जब दमयन्ती की सखियाँ नग्न स्नान कर रही थीं तो उनका दमयन्ती उपहास कर रही थी इस पर दमयन्ती की अन्य सखियाँ बाहर जाकर दमयन्ती से कहने लगीं कि हे–नीतिशास्त्रपण्डिते! अपनी इन रहस्यज्ञाता सखियों की अब और उपेक्षा मत करो–

ता बहिर्भूय वैदर्भीमूचुर्नीतावधीतिनि!।
उपेक्ष्ये ते पुनः सख्यौ मर्मज्ञे नाधुनाप्यमू।।[26]

राजाओं की अपनीं कुछ मर्यादायें होती हैं, जिनके पालन में राजाओं को अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देना चाहिए। ऐसी ही एक मर्यादा का वर्णन नैषधकार हंसमुखेन करते हैं–''राजाओं को अपनी मर्यादा का ध्यान रखना चाहिए। जिस धरती का स्वामी मर्यादारहित आचरण करने लगे, उस धरती पर सज्जन लोग नहीं रहते''–

न वासयोग्या वसुधेयमीदृशस्त्वमङ्ग! यस्याः पतिरुज्झितस्थितिः।
इति प्रहाय क्षितिमाश्रिता नभः खगास्तमाचुक्रुशुरारवैः खलु।।[27]

राजधर्म में साम दाम दण्ड भेद इन चतुर्विध नीतियों का बहुत विशेष महत्त्व है। इनमें भी 'साम' नीति का अत्यधिक महत्त्व है।

सामादीनामुपायानां चतुर्णामपि पण्डितः।
सामदण्डौ प्रशंसन्ति नित्यं राष्ट्राभिवृद्धये।।[28]

'साम' नीति राष्ट्र की अभिवृद्धि कुशलता आदि में अत्यधिक सहायता प्रदान करती है। महाकवि श्रीहर्ष ने भी इन चारों नीतियों के मर्मज्ञ-रूप में नीति निपुण हंस का वर्णन किया है।

इस प्रकार राजधर्म के गुणों का भी महाकवि ने अपने काव्य में यथासम्भव वर्णन किया है।

सैनिक एवं अस्त्र-शस्त्र

महाकवि श्रीहर्ष ने राजधर्म के वर्णन के प्रसंग में सैनिकों एवं उनके अस्त्र-शस्त्रों का भी प्रचुर वर्णन किया है। स्वयंवर प्रसंग में आये राजाओं के वर्णन क्रम में सैनिकों एवं उनके अस्त्र-शस्त्रों का पर्याप्त निदर्शन होता है।

राजधर्मों में ऐसा निर्देश मिलता है कि राजा को अपने सैनिकों के साथ शत्रुदलों से युद्ध करना राजोचित धर्म होता है। यदि कोई क्षत्रिय सैनिक युद्ध में लड़ते हुए मरता है तो उसका मरना स्वर्गप्रद होता है।

इस वर्णन में महाकवि श्रीहर्ष अपना मत देते हुवे कहते हैं कि–वीर व्यक्ति युद्ध में लड़ते हुवे इस पार्थिव शरीर को छोड़कर ही स्वर्ग में इन्द्र द्वारा सत्कार प्राप्त कर पाता है–

पार्थिवं हि निजमाजिषु वीरा दूरमूर्ध्वगमनस्य विरोधि।
गौरवाद्वपुरपास्य भजन्ते मत्कृतामतिथिगौरवऋद्धिम्।।[29]

महाकवि श्रीहर्ष लिखते हैं कि राजा नल के सैनिकों द्वारा युद्ध में उनके शत्रुओं के पराजय से नल का यश दिग्दिगन्तर प्रसृत होता था–

सितांशुवर्णैर्वयति स्म तद्गुणैर्महासिवेम्नस्सहकृत्वरी बहुम्।
दिगङ्गनाङ्गाभरणं रणाङ्गणे यशःपटं तद्भटचातुरी तुरी।।[30]

तत्कालीन राजाओं के अस्त्र-शस्त्रों की भी पर्याप्त चर्चा महाकाव्य में हुई है। महाकवि श्रीहर्ष ने राजा भीम द्वारा नल को उपहार में दिये गये 'खड्ग' को 'महिषासुरसंघातिनी' नाम दिया है–

अधारि यः प्राङ्महिषासुरद्विषा कृपाणमस्मै तमदत्त कूकुदः।
अहायि तस्या हि धवार्द्धमज्जिना स दक्षिणार्द्धेन पराङ्गदारणः।।[31]

अस्त्रों के प्रकार में 'कटार' भी परिगणित है। जिसके वर्णन में कवि कहता है– महेन्द्राचलाधीश एक बहुत बड़ा योद्धा है जो शत्रुओं के सिर को अपनी 'कटारी' से छिन्न मस्तक कर देता है–

विद्राणे रणचत्वरादरिगणे त्रस्ते समस्ते पुनः
कोपात् कोऽपि निवर्त्तते यदि भटः कीर्त्त्या जगत्युद्भटः।
आगच्छन्नपि सम्मुखं विमुखतामेवाधिगच्छत्यसौ
द्रागेतच्छुरिकारयेण ठणिति च्छिनापसर्पच्छिराः॥[32]

प्राचीन काल में अस्त्रायुधों में धनुषबाण का अत्यधिक महत्त्व था। जिसकी चर्चा में कवि लिखता है- राजा नल अद्भुत धनुर्धारी था। रणक्षेत्र में उसके बाणों से शताधिक शत्रु मरते थे। नल के बाणों की वर्षा से अन्य राजाओं के तेज बुझ जाते थे–

स्फुरद्धनुर्निस्वनतद्घनाशुगप्रगल्भवृष्टिव्ययितस्य सङ्गरे।
निजस्य तेजश्शिखिनः परश्शता वितेनुरङ्गारमिवायशः परे॥[33]

महाकवि श्रीहर्ष ने इस अस्त्र (बाण) का अनेकशः साहित्यिक वर्णन भी किया है। अस्त्रायुधों के सम्बन्ध में कवि ने मनुष्यों द्वारा अपनाये गये अस्त्रों के अतिरिक्त देवास्त्रों का भी प्रचुर वर्णन किया है। जिसमें भगवान् विष्णु का शंख, (पाञ्चजन्य) एवं सुदर्शन चक्र का भी वर्णन किया गया है।

पाञ्चजन्यमधिगत्य करेणापाञ्चजन्यमसुरानिव वक्षि।
चेतनाःस्थ किल पश्यत किं नाचेतनोऽपि मयि मुक्तविरोधः॥[34]

इस प्रकार महाकवि श्रीहर्ष ने राजधर्म के अंगभूत सैनिकों एवं अस्त्र-शस्त्र के प्रकारों का भी पर्याप्त वर्णन किया है, जिनका यहाँ कुछ उदाहरण दर्शाया गया।

राजा के गुण

वैदिक काल से ही स्वामी या शासक की आवश्यकता पर जोर दिया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में ऐसा निर्देश मिलता है कि कदाचित् अपनी व्यवस्था में उच्छृंखलता देख सभी देवों ने एकमत से राजा (नायक) का चयन किया।[35] इससे यह सिद्ध होता है कि राजा (नायक) जन-मानस की आवश्यकताओं का मूलभूत अङ्ग है।

राजधर्म के प्रमुख ग्रन्थ 'कौटिल्य अर्थशास्त्र में राजा कि अनिवार्यता पर प्रकाश डाला गया है

(दण्डः) अप्रणीता हि मात्स्यन्यायमुद्भावयति।
बलीयानबलं हि ग्रसते दण्डधराभावे॥[36]

इस हेतु दण्डनिर्धारणार्थ राजा की अनिवार्यता में कौटिल्य लिखते हैं–

मात्स्यन्यायामिभूता प्रजा मनुं वैवस्वतं राजानं चक्रिरे।[37]

मात्स्य न्याय से अभिभूत लोगों ने मनु वैवस्वत को अपना राजा बनाया।

मनुस्मृति के सप्तम अध्याय में भगवान् मनु ने राजा के गुणों, दायित्वों आदि का विस्तार से विवेचन किया है। सर्वप्रथम मनु ने चराचर जगत् में अराजकता के निवारणार्थ ब्रह्मा के द्वारा राजा की सृष्टि मानी है।

अराजके हि लोकेऽस्मिन्सर्वतो विद्रुते भयात्।
रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः।।[38]

राजा की उत्पत्ति मनु ने इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्र तथा कुबेर के नित्य अंश से मानी है।

इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च।
चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः।।[39]

सभी देवताओं के नित्य अंश से निर्मित राजा समस्त प्राणियों को अभिभूत करता है।

यस्मादेषां सुरेन्द्राणां मात्रभ्यो निर्मितो नृपः।
तस्मादभिभवत्येष सर्वभूतानि तेजसा।।[40]

राजा का प्रभावशाली होना अनिवार्य है तभी वह समस्त वर्गों पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर सकता है। इसलिये भगवान् मनु ने राजा को वायु रूप, सूर्य रूप, चन्द्र रूप, धर्मराज (यम) रूप, एवं कुबेर रूप माना है।

सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः स धर्मराट्।
स कुबेरः स वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः।।[41]

मनु ने राजा को पृथ्वी पर रहने वाला देवता माना है।

महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति।।[42]

मनुस्मृति में उस राजा को सर्वतेजोमय माना है जिसकी प्रसन्नता में लक्ष्मी का निवास हो, पराक्रम में विजय हो क्रोध में मृत्यु का निवास हो।

यस्य प्रसादे पद्मा श्रीर्विजयश्च पराक्रमे।
मृत्युश्च वसति क्रोधे सर्वतेजोमयो हि सः।।[43]

राज्य में शान्ति-व्यवस्था बनाये रखने के लिए राजा दण्ड का प्रयोग करता है। दण्ड को चारों आश्रमों के धर्म का प्रतिभू कहा गया है।

स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः।
चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः।।[44]

राजा के गुणों का विवेचन करते हुए मनु ने कहा हैं कि राजा को दण्ड का प्रयोग विचारपूर्वक करना चाहिये क्योंकि बिना विचार किये प्रयुक्त दण्ड विनाशक होता है।

समीक्ष्य स धृतः सम्यक्सर्वा रञ्जयति प्रजाः।
असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः।।[45]

राजा को न्याय में आलस्य नहीं करना चाहिये। दण्ड का प्रयोग करने के लिये राजा के गुणों को बताते हुये मनु ने कहा है कि राजा को सत्यवादी, विचार-विमर्श करने वाला, बुद्धिमान् और धर्म, अर्थ, काम का ज्ञाता होना चाहिये।

तस्याहुः संप्रणेतारं राजानं सत्यवादिनम्।
समीक्ष्यकारिणं प्राज्ञं धर्मकामार्थकोविदम्।।[46]

इसका कारण बताते हुए मनु ने स्पष्ट किया है कि विजयाभिलाषी, क्रोधी, क्षुद्र राजा दण्ड के द्वारा ही मारा जाता है।

तं राजा प्रणयन्सम्यक् त्रिवर्गेणाभिवर्धते।
कामात्मा विषमः क्षुद्रो दण्डेनैव निहन्यते।।[47]

राजा अगर असहाय, मूर्ख, लोभी, शास्त्र-ज्ञान से हीन तथा विषयासक्त हो तो वो दण्ड का समुचित प्रयोग नहीं कर पाता है।

सोऽसहायेन मूढेन लुब्धेनाकृतबुद्धिना।
न शक्यो न्यायतो नेतुं सक्तेन विषयेषु च।।[48]

उचित तथा न्यायपूर्वक दण्ड देने के लिये धनादि के विषय में शुद्ध, सत्य प्रतिज्ञ, शास्त्रनुसार व्यवहार करने वाला, अच्छे सहायकों वाला और बुद्धिमान होना चाहिये।

शुचिना सत्यसन्धेन यथाशास्त्रानुसारिणा।
प्रणेतुं शक्यते दण्डः सुसहायेन धीमता।।[49]

जो राजा न्यायपूर्वक दण्ड प्रयोग वाला, शिलोञ्छ वृत्ति से जीविकार्जन करने वाला होता है उसकी प्रसिद्धि पानी में तेल की बूंद के समान संसार में फैलती है।

एवं वृत्तस्य नृपतेः शिलोञ्छेनापि जीवतः।
विस्तीर्यते यशो लोके तैलबिन्दुरिवाम्भसि।।[50]

मनु राजा के गुणों पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि राजा को वृद्ध, वेदज्ञाता, शुद्ध हृदय वाले उन बाह्मणों की सेवा शुश्रूषा करनी चाहिये, क्योंकि वृद्धों की सेवा करने वाले की राक्षस भी पूजा करते हैं।

वृद्धांश्च नित्यं सेवेत विप्रान्वेदविदः शुचीन्।
वृद्धसेवी हि सततं रक्षोभिरपि पूज्यते।।[51]

राजा को प्रजा के साथ सदैव विनम्रता का प्रयोग करना चाहिये। अविनय का आचरण करने वाला राजा शीघ्र नष्ट हो जाता है। अतः राजा को विनम्रता का पाठ ब्राह्मणों से सीखना चाहिये।

तेभ्योऽधिगच्छेद्विनयं विनीतात्मापि नित्यशः।
विनीतात्मा हि नृपतिर्न विनश्यति कर्हिचित्।।[52]

राजा को त्रिवेदों के ज्ञाता विद्वानों से त्रयी विद्या, नित्य दण्डनीति विद्या, आन्वीक्षिकी विद्या और लोक व्यवहार से वार्ता विद्या सीखनी चाहिये।

त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीतम्।
आन्वीक्षिकीं चात्मविद्यां वार्तारम्भांश्च लोकतः।।[53]

राजा का एक अन्य अनिवार्य गुण जितेन्द्रिय होना भी माना गया है। क्योंकि जितेन्द्रिय राजा ही प्रजा को वश में रखने में समर्थ होता है।

इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवाशिनम्।
जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः।।[54]

राजा को कामज दश तथा क्रोधज आठ अवगुणों का परित्याग कर देना चाहिये।

दश कामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च।
व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत्।।[55]

इस प्रकार उपरोक्त गुणों से युक्त राजा राज्य का कुशल सञ्चालन करता हुआ राष्ट्र को उत्तरोत्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर करता है।

नैषध में वर्णित राजा नल

महाकवि श्रीहर्षविरचित नैषधीयचरित महाकाव्य का नायक राजा नल स्मृति-धर्मशास्त्र-राजनीतिशास्त्र में वर्णित राजा के सभी सद्गुणों से पूर्ण दिखलाई देता है। महाकाव्य में राजा नल का चरित्र प्रारम्भ से लेकर अंन्त तक एक रूप में रहता है। नैषध के राजा नल के प्रत्येक गुणों को विभिन्न अवान्तर उपशीर्षकों के माध्यम से वर्णित किया जा सकता है। राजा के कर्मों में मुख्य कर्म होते हैं प्रजा एवं राज्य का संरक्षण अभ्यागत अतिथियों की सेवा इत्यादि।

कवि ने राजा नल के इन गुणों को उनके दौत्यकार्य रूप में परिलक्षित किया है। साधु-वेश में पधारे (वायु, अग्नि इन्द्र वरुण) देवताओं ने उनसे यह वचन ले लिया

था कि वे उनकी याचना पूर्ण करेंगे। इस प्रकार राजा नल को वचनबद्ध करके वे इन्द्रादि छद्म वेषधारी साधु दौत्यकार्य के लिए राजा से निवेदन करते हैं–

पाणिपीडनमहं दमयन्त्याः कामयेमहि महीमिहिकांशो!।
दूत्यमत्र कुरु नः स्मरभीतिं निर्जितस्मर! चिरस्य निरस्य।।[56]

किन्तु इस कार्य के लिए अपनी असमर्थता बताते हुवे नल देवताओं से क्षमा याचना करते हैं।[57] किन्तु देवों के अनेक तर्क युक्त वचनों से वे अपने इस दौत्य कर्म में इतने कर्तव्य निष्ठ हो जाते हैं[58] कि दमयन्ती के प्रति अपना अनुराग त्याग देते हैं–

इत्याकर्ण्य क्षितीशस्त्रिदशपरिषदस्ता गिरश्चाटुगर्भा
वैदर्भीकामुकोऽपि प्रसभविनिहितं दूत्यभारं बभार।
अङ्गीकारं गतेऽस्मिन्नमरपरिवृढः संभृतानन्दमूचे
भूयादन्तर्धिसिद्धेरनुविहितभवच्चित्तता यत्र तत्र।।[59]

राजा नल कर्तव्यनिष्ठ होकर दूत-कार्य की पूर्णता हेतु दत्त-चित्त हो जाते हैं। जिसका सजीव चित्रण महाकवि श्रीहर्ष ने काव्य में किया है। कुण्डिनपुर में पधारे देवदूत राजा नल ने अपना परिचय दिया–

हरित्पतीनां सदसः प्रतीहि त्वदीयमेवातिथिमागतं माम्।
वहन्तमन्तर्गुरुणादरेण प्राणानिव स्वःप्रभुवाचिकानि।।[60]

नल ने बड़े ही शिष्टवचनों से दमयन्ती को सूचित किया कि वह इन्द्रादि दिग्पालों का संदेशवाहक बनकर दमयन्ती के समीप ही आया है। इस प्रकार उसने दो प्रश्नों का उत्तर दिया कि वह कहाँ से आया है और किसके निकट आया है संदेश वचनों को प्राणतुल्य धारण करता कहकर स्वामी के प्रति आदर प्रकट किया है।

दमयन्ती एवं उसकी सखियों द्वारा आतिथ्य-वचन प्रसंग में एक-कर्म निष्ठ राजा नल कहता है, यदि मेरा दूतकार्य सफल बनायेंगी तो वही मेरा अतिथिसत्कार होगा–

विरम्यतां भूतवती सपर्या निविश्यतामासनमुज्झितं किम्।
या दूतता नः फलिना विधेया सैवातिथेयी पृथुरुद्भवित्री।।[61]

यहाँ यह ध्यातव्य है कि कुण्डिनपुर में पधारे राजा नल ने वहाँ का सौन्दर्य, दमयन्ती का अपने प्रति गाढानुराग इन सब बातों को त्याग कर एक-कर्मनिष्ठ दूतकार्य में ही अपना श्रेय समझा।

देवदूत राजा नल सामान्यशिष्टाचार में दमयन्ती का कुशल क्षेम पूछकर तुरन्त अपने अभीष्ट कार्य की ओर वाणी मोड़ लेते हैं।

कल्याणि! कल्यानि तवाङ्गकानि कच्चित्तमां चित्तमनाविलं ते।
अलं विलम्बेन गिरं मदीयामाकर्णयाकर्णतटायताक्षि।।[62]

देवकार्य के निमित्त आये राजा नल दमयन्ती के सम्मुख होकर चारों (इन्द्र, अग्नि, यम, वरुण) देवताओं की भूरिशः प्रशंसा करते हैं। अन्त में वे देवों के वचन को उपस्थापित करते हुवे कहते हैं कि–तेरे चाहने वाले सहस्राधिक हों, किन्तु देवताओं का मानना है कि हमारे प्राण तो दमयन्ती के चरणों की प्रसन्नता हैं–

त्वदर्थिनः सन्तु परस्सहस्राः प्राणास्तु नस्त्वच्चरणप्रसादः।
विशङ्कसे कैतवनर्तितश्चेदन्तश्चरः पञ्चशरः प्रमाणम्।।[63]

देवदूत रूप में नल आगे कहता है कि शिव के शाप वश कामदेव के भस्म हो जाने से धनुष बाण और मकरध्वज भी नष्ट हो गया। अतएव आज वह संसार में 'मनसिज' नाम से जाना जाता है किन्तु यदि दमयन्ती द्वारा देवों का वरण हो सके तो काम का देव-मानस में पुनर्जन्म हो जायेगा–

प्लुष्टश्चापेन रोपैरपि सह मकरेणात्मभूः केतुनाऽभू-
द्धत्तां नस्त्वत्प्रसादादथ मनसिजतां मानसो नन्दनः सन्।
भ्रूभ्यां ते तन्वि! धन्वी भवतु तव सितैर्जैत्रभल्लः स्मितैस्ता-
दस्तु त्वन्नेत्रचञ्चत्तरशफरयुगाधीनमीनध्वजाङ्कः।।[64]

इस प्रकार कर्तव्यनिष्ठ राजा नल ने अपने उत्तर दायित्वों के निर्वाह में स्वयं को गुप्त रखा तथा अनेक उपायों के माध्यम से (साम, दाम, दण्ड, भय) नीतियों के द्वारा दमयन्ती का मन देवों के प्रति आकृष्ट करना चाहा, किन्तु दमयन्ती के हृदय विदारक करुण क्रन्दन को सुन वह स्वयं प्रकट हो गया।

यद्यपि राजा नल अपने दौत्य कर्म में असफल होता है किन्तु उसकी कर्म निष्ठता इस दौत्य कर्म में पूर्णतया लक्षित होती है।

राजनीतिज्ञों द्वारा प्रतिपादित राजा के समस्त गुणों से नैषध महाकाव्य का सच्चरित्र नायक राजा नल परिपूर्ण है। राजा को पुण्यात्मा एवं विद्वान् होना आवश्यक है। इस सन्दर्भ में कवि राजा नल का ब्रर्णन करता है–

निपीय यस्य क्षितिरक्षिणः कथां तथाद्रियन्ते न बुधास्सुधामपि।
नलस्सितच्छत्रितकीर्तिमण्डलः स राशिरासीन्महसां महोज्ज्वलः।।[65]
अधीतिबोधाचरणप्रचारणैर्दशाश्चतस्त्रः प्रणयन्नुपाधिभिः।
चतुर्दशत्वं कृतवान् कुतः स्वयं न वेद्मि विद्यासु चतुर्दशस्वयम्।।[66]

महाराजा नल की शूरवीरता के प्रसंग में कवि लिखता है कि राजा नल के पराक्रम से धरती पर अतिवृष्टि आदि आपदाएँ नहीं थीं और नहीं अन्य राजा उस पर आक्रमण का साहस ही कर पाते थे। सभी शत्रुओं को उसने पराजित कर दिया था अतएव ये सारी आपत्तियाँ आँसुओं के रूप में शत्रुदल की नारियों के नेत्रों में बसी थीं।

निवारितास्तेन महीतलेऽखिले निरीतिभावं गमितेऽतिवृष्टयः।

न तत्यजुर्नूनमनन्यसंश्रयाः प्रतीपभूपालमृगीदृशां दृशः।।[67]

राजा के गुणों में त्याग एवं दान का भी अत्यधिक महत्त्व है। इस सम्बन्ध में कवि ने अपने सच्चरित्र नायक राजा नल के दान एवं त्याग का अतिशय मनोरम वर्णन किया है–

अयं दरिद्रो भवितेति वैधसीं लिपिं ललाटेऽर्थिजनस्य जाग्रतीम्।

मृषा न चक्रेऽल्पितकल्पपादपः प्रणीय दारिद्र्यदरिद्रतां नृपः।।

विभज्य मेरुर्न यदर्थिसात्कृतो न सिन्धूरुत्सर्गजलव्ययैर्मरुः।

अमानि तत्तेन निजायशोयुगं द्विफालबद्धाश्चिकुराशिशरस्स्थितम्।।[68]

राजा का दयालु, कारुणिक तथा उदार होना भी आवश्यक गुण माना गया है। इन तीनों गुणों का समावेश राजा नल में दिखता है, जब वे हंस के करुण-क्रन्दन पर उसे विनिर्मुक्त करते है।

इत्त्थममुं विलपन्तममुञ्चद्दीनदयालुतयाऽवनिपालः।

रूपमदर्शि धृतोऽसि यदर्थं गच्छ यथेच्छमथेत्यभिधाय।।[69]

करुणा के प्रतिमूर्ति नल जो धरतीमात्र के पालनहार थे। वे बेचारे हंस को कैसे बन्धन में रख सकते थे। उन्होंने हंस से यह कहकर कि तुम्हारा रूप दिख गया, जिसके लिए तुम्हें पकड़ लिया था- हंस को छोड़ दिया।

राजा में शत्रुओं के प्रति भयोत्पादक गुण का होना भी अनिवार्य बतलाया गया है। इस सन्दर्भ में कवि कहता है कि राजा नल के भय से शत्रुओं ने प्राणरक्षणार्थ दिशाओं का लंघन किया, अर्थात् राजा के भय से वे शत्रुदल भाग निकले–

द्विषद्भिरेवास्य विलङ्घिता दिशो

यशोभिरेवाब्धिरकारि गोष्पदम्।

इतीव धारामवधार्य्य मण्डली-

क्रियाश्रियाऽमण्डि तुरङ्गमैः स्थली।।[70]

राजा के गुणों में कपटाचार-व्यवहार का भी विशेष महत्त्व है। राजा नल तो अत्यन्त कुशल शासक था, उसकी विद्या भी 'रसनाग्रनर्तकी' थी, इस निमित्त वह इन्द्र

के कपट व्यवहार को जान लिया और उनके उस कपट-व्यवहार का वह भी छलपूर्वक उत्तर देने को तैयार हुआ–

तेन तेन वचसैव मघोनः स स्म वेद कपटं पटुरुच्चैः।
आचरत्तदुचितामथ वाणीमार्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः॥[71]

राजा को सैन्य बल के साथ-साथ चरित्र-बल से युक्त होना भी परम आवश्यक गुण माना गया है।

राजा के चारित्रिक गुण की व्यञ्जना में कवि वर्णन करता है कि अन्तःपुर में किसी का आँचल वायु से उड़ गया और उसके स्तन दिखने लगे, किन्तु चारित्रिक गुण सम्पन्न राजा नल ने अपना मुख मोड़ लिया।

पश्यन् स तस्मिमरुतापि तन्व्याः स्तनौ परिस्प्रष्टुमिवास्तवस्त्रौ।
अक्षान्तपक्षान्तमृगाङ्कमास्यं दधार तिर्यग्वलितं विलक्षः॥[72]

इस प्रकार राजा के प्रत्येक सद्गुणों का समावेश श्रीहर्ष के सच्चरित्र नायक राजा नल में परिलक्षित होता है अतएव 'नीरक्षीरविवेकी' हंस राजा नल की प्रशंसा में कहता है–

क्रियेत चेत्साधुविभक्तिचिन्ता व्यक्तिस्तदा सा प्रथमाभिधेया।
या स्वौजसां साधयितुं बिलासैस्तावत्क्षमा नामपदं बहु स्यात्॥[73]

यदि सज्जनों के विभाग की विचारणा की जाय तो वह व्यक्ति (नल) प्रथम कहा जायेगा, जो कि अपने बल पराक्रम के प्रभाव से अनेक शत्रुओं को अपने अधीन करने में समर्थ है।

इस प्रकार राजधर्मोचित राजा के प्रत्येक गुणों से महाकाव्य का नायक राजा नल पूर्ण है।

राजा का प्रजा के प्रति कर्त्तव्य

नैषध में प्रतिपादित राजा के कर्त्तव्यों पर विचार करने से पूर्व हमारे धर्मशास्त्रों में वर्णित राजा के दायित्वों पर एक दृष्टिपात करना समीचीन ही प्रतीत होता है। भारतीय धर्मशास्त्र के इतिहास में उपलब्ध प्राचीनतम स्मृति-ग्रन्थ 'मनुस्मृति' राजशास्त्र की दृष्टि से भी अति महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। भगवान् मनु ने सप्तम अध्याय में राजा का सर्वप्रथम कर्त्तव्य प्रजा-रक्षण को बतलाया है।

ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि।
सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्त्तव्यं परिरक्षणम्॥[74]

राजा का धर्म है कि राज्य में शक्तिशाली एवं बलहीनों दोनों को समान प्रगति का अवसर उपलब्ध कराये। शक्तिवानों से शक्तिहीनों के रक्षण हेतु ही राजा की सृष्टि भगवान् ने की है।

अराजके हि लोकेऽस्मिन्सर्वतो विद्रुते भयात्।
रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः॥[75]

राजा को प्रत्येक कार्य का विचार करके तदनुसार अनेक रूप धारण करना चाहिये।

कार्यं सोऽवेक्ष्य शक्तिं च देशकालौ च तत्त्वतः।
कुरुते धर्मसिद्ध्यर्थं विश्वरूपं पुनः पुनः॥[76]

अर्थात् किसी कार्य को करने से पूर्व शक्ति तथा देश-काल का विचार अनिवार्य है।

मनु आगे कहते हैं कि भगवान् ने राजा को जो प्रजा-रक्षण का कार्य दिया है उसमें राजा के सहायतार्थ 'दण्ड' की उत्पत्ति ब्रह्मा द्वारा की गई है।

तस्यार्थे सर्वभूतानां गोप्तारं धर्ममात्मजम्।
ब्रह्मतेजोमयं दण्डमसृजत्पूर्वमीश्वरः॥[77]

दण्ड के भय से ही राज्य में व्यवस्था बनी रहती है। सभी अपने-अपने कार्य में प्रवृत्त होते हैं तथा स्वपथ से विचलित नहीं होते हैं।

तस्य सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च।
भयाद्भोगाय कल्पन्ते स्वधर्मान्न चलन्ति च॥[78]

यहाँ राजा को पूर्ण सावधान रहना चाहिये। राजा का परम कर्त्तव्य है कि दण्ड देते समय देश-काल, दण्ड शक्ति, और अपराध का सम्यक् विचार कर ले।

तं देशकालौ शक्तिं च विद्यां चावेक्ष्य तत्त्वतः।
यथार्हतः संप्रणयेन्नरेष्वन्यायवर्तिषु॥[79]

मनु ने इस ओर राजा को संकेत देते हुए कहा है कि राजा को अपनै राज्य में न्यायानुसार दण्ड प्रयोग करना चाहिए। शत्रुओं के देश में कठोर दण्ड का प्रयोग करना चाहिये। स्वाभाविक मित्रों में सरल व्यवहार करना चाहिये तथा ब्राह्मणों में क्षमा को धारण करना चाहिये।

स्वराष्ट्रे न्यायवृत्तः स्याद् भृशदण्डश्च शत्रुषु।
सुहृत्स्वजिह्मः स्निग्धेषु ब्राह्मणेषु क्षमान्वितः॥[80]

राजा का राज्य के प्रति एक अन्य महत्त्वपूर्ण दायित्व स्पष्ट करते हुए भगवान् मनु लिखते हैं कि राजा का परम कर्त्तव्य है कि अपने-अपने धर्म में संलग्न वर्णों तथा आश्रमों की रक्षा का प्रबन्ध करे।

स्वे स्वे धर्मे निविष्टानां सर्वेषामनुपूर्वशः।
वर्णानामाश्रमाणां च राजा सृष्टोऽभिरक्षिता।।[81]

राजा को प्रातः उठकर वेदों के ज्ञाता तथा विद्वान् ब्राह्मणों की सेवा करनी चाहिये तथा उनके परामर्शानुसार ही राज्य-सञ्चालन करना चाहिये।

ब्राह्मणान्पर्युपासीत प्रातरुत्थाय पार्थिवः।
त्रैविद्यवृद्धान्विदुषस्तिष्ठेत्तेषां च शासने।।[82]

राजा को वृद्ध ब्राह्मणों की भी सेवा शुश्रूषा करनी चाहिये। तात्पर्य यह है कि राजा को स्वयं को हर प्रकार से योग्य बनाना चाहिये क्योंकि 'यथा राजा तथा प्रजा' की उत्त्यनुसार प्रजा राजा का ही अनुवर्तन करती है।

महाकवि श्रीहर्ष विरचित नैषधीयचरित महाकाव्य से यह ज्ञात होता है कि काव्य का नायक राजा नल अपने राज्य में शान्ति व्यवस्था बनाये रखने में पूर्ण समर्थ था। प्रजा के सुख एवं समृद्धि के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहता था। कवि कहता है कि राजा नल प्रजा के सुख एवं राज्य की समृद्धि के लिए षड्विध ईतियों को अपने शौर्य से समाप्त कर दिया था–

निवारितास्तेन महीतलेऽखिले निरीतिभावं गमितेऽतिवृष्टयः।
न तत्यजुर्नूनमनन्यसंश्रयाः प्रतीपभूपालमृगीदृशां दृशः।।[83]

राजा नल पुण्यात्मा सदाचारी और महान् पराक्रमी था। न तो उसके कारण इस धरती पर अतिवृष्टि आदि आपदाएँ रह गयी थीं और न अन्य राजा-गण उस पर आक्रमण का ही साहस कर पाते थे। सभी शत्रुओं को उसने पराजित कर दिया था, अतएव अतिवृष्टि आसुँओं के रूप में रिपुनारिओं के नेत्रों में जा बसी थी।

प्रजा-रक्षण के कार्य हेतु राजा को दण्ड का भी आश्रय लेना आवश्यक है किन्तु राजा का परम कर्त्तव्य है कि वह दण्ड देने में देश-काल, दण्डशक्ति और अपराध का सम्यक् विचार कर ले। राजा नल इस प्रकार अपने विचार चक्षु एवं गुप्तचरों के माध्यम से प्रजा के हितैषी कार्यों की सफलता में सदा लगा रहता था। किसी भी प्रकार से प्रजा पर अन्याय नहीं हो सकता था–

प्रतीपभूपैरिव किं ततो भिया विरुद्धधर्मैरपि भेत्तृतोज्झिता।
अमित्रजिन्मित्रजिदोजसा स यद्विचारदृक्चारदृगप्यवर्तत।।[84]

प्रजा के प्रति दायित्त्वों में राजा का परम धर्म यह होता है कि उसकी प्रजा सर्वविध कुशल हो उसके अन्दर किसी भी प्रकार का कोई दारिद्र्य भाव न हो, तदर्थ उसे निरन्तर परिश्रम करना चाहिए, तथा उन निर्धन अन्तर्वासी प्रजाओं को उचित दान देकर उनकी समृद्धि में सहायक बनना चाहिए–

विभज्य मेरुर्न यदर्थिसात्कृतो न सिन्धूरुत्सर्गजलव्ययैर्मरुः।
अमानि तत्तेन निजायशोयुगं द्विफालबद्धाश्चिकुराशिरस्स्थितम्।।[85]

राजा को नित्य प्रातः उठकर ब्राह्मणों की सेवा एवं वेदज्ञों की पूजा करनी चाहिए। इस राजधर्म के प्रसंग को महाकवि श्रीहर्ष ने भी अपने काव्य में उद्धृत किया है–

अजस्त्रमभ्यासमुपेयुषा समं मुदैव देवः कविना बुधेन च।
दधौ पटीयान् समयं नयन्नयं दिनेश्वरश्रीरुदयं दिने दिने।।[86]

वह राजा नल निरन्तर काव्याभ्यास करते हुवे कवि शुक्राचार्य और विद्वान् वैयाकरण बुध के साथ समय व्यतीत करता था।

नीतिज्ञों का ऐसा मानना है कि राजा को अपने विश्वस्त व्यक्ति की हत्या नहीं करनी चाहिए। प्रजा को भयमुक्ति प्रदान कर उसकी हत्या या उसके साथ दुर्व्यवहार नहीं करना चाहिए।

महाकवि श्रीहर्ष ने इस प्रसंग में लिखा है कि हंस राजा नल से निवेदन करता है कि हे राजन्! तुम्हें देखकर मेरे मन में विश्वास जग गया था, अतः मेरी हत्या केवल जीवहिंसा नहीं है। विश्वास प्राप्त शत्रुओं को मारने की धर्मात्माओं ने विशेष निन्दा की है–

न केवलं प्राणिवधो वधो मम त्वदीक्षणाद्विश्वसितान्तरात्मनः।
विगर्हितं धर्मधनैर्निबर्हणं विशिष्य विश्वासजुषां द्विषामपि।।[87]

आज भी प्रायः यह न्यायालयीय व्यवस्थाओं में देखा जाता है कि जो अपराधी राजा पर विश्वास कर आत्म-समर्पण कर देता है। उसकी हत्या नहीं की जाती।

राजा को अपनी प्रजा के प्रति सदा सौहार्द की भावना रखनी चाहिए। प्रजा की समस्याओं को सुन कर सुविचार करके उनके साथ समुचित व्यवहार करना चाहिए।

राजा नल के प्रसंग में इस बिन्दु का पालन उस समय दिखता है जब विलपते हंस को दीनों पर दयालु होने के कारण पृथ्वीपाल राजा नल ने यह कहकर कि "तुम्हारा रूप दिख गया, जिसके निमित्त तुम्हें पकड़ लिया था"–

हंस को छोड़ दिया–

इत्थममुं विलपन्तममुञ्चद्दीनदयालुतयाऽवनिपालः।
रूपमदर्शि धृतोऽसि यदर्थं गच्छ यथेच्छमथेत्यभिधाय।।[88]

राजा को प्रजा के सुख-सौविध्य के लिए कूप तडागादि का निर्माण करना चाहिए। ऐसा राजधर्म का निर्देश है। इसका वर्णन महाकवि श्रीहर्ष करते हैं–

इष्टेन पूर्तेन नलस्य वश्याः स्वर्भोगमत्रापि सृजन्त्यमर्त्याः।
महीरुहो दोहदसेकशक्तेराकालिकं कोरकमुद्गिरन्ति।।[89]

'स्वर्भोगभाग्य' पुण्य कृत्यो से बनता है। यज्ञ, कूप, तडाग आदि के निर्माण से प्रसन्न होकर देवगण मनुष्य को भूलोक में ही स्वर्ग-सुख सौभाग्य उपलब्ध कर देते हैं।

इस प्रकार महाकवि श्रीहर्ष के इस महाकाव्य में महाराजा नल यज्ञादि क्रियाओं से देवताओं को तथा कूपतडागादि के निर्माण से प्रजाजनों को प्रसन्न कर स्वर्लोक का सुख भोगते थे। राजा नल द्वारा प्रजा के प्रत्येक जीवों के प्रति किया गया शास्त्रोचित व्यवहार दिखलाई देता है।

प्रजा का राजा के प्रति दायित्व

मनुस्मृति के सप्तम अध्याय में भगवान् मनु ने राजधर्म का निरूपण किया है। राजा को किस प्रकार का आचरण, व्यवहार करना चाहिये जिससे राष्ट्र की निरन्तर प्रगति हो सके। राजा के कर्त्तव्यों के प्रतिपादन प्रसङ्ग में भगवान् मनु ने प्रजा के राष्ट्र के प्रति दायित्वों पर भी प्रकाश डाला है। वास्तव में किसी राष्ट्र की प्रगति वहाँ की प्रजा पर निर्भर करती है। प्रजा का सर्वप्रथम कर्त्तव्य है कि वह अपने राजा का सम्मान करे। राजा यदि बालक हो तो भी उसका अपमान नहीं करना चाहिये। क्योंकि राजा पृथ्वी पर देवता स्वरूप होता है।

बालोऽपि नावमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः।
महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति।।[90]

जो व्यक्ति अज्ञानता के कारण राजा से द्वेष करता है। उसका विनाश निश्चित है, क्योंकि राजा उसके विनाश के लिये अपने मन को नियुक्त कर देता है।

तं यस्तु द्वेष्टि संमोहात्स विनश्यत्यसंशयम्।
तस्य ह्याशु विनाशाय राजा प्रकुरुते मनः।।[91]

मनु का कहना है कि राजा यदि राष्ट्र में किसी नयी व्यवस्था अथवा नीति को लागू करता है तो उसका पालन सबको करना चाहिये। उस व्यवस्था का उल्लंघन किसी को नहीं करना चाहिये।

तस्माद्धर्मं यमिष्टेषु स व्यवस्येन्नराधिपः।
अनिष्टं चाप्यनिष्टेषु तं धर्मं न विचालयेत्।।[92]

जिस राज्य की प्रजा निष्ठावान्, बुद्धिमान्, सेवाधर्मी, विश्वासपात्र एवं सरल हृदय वाली होती है। वह राष्ट्र निरन्तर उन्नति के पथ पर अग्रसर होता है। प्रजा का सर्वप्रथम दायित्व यह है कि यदि राष्ट्र पर कोई संकट आये तो अपना व्यक्तिगत स्वार्थ छोड़कर राष्ट्रहित में अपना सर्वस्व त्याग दे। वही राष्ट्र स्थायी रहता है। वही राष्ट्र आस-पास के भू-भागों पर अपना प्रभाव स्थापित करता है। उस राष्ट्र के शत्रुराष्ट्र भी उससे भयभीत रहते हैं तथा मित्र-राष्ट्र भी उसका सम्मान करते हैं।

महाकवि श्रीहर्ष ने भी राजधर्मो में प्रतिपादित राजा के प्रति प्रजा के कर्तव्यों का पूर्ण परिचय प्रस्तुत किया है। स्वयंवर वर्णन प्रसंग में कवि कहता है कि उचित सेवक वही होता है जो अपने स्वामी के भावों को जान ले।

राजान्तराभिमुखमिन्दुमुखीमथैनां जन्याजना हृदयवेदितयैव निन्युः।
अन्यानपेक्षितविधौ न खलु प्रधानवाचां भवत्यवसरः सति भव्यभृत्ये।।[93]

राजाओं के परिचय प्रसंग में दमयन्ती के शिविकावाहक उसके मनोभावों को समझने के ही कारण बिना आदेश के ही कार्य-सम्पादन करने वाले चतुर सेवक थे। क्योंकि वे अपनी महिषी के मनोगत भावों को समझकर ही कार्य सम्पन्न कर देते थे।

राजा द्वारा उपकृत प्रजा को राजा के प्रति विनम्र होना प्रजा का परम पुनीत कर्तव्य माना गया है। राजा यदि अपने कर्तव्यों में ढिलायी करके यदि कोई विशेष उपकार करे, तब तो उसके गुणों का बखान अवश्य ही प्रजा-जन को करना चाहिए। कवि भी इस प्रसंग में अपना मत प्रस्तुत करता है। हंस जब राजा नल द्वारा विनिर्मुक्त होता है तो कहता है–क्षत्रियों के लिए मृगया स्वाभाविक है, वह निन्दनीय नहीं होती अपितु उनका यह पुनीत कर्तव्य ही होता है किन्तु आपने जो मेरे ऊपर अपनी करुणा बरसायी है, उससे यह लक्षित होता है कि आप तनमात्र से ही सुन्दर नहीं, अपितु अन्तःकरण से भी शुद्ध हैं–

मृगया न विगीयते नृपैरपि धर्मागममर्मपारगैः।
स्मरसुन्दर! मां यदत्यजस्तव धर्मः स दयोदयोज्ज्वलः।।[94]

राजा के उपकार की भावना को सादर प्रणाम करके प्रजा द्वारा उसकी पुष्टि या समर्थन में कुछ प्रत्युपकार करना प्रजा का पुनीत कर्तव्य है, जिसे कवि ने हंस द्वारा प्रदर्शित किया है। राजा के पाश-बन्धन से निर्मुक्त हंस उसके इस उपकार से शिष्टशब्दों में प्रत्युपकार हेतु उद्यत होता है–

पतगेन मया जगत्पतेरुपकृत्यै तव किं प्रभूयते?।
इति वेद्मि, न तु त्यजन्ति मां तदपि प्रत्युपकर्तुमर्त्तयः।।[95]

अर्थात् हे जगत्पति! चक्रवर्ती नरेश मैं एक निरीह पक्षी आपका क्या उपकार कर सकता हूँ तथापि प्रत्युपकार करने की तीव्रतम आकुलताएँ मुझे बाध्य कर रहीं हैं, क्योंकि उपकार का प्रत्युपकार यदि अविलम्ब अपने संसाधनों द्वारा किया जाता है तो वह प्रत्युपकार छोटा हो या बड़ा इसकी विशेष चर्चा नहीं होती–

अचिरादुपकर्तुराचरेदथवात्मौपयिकीमुपक्रियाम्।

पृथुरित्थमथाणुरस्तु सा न विशेषे विदुषामिह ग्रहः।।[96]

यद्यपि नैषधीयचरितम् विशुद्ध रूप से शृङ्गारपरक काव्य है। शृङ्गार के समस्त अवयवों की चर्चा इस महाकाव्य में है। शृङ्गारिक काव्य होने के कारण कवि को राजधर्म निरूपण का पर्याप्त अवसर नहीं मिला है तथापि प्रसंगवश कवि ने यत्र-तत्र नल के उत्कर्ष वर्णन में राजधर्म का निरूपण किया है। प्रस्तुत अध्याय में प्राप्त सामग्री के आधार पर राजनैतिक-सन्दर्भों की चर्चा की गई है। जिसके अन्तर्गत राजधर्म, सेना, अस्त्र-शस्त्र, राजा का प्रजा के प्रति कर्तव्य एवं प्रजा का राजा के प्रति दायित्त्व आदि विषय वर्णित हैं।

संदर्भ सूची

1. मनुस्मृति, 7/1।
2. आपस्तम्ब, 2/5/10/6।
3. कौटिल्य, 15/11।
4. मनुस्मृति, 7/3।
5. मनुस्मृति, 7/37।
6. मनुस्मृति, 7/43।
7. मनुस्मृति, 7/15।
8. मनुस्मृति, 7/28।
9. मनुस्मृति, 7/107।
10. मनुस्मृति, 7/110।
11. मनुस्मृति, 7/54।
12. मनुस्मृति, 7/58।
13. मनुस्मृति,.7/56।
14. मनुस्मृति, 7/63-64।
15. मनुस्मृति, 7/66।
16. मनुस्मृति, 7/80।
17. मनुस्मृति, 7/79।

18. मनुस्मृति, 7/216।
19. नैषधीयचरित, 1/13।
20. नैषधीयचरित, 4/81।
21. नैषधीयचरित, 7/81।
22. नैषधीयचरित, 3/23-45।
23. नैषधीयचरित, 3/48।
24. नैषधीयचरित, 1/135।
25. नैषधीयचरित, 12/37।
26. नैषधीयचरित, 20/132।
27. नैषधीयचरित, 1/128।
28. मनुस्मृति, 7/109।
29. नैषधीयचरित, 5/15।
30. नैषधीयचरित, 1/12।
31. नैषधीयचरित, 16/19।
32. नैषधीयचरित, 12/30।
33. नैषधीयचरित, 1/9।
34. नैषधीयचरित, 21/84।
35. ऐतरयब्राह्मण, 1/14।
36. कौटिल्य अर्थशास्त्र, 1/4।
37. कौटिल्य अर्थशास्त्र, 1/13।
38. मनुस्मृति, 7/3।
39. मनुस्मृति, 7/4।
40. मनुस्मृति, 7/5।
41. मनुस्मृति, 7/7।
42. मनुस्मृति, 7/8.2।
43. मनुस्मृति, 7/11।
44. मनुस्मृति, 7/17।
45. मनुस्मृति, 7/19।
46. मनुस्मृति, 7/26।
47. मनुस्मृति, 7/27।
48. मनुस्मृति, 7/30।
49. मनुस्मृति, 7/31।

50. मनुस्मृति, 7/33।
51. मनुस्मृति, 7/38।
52. मनुस्मृति, 7/39।
53. मनुस्मृति, 7/43।
54. मनुस्मृति, 7/44।
55. मनुस्मृति, 7/45।
56. नैषधीयचरित, 5/99।
57. नैषधीयचरित, 5/100-105।
58. नैषधीयचरित, 5/115-136।
59. नैषधीयचरित, 5/137।
60. नैषधीयचरित, 8/55।
61. नैषधीयचरित, 8/56।
62. नैषधीयचरित, 8/57।
63. नैषधीयचरित, 8/94।
64. नैषधीयचरित, 8/105।
65. नैषधीयचरित, 1/1।
66. नैषधीयचरित, 1/4।
67. नैषधीयचरित, 1/11।
68. नैषधीयचरित, 1/15,16।
69. नैषधीयचरित, 1/143।
70. नैषधीयचरित, 1/72।
71. नैषधीयचरित, 5/103।
72. नैषधीयचरित, 6/18।
73. नैषधीयचरित, 3/23।
74. मनुस्मृति, 7/2।
75. मनुस्मृति, 7/3।
76. मनुस्मृति, 7/10।
77. मनुस्मृति, 7/14।
78. मनुस्मृति, 7/15।
79. मनुस्मृति, 7/16।
80. मनुस्मृति, 7/32।
81. मनुस्मृति, 7/35।

82. मनुस्मृति, 7/37।
83. नैषधीयचरित, 1/11।
84. नैषधीयचरित, 1/13।
85. नैषधीयचरित, 1/16।
86. नैषधीयचरित, 1/17।
87. नैषधीयचरित, 1/131।
88. नैषधीयचरित, 1/143।
89. नैषधीयचरित, 3/21।
90. मनुस्मृति, 7/8।
91. मनुस्मृति, 7/12।
92. मनुस्मृति, 7/13।
93. नैषधीयचरित, 11/34।
94. नैषधीयचरित, 2/9।
95. नैषधीयचरित, 2/13।
96. नैषधीयचरित, 2/14।

✦

उपसंहार

महाकवि श्रीहर्ष विरचित नैषधीयचरित महाकाव्य का संस्कृत साहित्य की 'बृहत्त्रयी' के तृतीय घटक के रूप में ग्रहण किया गया है। संस्कृत साहित्य में बृहत्त्रयी के अन्तर्गत किरातार्जुनीय शिशुपालवध एवं नैषधीयचरित की परिकल्पना है। नैषधीयचरित किरातार्जुनीय तथा शिशुपालवध की अपेक्षा विस्तृत तथा अधिक ग्रन्थि महाकाव्य है। पारम्परिक समीक्षा में इसे विद्वज्जनों द्वारा समादरणीय एवं विचित्र मार्ग का सर्वोत्कृष्ट निदर्शन माना गया है। आधुनिक दृष्टि से भी नैषध अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें भारवि या उनसे कुछ पूर्व अङ्कुरित हुई एक पृथक् काव्यसरणि पल्लवित, पुष्पित एवं फलित रूप में एकत्र समुपलब्ध हो जाती है।

संस्कृत साहित्याकाश में श्रीहर्ष नाम के तीन व्यक्ति पाये जाते हैं; जिनका उल्लेख निम्नवत् प्रस्तुत है–1 स्थाण्वीश्वर तथा कान्यकुब्ज के प्रसिद्ध सम्राट् हर्षवर्धन जो श्रीहर्ष, हर्षदेव और हर्ष नाम से प्रसिद्ध हुवे, जिन्होंने रत्नावली, नागानन्द, प्रियदर्शिका इन तीन नाटकों की रचना की। उनके दरबार की शोभा बाणभट्ट, मयूर, मातंग, दिवाकर, धावक, आदि कवि बढ़ाया करते थे। यद्यपि सम्राट् हर्षवर्धन का सम्पूर्ण जीवन युद्ध में ही व्यतीत हुआ। अतएव ये उपर्युक्त नाटकों के रचयिता नहीं माने जा सकते। परन्तु संस्कृत के प्रति अपार श्रद्धा रखने वाले हर्ष अपने आश्रयी कवियों को धनादिके द्वारा सम्मानित किया करते थे; जिससे प्रसन्न होकर संस्कृत कवियों ने अपनी कतिपय रचनायें श्रीहर्ष को समर्पित कर दी जिस कारण श्रीहर्ष उन रचनाओं के रचयिता कहलाये। इसका प्रबल प्रमाण आचार्य मम्मटसम्मत काव्यप्रयोजन है, जहाँ 'श्रीहर्षादेर्धावकादीनामिव धनम्' इस बात को पुष्ट करता है। श्रीहर्षका शासन काल 606ई. से 647ई. तक माना गया है।

श्रीहर्षविरचित विजयप्रशस्ति सम्भवतः महाराज विजयचन्द्र की प्रशंसा में लिखा गया काव्य रहा होगा। श्रीहर्षरचित नैषध का उल्लेख करने वाले सर्वप्रथम हेमचन्द्र के शिष्य महेन्द्रसूरी हैं। जिनका समय 1088 ई. से 1172 ई. के मध्य स्पष्ट विदित है।

अन्तः एवं बाह्य साक्ष्यों के आधार पर श्रीहर्ष कान्यकुब्ज प्रान्त के थे; यह सिद्ध होता है और यह भी सिद्ध होता है कि उनका निवास कन्नौज या काशी था। यदि सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन किया जाय तो भी यह सिद्ध नहीं किया जा सकता है कि श्रीहर्ष का जन्मस्थान कहाँ था, क्योंकि उन्होंने अपनी कृति में नामतः उल्लेख नहीं किया है। अतएव उनके द्वारा नैषधीयचरित में प्रयुक्त स्थलों के प्रति अनुराग को देखते हुए हम उनके जन्म स्थान एवं भूमि के विषय में अपना तर्क प्रस्तुत कर रहे हैं।

'ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्' इस कथन से श्रीहर्ष का कान्यकुब्जेश्वर के द्वारा सम्मानित होना सिद्ध होता है न कि उनका जन्मस्थान कान्यकुब्ज होना सिद्ध होता है।

श्रीहर्ष महान् दार्शनिक थे। उन्होंने अपने पिता श्रीहीर की पराजय के प्रतिशोध में प्रसिद्ध नैयायिक उदयनाचार्य के सिद्धान्तों का प्रबल विरोध किया है। इनके द्वारा रचित 'खण्डनखण्डखाद्य' ग्रन्थ में उदयनाचार्य के 'कुसुमांजलि' एवं 'तात्पर्यपरिशुद्धि' का खण्डन ग्रन्थों के उद्धरण के साथ-साथ किया गया है। श्रीहर्ष ने बौद्धाधिकार ग्रन्थ के उदाहरणों को प्रस्तुत कर अपनी तार्किक बुद्धि का परिचय दिया है।

श्रीहर्ष का व्यक्तित्व सभी गुणों से सम्पन्न था। इनमें साहस कूट-कूट कर भरा था। अगाध पाण्डित्यपूर्ण बुद्धिवाले श्रीहर्ष संस्कृत कवि समाज को चुनौती देते हुवे कहते हैं कि- जो स्वयं को पण्डित मानता है वह वस्तुतः पण्डित नहीं है। वह खल व्यक्ति मेरे काव्य के साथ खिलवाड़ न करे।

नैषध महाकाव्य के प्रमुख पात्र निषधनरेश नल तथा भीमसेन-आत्मजा दमयन्ती हैं। प्रतिनायक के रूप में इन्द्र, यम, अग्नि, वरुण आदि देवता आये हैं। विदर्भनरेश भीमसेन, अन्य राजसमूह, देवी सरस्वती, तथा दमयन्ती की सखियाँ आदि पात्र अवसरानुसार उपस्थित हुए हैं। इसके अतिरिक्त एक महत्त्वपूर्ण पात्र है पक्षी हंस, जो एक कुशल दूत के रूप में हमारे समक्ष आता है तथा जिसका कार्य-व्यापार अत्यन्त कौशलपूर्ण एवं अवसरोचित है।

महाकाव्य के नायक नल समस्त नायकीय गुणों से सम्पन्न हैं। कवि ने इनके गुण, रूप, बल, बुद्धि, वैभव, प्रभाव, उदारता, ज्ञान तथा दानशीलता आदि का सविस्तार विवेचन किया है। वह पुण्यात्मा, शूरवीर, विद्वान्, शास्त्रचक्षु, त्यागी, दानी तथा गुणानुरागी के रूप में उपस्थित होते हैं। उनके अनुराग में कामपिपासा नहीं है। उसमें गम्भीरता, करुणार्द्रता, स्वाभिमान, मर्यादा, तथा दृढ़प्रतिज्ञा है, तभी वह अत्यधिक कामसंतप्त होकर भी स्वयं भीमसेन से दमयन्ती की याचना नहीं करते हैं।

विदर्भराज भीम की पुत्री नायिका दमयन्ती एक नवयौवना, अद्वितीया रूपवती, लज्जाशील, एकनिष्ठ, स्थिरचित्त एवं दृढ़प्रतिज्ञ मुग्धा नायिका के रूप में हमारे समक्ष आती है। वह निषध नरेश राजा नल पर आसक्त है किन्तु उसमें उत्कट कामलिप्सा न होकर प्रेम का मधुर एवं परिष्कृत रूप है जिससे वह मात्र दासी बनकर नल की सेवा करना चाहती है।

दमयन्ती की चरित्रगत उद्दातता का परिचय प्रत्येक पग पर मिलता है। चन्द्रोपालम्भ के समय विरह-व्यथा से मूर्च्छित होने पर भी पिता के आगमन पर समस्त मदनव्यथा के चिह्नों को छुपाती उन्हें प्रणाम करती है। यही चारित्रिक शुचिता इन्द्र-दूती तथा देवदूत

नल द्वारा किये गये देवताओं से विवाह प्रस्ताव के निराकरण में भी प्रदर्शित होती है। वह आदर्श गृहिणी की तरह देवपूजन तथा पति के भोजन कर लेने पर ही भोजन ग्रहण करती है।

नैषध में यथास्थान दमयन्ती के रूप एवं गुणों का पर्याप्त वर्णन प्राप्त होता है। उसके रूप सौन्दर्य का वर्णन तो उसके नाम से भी उपलब्ध है। त्रिलोक की सुन्दरियों का अपनी रूप-माधुरी से दमन करने के कारण इसका नाम दमयन्ती पड़ा। इसी कारण राजा नल को पुरुषश्रेष्ठ तथा दमयन्ती को त्रिभुवनसुन्दरी कहा गया है।

कवि एवं काव्यपरिचय नामक प्रथम अध्याय में इन्हीं विषयों का सविस्तार विवेचन किया गया है। जिसके अन्तर्गत कवि की रचनाधर्मिता उसका वर्णन वैशिष्ट्य, नैषधकार श्रीहर्ष का परिचय उनका देशकाल, व्यक्तित्त्व, नैषधीयचरितमहाकाव्य का परिचय, उसके समस्त सर्गों का संक्षिप्त कथासार, कथा का मूलस्रोत, संवाद-योजना, भाषा, शैली, रसाभिव्यक्ति, अलंकार योजना तथा श्रीहर्ष का कृतित्त्व आदि विषय समाहित हैं।

आज संसार में प्रत्येक प्राणी यही इच्छा रखता है कि वह अधिकाधिक सुख एवं सम्पत्ति का भागी बन सके। आज भी प्रायः इन्हीं वासनाओं की मृगमरीचिका ने मनुष्य को भौतिकवादी स्वभाववादी, यथार्थवादी और न जाने कितने वादों में परिणत कर दिया है। उसकी जितनी अधिक प्रतिस्पर्धा 'अर्थ' व 'काम' को प्राप्त करने में है उतनी 'धर्म' एवं 'मोक्ष' के लिए नहीं है। यदि कतिपय लोगों के हृदय में इसके लिए स्थान भी है तो वह नाममात्र के लिए है। फलतः 'धर्म' व 'मोक्ष' को अर्थ व काम की अपेक्षा पुरुषार्थ कहना सूर्य को दीपक दिखाने के समान हो गया है। वस्तुतः धर्म व मोक्ष के प्रति उत्पन्न अनुराग व्यक्ति की अन्तश्चेतना का प्रतीक है।

धर्म आत्मा में स्थित वह रहस्यमय भावना है जो मानव तथा मानवेतर प्राणियों में भेद स्पष्ट करता है। इसीलिए आचार्य मनु ने कहा भी है कि–ज्ञानी पुरुष को अपने ज्ञानचक्षु से इन सभी को अच्छी प्रकार देखकर क्या करना चाहिए क्या नहीं करना चाहिए इसका निर्णय करके शास्त्रों द्वारा कथित नियमों को प्रमाणित मानकर अपने-अपने धर्माचरण में स्थिर रहना चाहिये।

धर्म की परिभाषा प्रायः सभी आद्याचार्यो ने अपने शास्त्रों में दी है। वैशेषिक धर्म के अनुसार धर्म की परिभाषा बतलायी गयी है–'यतोभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः" जिससे अभ्युदय एवं निःश्रेयस की सिद्धि हो उसे धर्म कहते है। मीमांसा दर्शन के अनुसार "चोदनालक्षणोर्थो धर्मः।"

ईश्वर प्रेरणा ही धर्म है अथवा शास्त्रप्रतिपादित कर्म या आचरण पद्धति ही धर्म है। भगवान् मनु ने धर्म की परिभाषा में लिखा है – वेद, स्मृति, सदाचार और जो अपनी आत्मा को प्रिय लगे वही धर्म है।

नैषध महाकाव्य में धर्मशास्त्र सम्बन्धी तथ्यों का अवलोकन नल हंस संवाद, नल की पूजार्चना, नल-दमयन्ती विवाह प्रसंग एवं नल तथा देवों के वार्तालाप आदि स्थलों पर होता है। महाकाव्य के प्रारम्भ में ही राजा नल–युग की धार्मिकता परिलक्षित होती है।

नैषधकार ने नल की भक्ति के शतांशमात्र से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को सुलभ बताया है।

नल की धर्मनिष्ठा में इन्द्र ने उन्हें अत्यन्त सज्जन, लोकपालों के समान श्रीमान् निषधदेश का अमृतवर्षी चन्द्रमा, समस्त श्रौत एवं स्मार्त धर्मों का आश्रयी और धर्म का धनी बताते हुए कलि को भी नल-दमयन्ती से वैर न रखने की सलाह दी है।

धर्म की इस सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक महत्ता को देखते हुए द्वितीय अध्याय में मैंने धर्म के अवयवों की चर्चा करते हुए उसके शास्त्रीय स्वरूप को प्रस्तुत किया है। नैषधीयचरितमहाकाव्य में प्रसंगवश ऐसे अनेक अवसर आये हैं जहाँ कवि ने धार्मिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। कवि अपने काल को अपनी रचना में प्रतिबिम्बित करते हुवे उस काल की धार्मिकता का अंकन करता है। इस अध्याय में देवपूजा, यज्ञ, संस्कार, स्नान, वृक्षपूजन, व्रत, दान, विवाह आदि शीर्षक चर्चित हैं, जो नैषधकालीन लोकजीवन में धार्मिक-सन्दर्भों को दर्शाते हैं।

संस्कृति आचार-व्यवहार से लेकर भावनाओं तथा कल्पनाओं पर निर्भर होती है, अतएव इन्हीं आधारों पर अनेक संस्कृतियों की कल्पना की गई है। जैसे–भारतीय संस्कृति, यूनानी संस्कृति, मिस्त्री संस्कृति आदि। इस प्रत्येक संस्कृति का विभाजन विचारों एवं संस्कारों के आधार पर ही किया गया है। सामान्यतया संस्कृति पीढ़ी-दर-पीढ़ी अवाप्त व्यवहारों की वह समग्रता है जिसमें किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व पलता, सुधरता एवं सामान्य से उन्नत होता है।

भारतीय संस्कृति पुरुषार्थ की परिकल्पना करती है। पुरुषार्थ विहीन संस्कृति में स्थायित्व नहीं होता नहीं उससे आत्मकल्याण की कामना ही की जा सकती है। इसलिए सभी पुरातन संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति की अपनी एक विशिष्ट छवि है। सभी संस्कृतियों में भारतीय सनातन संस्कृति ही सर्वश्रेष्ठ एवं महत्त्वपूर्ण है। इस संस्कृति में प्राणियों के सुख की कामना लक्षित है।

भारतीय संस्कृति अपने वैशिष्ट्य के कारण जगत् प्रतिष्ठित है। यह तथ्य निर्विवाद सत्य है। यह स्वाभाविक है कि कवि अपने काल की संस्कृति को भी अपनी रचना में अंकित करे। श्रीहर्ष ने भी इसका पालन किया है और यत्र-तत्र सांस्कृतिक-सन्दर्भों को उकेरा है। नैषधीयचरितमहाकाव्य में सांस्कृतिक-सन्दर्भ नामक इस अध्याय में मैंने धर्मार्थकाममोक्ष इस पुरुषार्थ चतुष्टय की चर्चा के साथ-साथ गीत, संगीत, वाद्य

एवं उपवाद्य, उनके प्रकार हास्य-व्यंग्य, मनोरंजन, विलास, कला, साज-सज्जा तथा स्त्रियों के पातिव्रत्य की चर्चा की है। यद्यपि इसमें अन्य बिषयों का भी समावेष हो सकता है जो संस्कृति के अंगभूत होते हैं परन्तु महाकाव्य में उनके अनुपलब्धता के कारण उनका समावेष नहीं किया गया है।

महाकवि श्रीहर्ष विरचित नैषधीयचरित महाकाव्य पर भी सामाजिक प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। महाकवि श्रीहर्ष 12वीं शताब्दी के कवि हैं। कवि की रचना से यह प्रतीत होता है कि उस समय तक भारतवर्ष पर मुगलों का साम्राज्य अभी नहीं हुआ था। कवि का समय पूर्णरूपेण हिन्दूकालीन था। नैषध में वर्णित वर्णव्यवस्था, प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा पौराणिक कथायें इसके प्रमाण हैं।

हमारे ऋषि-मुनियों ने प्रत्येक वर्गो के लिए चार आश्रमों की परिकल्पना की है। प्राचीन काल में सम्पूर्ण भारतीय समाज जाति प्रथा के अनुसार चार भागों में विभक्त था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र। इन चारों वर्णों के बुद्धि एवं सामर्थ्य के अनुसार अलग-अलग कार्य भी बतलाये गये है।

वर्णाश्रमों में विभक्त प्राचीन भारतीय समाज अत्यन्त सुखी एवं सम्पन्न था, शास्त्र इसके प्रमाण हैं। चारों वर्ण अपने-अपने कार्यों में निरत रहते हुये पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि प्राप्त करते थे। प्रस्तुत महाकाव्य में श्रीहर्ष ने उस काल के दर्पणभूत नैषधीयचरितमहाकाव्य में सामाजिक-सन्दर्भों की अंकना की है और अपने काल के समाज को अभिव्यक्त किया है। इस अध्याय में मैंने ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और संन्यासाश्रम को उपलब्ध सामग्री के आधार पर दर्शाने का प्रयास किया है, साथ ही सामान्य जनता के जन-जीवन को, उस काल की खान-पान व्यवस्था को, ग्रामीण और नगरीय व्यवस्था को, बाग-बगीचों को, वेशभूषा अलंकारादि को, अतिथिसत्कार के विधि को दर्शाने का प्रयास किया है। ये समस्त बिन्दु लोकजीवन के अंगभूत हैं।

'नैषधीयचरितमहाकाव्य में राजनैतिक-सन्दर्भ' इस पाँचवे एवं अन्तिम अध्याय में राजधर्म विवेचित है यद्यपि नैषध एक शृङ्गारिक काव्य है। श्रृंगार अंगी रस है अतः कवि को राजनीति प्रतिपादन करने का पर्याप्त अवसर नहीं मिलता फिर भी राजा के गुणों एवं उसके कर्तव्यों की चर्चा है। राजा धर्माचरण करता हुआ धर्म से नियन्त्रित होता हुआ प्रजा के कल्याण के लिये निरत रहता था और राजा के यही गुण धर्मशास्त्रों एवं अर्थशास्त्र में प्रतिपादित हैं।

सम्प्रति उपलब्ध स्मृतियों में मनुस्मृति सबसे प्राचीन राजशास्त्र एवं अर्थशास्त्र का प्रतिपादक सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है। आचार्य मनु ने राज्य की स्थिरता, सम्पन्नता तथा प्रजाजनों के

हिताय जिन नियमों का विधान किया है उन्हें 'राजधर्म' की संज्ञा से अभिहित किया गया है, जिसका पालन करके राजा अपने राज्य की चरम प्रगति कर सकता है।

राजधर्म के अन्तर्गत 'अर्थशास्त्र' शब्द को 'दण्डनीति' का पर्याय बतलाया गया है। प्राचीन धर्मशास्त्रों में ऐसा निर्देश मिलता है कि धर्म एवं अर्थ में कुशल ब्राह्मण को राजा द्वारा पुरोहित पद पर नियुक्त करना चाहिए। मनुस्मृति में राजा की सृष्टि ब्रह्मा द्वारा समस्त चराचर जगत् की रक्षा के लिए की गई है। जिससे निर्बलों को बलवानों से भय न हो। अर्थात् राजा का सर्वप्रथम धर्म प्रजा की रक्षा है। राजा को अपने राज्य के शास्त्रज्ञ एवं विद्वान् ब्राह्मणों की सेवा शुश्रूषा करनी चाहिये तथा प्रत्येक में उनका परामर्श लेना चाहिये। आचार्य मनु ने राजा के लिये त्रयी, आन्विक्षिकी, दण्डनीति एवं वार्ता का ज्ञान अनिवार्य माना है। राजा द्वारा स्थापित नियमों के उल्लंघन करने पर 'दण्ड' का प्रयोग किया जाता है। यह भी राजा का एक महत्वपूर्ण धर्म है कि राज्य में अशान्ति फैलाने वालों, नियमों को तोड़ने वालों तथा दुराचारी मनुष्यों को दण्ड के द्वारा नियन्त्रित करें। क्योंकि दण्ड के भय से ही समस्त प्राणि अपने-अपने पथ से विचलित नहीं होते हैं। किन्तु राजा को दण्ड का प्रयोग करते समय उचित-अनुचित का सम्यक् विचार कर लेना चाहिये। अनुचित दण्ड प्रयोग राजा को समूल नष्ट कर देता है।

प्रस्तुत अध्याय में राजधर्म, राजा के गुण, सैनिक, अस्त्र-शस्त्र, राजा का प्रजा के प्रति कर्तव्य एवं प्रजा का राजा के प्रति दायित्त्व आदि विषय वर्णित हैं।

इस प्रकार ग्रंथ में मैंने लोक से साक्षात् सम्बद्ध उन समस्त विषयों की चर्चा एवं प्रतिपादन करने का पूर्ण प्रयास किया है। जो इस नैषधीयचरित महाकाव्य में यत्र-तत्र कथाओं के हृदय में सन्निहित हैं और उस काल की जीवन शैली को द्योतित करते हैं। सारांश में यह कहा जा सकता है कि नैषध में प्रतिपादित लोकजीवन अत्यन्त सुखी सम्पन्न एवं समृद्ध था और कालान्तर में भी प्रासंगिक है।

संदर्भ ग्रन्थ-सूची

	ग्रन्थ संज्ञा	लेखक/सम्पादक	प्रकाशक
1.	आपस्तम्भ धर्मसूत्र -	गोपालाचार्य -	श्री टी0वी0 निवास मैसूर विश्वविद्यालय, 1953
2.	ऐतरेय ब्राह्मण -	काशीनाथ शास्त्री -	आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, 1930
3.	तैत्तिरीयारण्यंक -	काशी वासुदेव शास्त्री -	आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, 1969
4.	वैदिक साहित्य और संस्कृति -	बलदेव उपाध्याय -	शारदा मंदिर महतावराय नागरी मुद्रण काशी द्वि0सं0 1958
5.	वेदकालीन समाज -	शिवदत्त ज्ञानी -	चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 1967
6.	संस्कृत साहित्य का इतिहास -	वाचस्पति गौरेला -	चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 1960
7.	प्राचीन भारतीय लोकधर्म -	डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल -	ज्ञानोदय ट्रस्ट अहमदाबाद, 1964
8.	संस्कृत सुकवि समीक्षा -	आचार्य बलदेव उपाध्याय -	चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 1987
9.	संस्कृत साहित्य का इतिहास -	आचार्य बलदेव उपाध्याय-	शारदा निकेतन, वाराणसी, 1992
10.	संस्कृत और वैदिक संस्कृति -	डॉ0 शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी -	कला प्रकाशन, वाराणसी, 1999
11.	वेद और लोकजीवन -	प्रो0 व्रजविहारी दूबे -	संज्ञान वैदिक अध्ययन एवं शोध केन्द्र, होशियारपुर, 2006
12.	भारतीय संस्कृति -	डॉ0 किरण टण्डन -	ईस्टर्न बुक लिंकर्स नई दिल्ली, 2006.

ग्रन्थ संज्ञा		लेखक/सम्पादक		प्रकाशक
13. लोक साहित्य और सांस्कृतिक परम्परा	-	डॉ0 मनोहर शर्मा	-	रोशन लाल जैन एण्ड सन्स, जयपुर, 1971
14. भारतीय दर्शनों में कामतत्त्व	-	डॉ0 लक्ष्मीश्वर प्रसाद सिंह	-	किशोर विद्या निकेतन, 1986
15. नैषधीयचरित्रम् की शास्त्रीय मीमांसा	-	डॉ0 रामबहादुर शुक्ल	-	ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली
16. नैषध-परिशीलन	-	डॉ0 चण्डिका प्रसाद शुक्ल	-	हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहावाद 1960
17. नैषधीयचरित-महाकाव्यम्	-	डॉ0 देवर्षि सनाढ्य शास्त्री	-	चौखम्भा कृष्णदास अकादमी वाराणसी, 2010
18. हिन्दू संस्कार	-	पाण्डेय राजवली	-	चौखम्वा विद्याभवन, वाराणसी
19. प्राचीन भारतीय सामाजिक धर्म	-	मिश्र डॉ0 श्रीकिशोर	-	गोपाल लाल मिश्र ग्रन्थमाला वाराणसी, सन् 1991
20. धर्मशास्त्र का इतिहास	-	डॉ0 पी0वी0 काणे	-	उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, चतुर्थ संस्करण, लखनऊ 1992.
21. महाभारत (सम्पूर्ण)	-	श्रीमन्महर्षि वेदव्यास	-	गीता प्रेस, गोरखपुर.

आत्म-परिचय
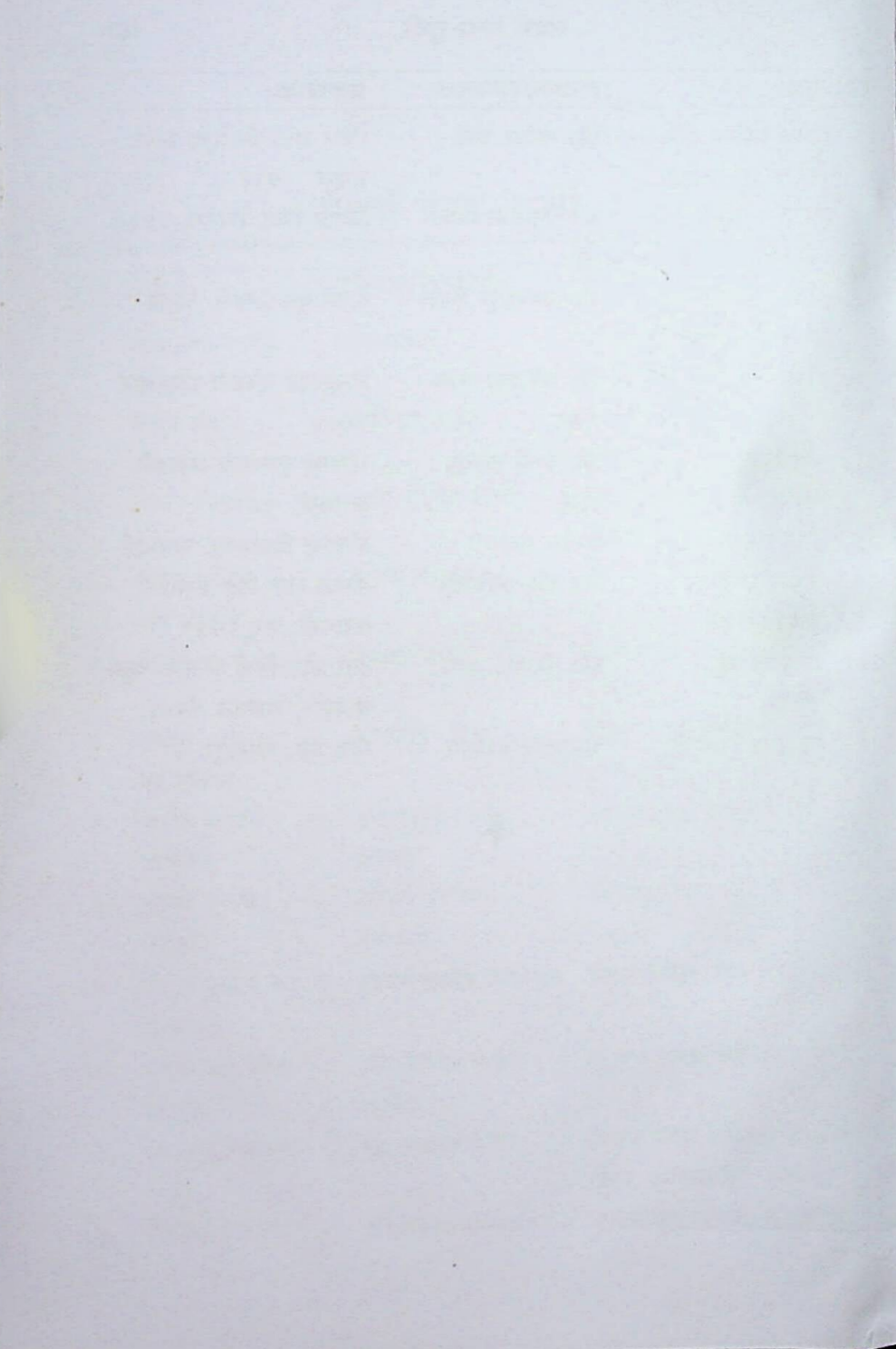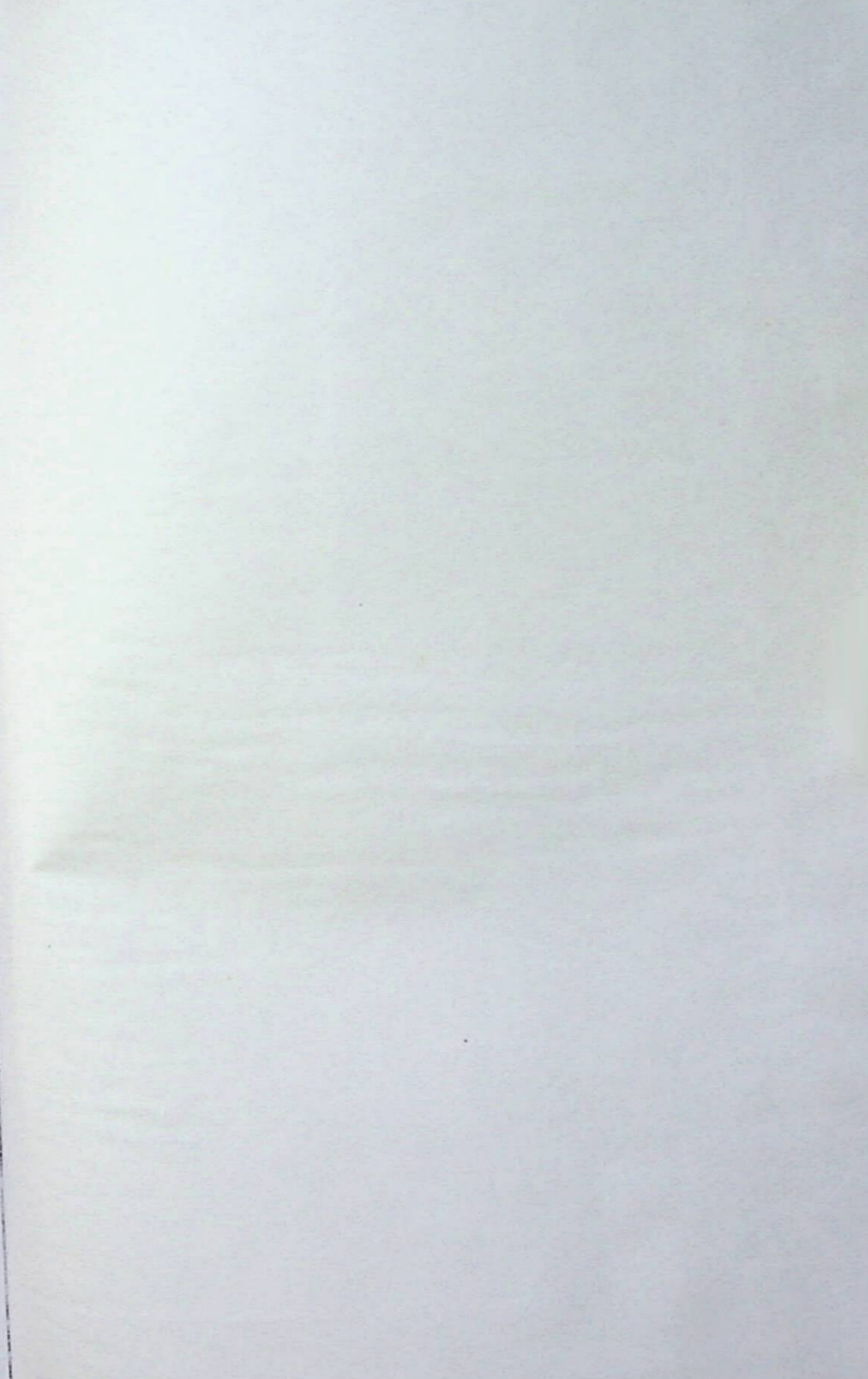
नाम - डॉ. विपुल कुमार शुक्ल

जन्म तिथि - 29-09-1986

पिता - श्री बृज बिहारी शुक्ल

माता - श्रीमती प्रेमशीला देवी

शिक्षा- एम.ए., पी-एच्.डी.
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

शैक्षणिक गतिविधियाँ -

1) अन्योक्तिनिर्झरः (शतकम्) का सटीक हिन्दी अनुवाद।

2) काव्योद्यानम् (शतकम्) का सटीक हिन्दी अनुवाद।

- विविध पत्र-पत्रिकाओं में दस शोध-प्रपत्र प्रकाशित।
- राष्ट्रिय एवं अन्तराष्ट्रिय संगोष्ठियों में दशाधिक शोध-पत्र प्रस्तुत।
- पूर्णकालिक पाँच कार्यशालाओं में सहभागिता।

स्थायी पता - ग्राम-पोस्ट, कुसौंधी, जिला-गोपालगंज,
बिहार - 841436

दूरभाष नं. - 9415501413

email - vipulkumarshukla1@gmail.com

कला-प्रकाशन
बी. 33/33-ए-1, न्यू साकेत कालोनी
बी. एच. यू., वाराणसी-5

ISBN - 978-93-85309-99-1

मूल्य : 600.00 रुपये